CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

H/280

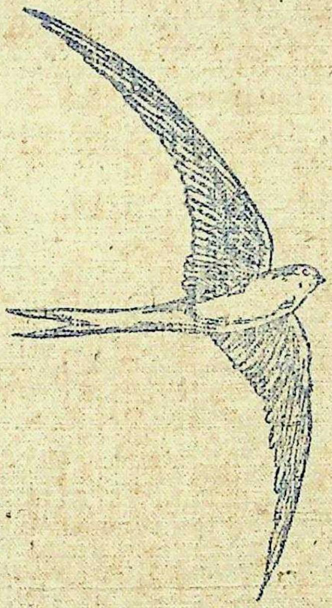

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत के पक्षी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रोषित-पतिका और हंस
(एक प्राचीन चित्र)

"दीजो पिय कौ जाय सँदेस !"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत के पक्षी

(साहित्य, कला और मानव-जीवन से सम्बद्ध
अध्ययन सहित)

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

प्रस्तावना:

जवाहरलाल नेहरू

H
280

पब्लिकेशन्स डिवीज़न
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

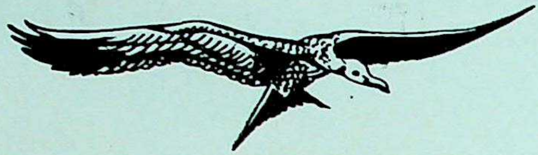

आषाढ़-श्रावण (जुलाई १९५८)

मूल्य :

१२ रुपये ५० नये पैसे

598.2954

डायरेक्टर, पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित; जोडियक प्रेस, कश्मीरी गेट, दिल्ली द्वारा मुद्रित; रंगीन चित्र और आवरण पृष्ठ गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया यूनाइटेड प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्यमेव जयते

प्रस्तावना

जब मुझे बताया गया कि श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह ने भारत के पक्षियों पर एक किताब लिखी है तो मुझे ख़ुशी हुई और मैं ने उसमें दिलचस्पी ली। मुझे इस बात पर ताज्जुब और कुछ अफसोस भी होता रहा है कि भारत में चिड़ियों, जानवरों, फूलों और पेड़ों के बारे में और चीज़ों की बनिस्बत किस कदर कम दिलचस्पी ली जाती है। पश्चिमी देशों में इन विषयों पर वैज्ञानिक और लोकप्रिय पुस्तकें बहुत मिलती हैं। असल में, वहां इस तरह की किताबों की गिनती हज़ारों में है और नई-नई किताबें भी बराबर निकलती ही रहती हैं।

ख़ासतौर से, बच्चों के लिए इन विषयों पर बड़ी ही आकर्षक किताबें निकल रहीं हैं और उनकी खपत भी ख़ूब है। अक्सर योरोपीय बालक चिड़ियों और जानवरों, यहां तक कि फूलों और पेड़ों के बारे में भी बहुत कुछ जानता है। हमारे बच्चों, या बड़ों में भी, कितने ऐसे होंगे जो इन चीज़ों के बारे में काफी जानकारी रखते हों? मैं समझता हूं, ऐसे लोग बहुत न होंगे।

यह सचमुच अफ़सोस की बात है, क्योंकि इस तरह हम जीवन के एक ऐसे आनंद से वंचित रह जाते हैं जिसे कोई भी हमसे छीन नहीं सकता, चाहे हम ख़ुशक़िस्मत हों या बदकिस्मत। यूं तो इस दुनिया में परेशानियां भरी हैं लेकिन कितना सौंदर्य भी है। अगर हम मुसीबतों और परेशानियों से बच नहीं सकते तो प्रकृति की सुन्दरता और विविधता में रस लेकर कम से कम इस घाटे को पूरा तो कर ही सकते हैं।

भारतीय चिड़ियों का अध्ययन करनेवाले एक प्रसिद्ध विद्वान ने एक बार कहा था कि "जिस इन्सान के कानों ने चिड़ियों के मोहक संगीत में रस लेना नहीं सीखा, वह अकेला सफर करता है जबकि उसको अच्छे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथी मिल सकते हैं"। मुझे याद है, जब मैं देहरादून जेल में था तो नियमित रूप से साल में दो बार प्रवासी चिड़ियों को आसमान में उड़कर जाते देखता था। शुरू जाड़ों में, ये चिड़ियां दूर-दूर के देशों से हिमालय को पार कर भारत की गर्म जलवायु में चली आती थीं और वसन्त में उत्तरी देशों को लौट जाती थीं। इन उड़ानों को देखकर मुझे खुशी और आश्चर्य होता था - कितनी दूर से वह हर साल उसी रास्ते से जाते थे। जब हम अहमदनगर क़िले की जेल में रक्खे गए थे तब वह जगह बिलकुल उजाड़ और अनाकर्षक थी। चिड़ियां भी वहां नहीं आती थीं। लेकिन कुछ समय बाद मैं ने देखा कि पथरीली ज़मीन में से तरह-तरह के नन्हे-नन्हे जंगली फूल उग आए हैं। मेरे साथी, आसफ़अली को फूलों के बारे में कुछ जानकारी थी, और हम दोनों इन छोटे फूलों को बहुत दिलचस्पी से देखते थे और कभी-कभी उन्हें चुनकर रखते भी थे।

बहुत सी घटनाओं में से इन दो का ज़िक्र मैंने इसलिए किया है कि यह ज़ाहिर हो कि मामूली दुनिया से अलग होने पर भी प्रकृति के अनन्त रूपों को देखकर हमारा जीवन कैसे पूर्ण बन सकता है। बरसात के मौसम में बादल कैसे खूबसूरत होते हैं, उनके बदलते हुए रंगों को देखकर जो खुशी हासिल होती है, वह कभी मिटती नहीं। चिड़ियां आती हैं और हमारी साथी और मित्र हो जाती हैं। एक फूल भी हमें दुनिया की खूबसूरती की याद दिलाता है।

कुलू घाटी में मनाली है। वहां मैं अभी कुछ दिन रहा। मनाली के ऊपर हिमालय की बरफ़ से मढ़ी चोटियां हैं, जिनके नीचे इस ओर तो पेड़ों से ढके मैदान हैं, और उधर है - ऊंचा, बंजर पठार, जो लाहौल और स्पिती से होता हुआ तिब्बत तक चला गया है। मनाली में मैंने अपने यहां के खूबसूरत पहाड़ी पक्षी देखे और देवदार के विशाल वृक्षों के नीचे सैर की। वहां और भी कितनी ही तरह के सजीले और शानदार पेड़ थे। बांज (ओक), करंज (बीच), अखरोट (वालनट), कनोर (चेस्टनट),

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंगु (ऐश), किरमोली (मेपल), कैल (पाइन) आदि कितने ही पेड़ वहां थे। लेकिन सब से शानदार हिमालय के देवदार वृक्ष थे, जो हमारे पहाड़ों में विशेष रूप से पाए जाते हैं। मनाली के आसपास, बहुत से देवदार के पेड़ हज़ार साल से भी ज़्यादा पुराने हैं। मनाली में मेरे साथी चिड़ियां थीं और फूल और बड़े-बड़े वन-वासी वृक्ष। इन चन्द दिनों में मेरा जीवन इन सब के कारण भरा-पूरा रहा और ज़रा भी मैंने अकेलापन महसूस नहीं किया।

लेकिन यह किताब तो चिड़ियों के बारे में लिखी गई है। इन सुन्दर जीवों की कितनी बेशुमार क़िस्में हैं। चिड़ियों को दूर से देख लेना और एक तरह के आनंद का अनुभव कर लेना ही काफ़ी नहीं है। अगर हम उन्हें पहचानें, उनके नाम - या जो नाम हम उन्हें देते हैं - उनको जानें, और उनको गाते चहचहाते सुनकर उनको पहचान सकें, तो हमारा आनंद और भी बढ़ जायगा। अगर हम उनके साथ इस तरह हिलमिल जाएं तो हर जगह वह हमारी साथी हो जाती हैं।

इसलिए मुझे बड़ी खुशी है कि भारत के पक्षियों पर यह किताब हिंदी में प्रकाशित हुई है। श्री राजेश्वरप्रसाद ने साहित्यिक प्रसंगों और अनेक चित्रों के द्वारा इस पुस्तक का सौंदर्य और भी बढ़ा दिया है। मुझे उम्मीद है कि यह किताब खूब पढ़ी जाएगी और पक्षि-जगत के बारे में, जिसकी भारत में बहुतायत है, अधिकाधिक लोगों की रुचि बढ़ेगी। मैं आशा करता हूं कि हिंदी में, बच्चों के लिए भी पक्षियों के बारे में अच्छी और आकर्षक पुस्तकें लिखी जाएंगी।

जवाहरलाल नेहरू

नई दिल्ली,
५ जून, १९५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय लखनऊ
निधान H
पुस्तक क्रम संख्या 280
State Museum Library, Lucknow

निवेदन

उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर (आजाद) ने प्रकृत कवि की मानसिक अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा था––

डूबा हुआ है सर को गरेबां में डाल के,
उड़ता मगर है खोले हुए पर खयाल के––
जिस तरह बाज लाये कबूतर को मार कर,
यों लाता आसमां से है मजमूं उतार कर।

आसमां से मजमूं उतार लाने की क्षमता तो मुझ में नहीं है, पर यह अवश्य है कि पक्षियों को देखकर मेरे हृदय का घट भी भावों से भर उठता है। दाना चुगता हुआ कपोत का जोड़ा एक सुखी गार्हस्थ्य जीवन का चित्र आंखों के सामने ले आता है, उड़ते हुए तोते उन विगत दिनों की याद दिलाते हैं, जब इस देश के हर घर में शुक-सारिकाओं के पिंजरे टंगे होते थे। तोतों का एक जमघट देखकर मेरे हृदय में जो भाव उत्पन्न हुए थे, वे उस लेख का आधार हैं, जिसमें तोतों की एक काल्पनिक सभा का मैंने उल्लेख किया है।

पक्षी हमेशा से मानव-हृदय में भावों का उद्रेक करते आए हैं। आदिकवि बाल्मीकि के हृदय में काव्य की सृष्टि एक पक्षी के कारण ही तो हुई, जब एक बहेलिये के बाण से क्रौंच का वध देखकर अनायास उनके मुख से अभिशाप के कुछ शब्द अनुष्टुप छन्द में निकल पड़े थे। कहते हैं, कविता का आरम्भ इन्हीं दो पंक्तियों से हुआ था :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं अगमः शाश्वती समाः
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधिः काममोहितम्।[1]

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में एक आवश्यक निवेदन यह है कि अधिकांशतः इसका प्रत्येक परिच्छेद एक स्वतन्त्र लेख है। किसी पक्षीविशेष को देखकर जब जो भाव हृदय में जगे, उन्हें मैंने लिपिबद्ध कर लिया। इस पुस्तक के लिखने की मेरी यही प्रणाली रही है। वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ-साथ मेरी इन भावनाओं का समावेश ग्रन्थ के

१––"हे निषाद, आने वाले किसी भी युग में तुम्हें प्रतिष्ठा प्राप्त न हो, क्योंकि तुमने काममोहित क्रौंच युगल में से एक का वध कर दिया है !"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विभिन्न स्थलों पर साफ-साफ परिलक्षित है । मित्रों का कहना है कि इससे पुस्तक की रोचकता बढ़ गई है, पर इस बात की वास्तविक समीक्षा तो विषय के ज्ञाता तथा विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे ।

हिन्दी पाठकों में पक्षी-जाति के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न करना इस पुस्तक का मुख्य ध्येय है । यही कारण है कि इस पुस्तक की लेखन प्रणाली इस विषय की अन्य पुस्तकों से कुछ भिन्न है । जिस तरह केवल व्याकरण के द्वारा किसी भाषा के आन्तरिक एवं वास्तविक सौन्दर्य का ज्ञान असंभव है, उसी प्रकार पक्षी के वैज्ञानिक विश्लेषण मात्र से ही उस का पूरा परिचय नहीं मिलता : इसके लिए उसकी जीवन सम्बन्धी बातों का ज्ञान भी उतना ही जरूरी है । यही कारण है कि पक्षियों के आकार-प्रकार या रहन-सहन के वर्णन तक ही मैंने अपनी इस रचना को सीमित नहीं रक्खा है । उनके जीवन में जो गहरा रोमांस छिपा हुआ है, उस पर प्रकाश डालने की भी चेष्टा की है। रूप-रेखा मात्र का सीमाबद्ध ज्ञान हमें उस अंग्रेज की भांति, जो आज से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बम्बई में जहाज से उतरते ही एक हाथी को देख कर उसे मच्छर समझ बैठा था, भ्रम में डालने वाला है । मानव-जीवन में पक्षी-जगत जिस तरह घुलमिल गया है, उसका भी भरसक वर्णन मैंने किया है । विभिन्न पक्षियों की सभी जातियों और उपजातियों के सम्बन्ध में न लिख कर मैंने केवल मुख्य उपजातियों का ही उल्लेख किया है । भारतीय जीवन और साहित्य तथा चित्रकला पर उनका जो प्रभाव पड़ा है, उसकी खास तौर पर चर्चा की है । मतलब यह कि यह पुस्तक न तो भारतीय पक्षियों की सूची है, न सन्दर्भ-ग्रन्थ ही । यह पक्षी-सम्बन्धी मेरे वर्षों के अध्ययन का एक रिकार्ड या संग्रह है । इस पुस्तक से पाठकों में यदि पक्षी-जगत के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न हुई तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा ।

दरअस्ल पक्षी-संसार का पूरा ज्ञान हमें अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है क्योंकि जब-तब हमारे दृष्टि पथ पर ऐसे अनजान पक्षी आ जाया करते हैं जिनके सम्बन्ध में पक्षी-साहित्य मौन है, मसलन हाल ही में रांची के श्री हिचकौक के बाग में देखा गया वह कौआ, जिसकी रूप-रेखा तो कौए की है पर रंग बिल्कुल सफेद है और जो प्रतिदिन अन्य कौओं के साथ-साथ वहां आया करता है (देखिए, "स्टेट्समैन" अप्रैल २७, १९५८) । गरज यह कि अभी हमें इस दिशा में बहुत काम करना है ।

आदरणीय श्री जवाहरलाल जी नेहरू का मैं हृदय से आभारी हूं कि अत्यन्त कार्य व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का कष्ट किया । वह उन लोगों में हैं, जो विविध सांसारिक झंझटों में फंसे रह कर भी, प्रकृति से अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करते । पर्वत के हिममंडित शिखर, नदी के स्रोत, वृक्ष के फूल, पक्षियों का कलरव उनके हृदय में आदि मानव की भांति ही गुदगुदी पैदा करते हैं, और उर्दू के किसी शायर के शब्दों में प्रकृति-सुन्दरी से वह यथार्थ भाव से कह सकते हैं कि—

गो मैं रहा रहीने-सितम हाय रोजगार,
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा।

मैं उन मित्रों का भी आभारी हूं जिन्होंने चित्रों को उपलब्ध करा कर इस पुस्तक की सजावट में सहयोग प्रदान किया है, खासकर हर हाइनेस महारानी

State Museum,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पटियाला का कतिपय रंगीन चित्रों के लिए, क्विलन के श्री टी० एस० पाल का 'गल' पक्षियों के चित्रों के लिए तथा मैलापुर के श्री एम० कृष्णन का दाविल एवं बगुलों के सुन्दर चित्रों के लिए। कुमारी डाक्टर सीतालाल द्वारा खींचे गए तोते और हंसावर के तथा श्री पी० सी० चतुर्वेदी के सारस, लहतोरा, नीलकंठ और उल्लू के रंगीन चित्रों ने पुस्तक का सौन्दर्य बढ़ाया है; बम्बई की नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी के द्वारा हरे फाखतों की तस्वीर प्राप्त हुई तथा श्री ह्यूम मार्शल की पुस्तक से कुछ अन्य चित्र—इन सबों के लिए मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

३२, क्वीन विक्टोरिया रोड,
नई दिल्ली
७ जून, १९५८

—राजश्वरप्रसाद नारायणसिंह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
पक्षी : विकास और उपयोगिता	१
पक्षियों का जीवन	७
भारतीय साहित्य में पक्षी	२५
भारतीय पक्षी और चित्रकला	३३
कोयल	३७
पपीहा	४३
श्यामा	४६
दोयल या दंहगल	५२
दामा	५३
चंडूल	५४
भुजंगा और भृंगराज	५६
बुलबुल	५६
फटिकजल	६५
कौआ	६७
कबूतर	७८
हारिल	८२
फाखता या पंडुक	८६
तोता	६१
मैना	१००
कस्तूरा	१०६
शकरखोरा	१०७
फुदकी या दर्जिन	१०६
बया	११०
बसंता	११३
महोख	११५
कठफोड़वा	११६
अबाबील	११७
बतासी	१२०
गौरैया	१२२
सतबहिनी	१२५
लाल मुनियां	१२८
गुलाबचश्म	१२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
बबूना, पिद्दा, पतेना	१२६
स्वर्ग के पक्षी	१३१
पीलक	१३६
हुदहुद	१३८
मुटरी या महलाठ	१४२
किलकिला	१४३
बाज़ : बहरी : शिकरा	१४५
गरुड़	१४६
चील	१५२
उल्लू	१५३
गीध	१५६
धनेश	१६१
चिप्पक	१६४
तीतर	१६५
भटतीतर तथा लवा	१६७
सोहन चिड़िया	१६८
चकोर	१६८
मोर	१७१
शीतकाल के पक्षी :—	१७६
लहतोरा	१७७
रामगंगरा	१७८
सहेली	१७८
थिरथिरा	१७८
चहा	१८०
चपका	१८१
बटेर	१८१
बतख	१८२
चैती	१८३
तिदारी	१८३
बुड़ार	१८३
सवन	१८३
सीखपर	१८३
सुरखाब	१८४
गल	१८६
हंसावर	१८६
खंजन	१९१
नीलकंठ	१९५
कुररी या टिटहरी	१९६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
जल-तट के पक्षी :—	२०२
बगला	२०८
लगलग या महावक	२१२
सारस	२१५
दाविल और बुज्जा	२१७
पहाड़ के पक्षी :—	२१८
वनमुर्ग	२२२
उपसंहार	२२५
पक्षियों की नामतालिका	२२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र-सूची

प्रोषित-पतिका और हंस (प्राचीन चित्र : रंगीन) मुख पृष्ठ के सामने
तोता हाथ में लिए राजकुमारी (प्राचीन चित्र : रंगीन) मुख पृष्ठ पर
पक्षी हमारे विनोद का साथी था (प्राचीन चित्र : कांगड़ा शैली) पृष्ठ २४ के सामने
काग, कौन सन्देश तुम लायो, तव बोलिया सुहावन (प्राचीन चित्र : कांगड़ा शैली) पृष्ठ २५ के सामने

		चित्र संख्या
घर की ओर		१
नेहरू जी कबूतर छोड़ते हुए		२
शान्ति का सन्देशवाहक कबूतर		३
रूठे हुए		४
प्रणय-भिक्षा		५
भुजंगा	(रंगीन)	६
एक प्रकार की पहाड़ी कोयल	(रंगीन)	७
हारिल	(रंगीन)	८
हरे फाख्ते	(रंगीन)	९
दो सो रहे हैं और एक पहरा दे रहा है		१०
अपना अंडा अन्यत्र ले जाते हुए एक पक्षी		११
बच्चों को भोजन देते हुए		१२
गौरैया का एक जोड़ा		१३
उस्ताद मंसूर द्वारा चित्रित एक पक्षी		१४
पालतू तोते	(रंगीन)	१५
तोता	(रंगीन)	१६
दर्जिन	(रंगीन)	१७
कठफोड़वा	(रंगीन)	१८
मछमरनी	(रंगीन)	१९
जहांगीर के युग में चित्रित एक पक्षी (प्राचीन चित्र)		२०
बाज़ द्वारा शिकार का चित्र (प्राचीन चित्र)		२१
शाह बुलबुल		२२
बुलबुल और उसका परिवार		२३
कौआ अपने घोंसले पर पहुँचते हुए		२४
उल्लू	(रंगीन)	२५
धनेश	(रंगीन)	२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		चित्र संख्या
काला तीतर	(रंगीन)	२७
भटतीतर	(रंगीन)	२८
सोहन चिड़िया	(रंगीन)	२९
चकोर	(रंगीन)	३०
कबूतरों का जोड़ा		३१
लोटन कबूतर पंख फैलाकर जमीन पर लोटते हुए		३२
लक्का कबूतर		३३
तोता		३४
दर्जी पक्षी अपने घोंसले पर		३५
बया का घोंसला		३६
छोटा बसन्ता		३७
हुदहुद		३८
उड़ता हुआ मोर	(रंगीन)	३९
मोर	(रंगीन)	४०
लहतोरा	(रंगीन)	४१
लवा	(रंगीन)	४२
सुरखाब	(रंगीन)	४३
बहरी		४४
बाज		४५
पक्षीतीर्थम (तिरुकलुकुन्दरम) में पवित्र चीलों को पुजारी आहार दे रहा है		४६
उल्लू, सपरिवार		४७
गीध, शिकार की टोह में		४८
तिदारी	(रंगीन)	४९
बुड़ार	(रंगीन)	५०
लालसर	(रंगीन)	५१
सीखपर	(रंगीन)	५२
चैती	(रंगीन)	५३
तीतर		५४
चकोर		५५
श्वेत मयूर		५६
नाचता हुआ मोर		५७
स्थानान्तरण के पहले एक पड़ाव पर समूह में बैठे हुए पक्षी		५८
लहतोरा अपने घोंसले पर		५९
सहेली		६०
चहा		६१
हंसावर-समूह	(रंगीन)	६२
काला हंस	(रंगीन)	६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		चित्र संख्या
नीलकंठ	(रंगीन)	६४
टिटहरी	(रंगीन)	६५
सिलही	(रंगीन)	६६
नकटा	(रंगीन)	६७
गल पक्षी का जोड़ा		६८
गल पक्षी आकाश में		६९
गल पानी में तैरते हुए		७०
हंसावर समूह		७१
हंस-युगल काश्मीर की एक झील में		७२
हंसों की जलक्रीड़ा		७३
पनकौआ तिनका ले जाते हुए		७४
बगुला सरोवर के किनारे		७५
बगुला आकाश में		७६
सारस	(रंगीन)	७७
करकरा (छोटा सारस)	(रंगीन)	७८
चीर	(रंगीन)	७९
मोर-चीर	(रंगीन)	८०
मोनल	(रंगीन)	८१
वनमुर्ग	(रंगीन)	८२
बगुला उड़ते हुए		८३
निशा बगुलों की जोड़ी		८४
बगुले का बच्चा आकाश में		८५
श्वेत बगुला शिकार की टोह में		८६
दाविल		८७
बुज्जा		८८
नीली आंख वाला काकातुआ		८९
बाज को हाथ में लिए गुरु गोविन्द सिंह	(प्राचीन चित्र : रंगीन)	९०
बाज को हाथ पर लिए एक महाराजा	(प्राचीन चित्र : रंगीन)	९१

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

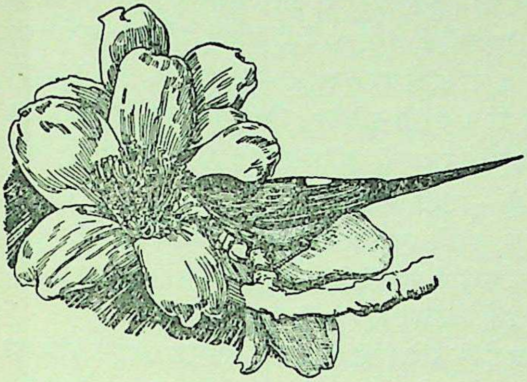

पक्षी : विकास और उपयोगिता

सृष्टि का आरम्भ कब और कैसे हुआ, इसका पता आज तक कोई न पा सका, और न स्रष्टा के सम्बन्ध में ही निश्चित रूप से कोई कुछ कह पाया। आदि काल से ही लोग इसके अन्वेषण में लगे रहे हैं, तरह-तरह की अटकलबाजियां लगाई गई हैं, पर जैसा कि अकबर साहब ने कहा है कि—

सदियों से फिलसफ़े की चुनां औ चुनीं रही,
लेकिन खुदा की बात जहां थी, वहीं रही।

दर्शन शास्त्र के पंडित तथा सृष्टि-शास्त्र-वेत्ता इन प्रश्नों का उत्तर, युग-युग की इन समस्याओं का समाधान, ढूंढते ही रहे हैं। बड़े-बड़े मेधावी जनों का प्रयत्न आज भी जारी है और इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रयत्न में वे एक हद तक सफल भी हुए हैं। पर निश्चित तथ्य पर वे आज तक भी नहीं पहुँच पाए हैं।

संसार परिवर्तनशील है, उसका रूप-परिवर्तन अवश्य होता है, पर वह विनष्ट नहीं होता। संसार की हर चीज प्रतिक्षण आगे की ओर बढ़ रही है; उसे लाख कोशिशें करके भी हम न तो रोक सकते हैं, न पीछे की ओर मोड़ ही सकते हैं। नदी-प्रवाह की भांति यह सृष्टि अग्रगामी है।

इसलिए प्राणिशास्त्र के पंडितों का यह मत है कि इस संसार के सारे जीव-जन्तुओं की रूप-रेखा में सृष्टि के आदि से ही परिवर्तन होता आया है। जिसे हम आज जिस रूप में देख रहे हैं, आज से हजारों साल पहले उसका वह रूप न था। तभी तो डार्विन ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मनुष्य के पूर्वजों में ऐसे प्राणी थे जो आकृति में एक प्रकार के बन्दर दिखते थे। पर प्राचीन मतावलम्बियों को यह बात पसन्द न आयी थी और महाकवि अकबर ने तो उन्हें खरी-खोटी तक सुना दी थी, लिखा था—

डार्विन साहब हकीकत से निहायत दूर थे,
मैं न मानूंगा कि मूरिस आपके लंगूर थे।

अकबर इस बात को मानें या न माने, पर संसार के वैज्ञानिक इस विचार पर दृढ़ हैं कि आज जो चीजें इतनी सुन्दर लग रही हैं, जो जीव इतने खूबसूरत हैं, आकर्षक हैं, वे शुरू में ऐसे न थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्टतः पक्षियों के सम्बन्ध में भी उनका यही मत है। जो चिड़ियाँ आज इतनी सुन्दर लगती हैं वे आज से हजारों वर्ष पहले कुरूप थीं तथा उनके पूर्वज उस जाति के प्राणी थे जिसे देखकर हम आज नाक-भौं सिकोड़ते हैं, घृणा करते हैं, अर्थात् वर्तमान (सरीसृप) रेंगने वाले जन्तु, छिपकली आदि। वे दो टांगों पर कूद-कूद कर चलते थे, और पंखहीन थे, अतः उनके उड़ने का प्रश्न ही न था। उनकी हड्डियां, जिन्होंने मिट्टी के अन्दर दब कर कालान्तर में पत्थर बनी हुई मिट्टी पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और जिन्हें आज हम "फ़ासिल्स" या कंकाल कहते हैं—इसकी साक्षी हैं।

धीरे-धीरे इनके पंख उग आए, यद्यपि ऐसा होने में हजारों वर्ष लग गए। भूगर्भ से निकले हुए इनके कंकालों से विशेषज्ञों न उन विविध अवस्थाओं का पता लगाया है जिनसे होकर ये गुज़रे थे, पर यहां इन्हें विस्तार से बताना अनावश्यक है।

कुछ पक्षी-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि पक्षियों के पूर्वज तथा वर्तमान पक्षी के बीच का जन्तु है वह चमगादड़, जिसे हम अक्सर पुराने मकानों की छतों पर लटका हुआ देखते हैं। परों की जगह इसके एक खाल होती है, जो पंखों का काम देती है। अनुमान किया जाता है कि वर्तमान पक्षी के पूर्वजों की भी ऐसी ही खाल थी जो धीरे-धीरे परों में परिवर्तित होती गई। परन्तु इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इतना अवश्य है कि उन चन्द कंकालों के, जो भू-गर्भ में पाए गए हैं, छिपकलियों की भांति लम्बी पूंछ तो है ही, पर भी पाए गए हैं। कइयों का ऐसा ख्याल है कि ये सारी बातें अटकलबाजी की अवस्था में हैं। यदि मनुष्य के पूर्वज लंगूर थे तो सम्भव है पक्षियों के पूर्वज छिपकलियां रही हों, पर इसके सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक कुछ कहना कठिन है।

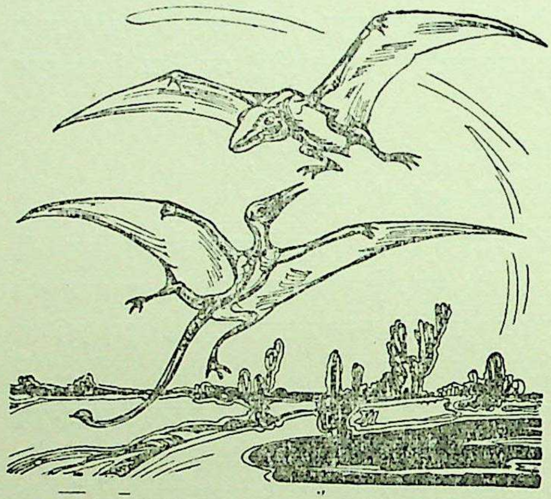

संसार में कुल कितनी जाति के पक्षी हैं, यह कहना भी कठिन ही नहीं, असम्भव है। फिर भी पक्षी-शास्त्र के विशेषज्ञों तथा प्रकृति-निरीक्षकों ने मोटे तौर पर जो सूचियां बनाई हैं उनमें संसार के प्रायः सभी प्रमुख पक्षी आ जाते हैं। पक्षियों की पहचान उनकी बनावट से होती है, पर उससे भी ज्यादा उनकी पोशाक से—उनके परों से होती है। पक्षियों की जितनी जातियां हैं, प्रायः उतने ही उनके परों के रंग-रूप भी हैं। ये इन्हें सुन्दरता तो देते ही हैं, जाड़े और गर्मी से इनका बचाव भी करते हैं। चन्द शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ये इनके सबसे जबर्दस्त शरीर-रक्षक हैं। पर साथ ही हम यह न भूलें कि इनके लिए यह वरदान एक प्रकार से घातक भी है, क्योंकि अपनी सुन्दरता के कारण ही काकातुआ को बन्दी बनना पड़ता है तथा उन परों का सौन्दर्य, जिन्हें यूरोप की रमणियां अपने मस्तक का भूषण बनाती हैं, "स्वर्ग के पक्षी" (जिसके सम्बन्ध में आप इस पुस्तक में आगे पढ़ेंगे) के लिए प्राणघातक सिद्ध होता है। फिर भी, किसी पक्षी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि हम उसके सुन्दर परों की याचना करें तो वह साफ शब्दों में हमारी प्रार्थना नामंजूर करेगा ; इसमें हमें तिल मात्र भी सन्देह नहीं है।

शैशव काल में पक्षियों के पर प्रायः सौन्दर्य-रहित रहते हैं ; ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, उनका सौन्दर्य निखरता जाता है। "गल" अर्थात् गंगाचील आदि समुद्री पक्षियों के बच्चों के पर तो बरसों में अपना वास्तविक रंग ग्रहण कर पाते हैं।

पक्षी के पर दो किस्म के होते हैं—एक बड़े और मोटे तथा शक्तिशाली, जिन्हें पंख या डैने भी कहते हैं ; दूसरे छोटे और मुलायम, जो शरीर के ऊपर छाये होते हैं तथा उनके बदन के भीतरी वस्त्र के समान हैं। किसी-किसी के पर बड़े होते हैं यथा पेंगुइन नामक पक्षी के, तथा कुछ के पर बाल जैसे मुलायम होते हैं, मसलन न्यूज़ीलैंड के "किवी" पक्षी के।

मनुष्य जैसे वस्त्र बदलता है, वैसे ही पक्षी अपने पर बदलते रहते हैं ; पुराने पर झड़ते हैं, नए उगते हैं। यह क्रिया प्रति वर्ष एक या दो बार होती है और सारी उम्र चलती रहती है।

प्रकृति ने बहुतेरे ऐसे पक्षियों को, जो जमीन पर रहते हैं और जमीन पर ही अंडे देते हैं, मटमैला रंग देकर उनकी रक्षा की व्यवस्था कर दी है। तीतर, बटेर आदि का रंग मटमैला होता है क्योंकि वे ज़मीन पर रहते हैं ; रेत में रहने वाली कुररी का रंग रेत जैसा—रेतीला होता है ताकि ये पक्षी जमीन के रंग से ऐसे मिल जायें कि दुश्मनों की निगाह से बचे रहें।

दुम और डैने पक्षियों के बड़े आवश्यक अंग हैं। दुम उड़ते पक्षी के लिए एक प्रकार की पतवार है, साथ ही ब्रेक या रुकावट भी। रफ्तार रोकते समय वह दुम की सहायता लेता है।

डैनों के द्वारा वह उड़ता है, पर यह समझना कि वह पंख मार-मार कर आगे बढ़ता है, भ्रम है। वह उन्हें आगे-पीछे, गोलाकार घुमा-घुमा कर हवा में तैरता है।

पक्षियों की चोंच की बनावट उसके आहार तथा खाने की रीति को प्रदर्शित करती है। चोंच से ही हम समझ सकते हैं कि वह अपने खाद्य-पदार्थ को लहटोरा की तरह नोंच-नोंच कर खाता है या गौरैये की भांति दाना चुगा करता है। कुररी आदि कुछ पक्षी मत्स्य-भक्षी भी हैं।

पक्षियों के पैर की बनावट भी उनके रहने की जगह के अनुसार ही होती है। पानी में रहने वाली बतखों के पैर ऐसे होते हैं जो उसके तैरने में सहायक हों। उनकी उंगलियाँ आपस में एक झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। पेड़ पर रहने वाले पक्षियों का पिछला अंगूठा मजबूत होता है ताकि वे नींद में भी डालों से गिरें नहीं ; शिकारी पक्षियों के पंजे फौलादी होते हैं जिससे वह शिकार को मज़बूती से पकड़ सकें। गरज़ यह कि प्रकृति ने आवास-स्थल तथा प्रयोजन के अनुसार ही इनके अंगों की सृष्टि की है।

चिड़ियों के आहार भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ ऐसी चिड़ियां हैं जो दाना चुग-चुग कर पेट भरती हैं (गौरैया आदि) ; कुछ कंकड़-पत्थरों के बीच खाद्यान्न चुन-चुन कर (कपोत, फ़ाखता आदि) ; कुछ केवल फल खाकर (हारिल, तोते) ; कुछ फल और छोटे कीड़ों से (कोयल आदि) ; कुछ कीट-पतंगों से (भुजंगा वगैरह) ; कुछ गोश्त, रोटी आदि मानव-भोज्य पदार्थों से (कौआ) ; कुछ मांस से (गृद्ध, गरुड़, चील, उल्लू) ; कुछ मछलियों से (बगुले, कौडिल्ले आदि) ; तथा कुछ फूलों के रस से (शकरखोरा आदि)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिड़ियों के दुश्मनों में मनुष्य तो हैं ही, स्वयं पक्षी भी एक दूसरे के प्रबल दुश्मन हैं। इनमें बाज़ मशहूर है, जिसके प्रति किसी कवि की यह उक्ति है—

हंसि खगानन्यानहो सुकृतस्वार्थौ नैव,
खगपलाश परहस्तगत कुरु न श्रमं वृथैव।

फूल और पक्षी से यदि पृथ्वी विहीन होती तो शायद संसार में साहित्य और संगीत का जन्म ही न होता। हमारा जीवन सूखा-सूखा सा लगता, प्रकृति निर्जीव सी लगती। पक्षियों का मधुर संगीत तथा रूप-सौन्दर्य सांसारिक जीवन से ऊबे हुए मन के लिए "टानिक" का काम करते हैं, पर इसके सिवाय भी हमारे लिए इनकी बड़ी उपयोगिताएं हैं जिनके लिए मानव समाज को पक्षी-जाति के प्रति आभारी होना चाहिए। अब देखिए इनकी उपयोगिताएं क्या क्या हैं :

(१) मनुष्य ने बड़े-बड़े दुश्मनों पर विजय पाई है। कराल हाथी, भयंकर सिंह और बाघ, विषैले सरीसृप—इन सभी जीव-जन्तुओं को उसने अपने काबू में कर लिया है, पर छोटे-छोटे कीड़ों से वह आज तक नहीं जीत पाया है। एक बार टिड्डियों का दल आता है और सारी फसल को नष्ट कर डालता है। हम टिड्डियों के एक दल को भले ही मार डालें पर उनका वंश अनन्त है और हम उससे हमेशा के लिए त्राण नहीं पा सकते। यही हाल अन्य कीड़ों का भी है। जिस प्रकार उनकी वंश-वृद्धि होती है वह यदि बेरोक-टोक होती रहे तो शायद सारी पृथ्वी पर कुछ दिनों में सिवा कीड़ों के और कुछ न रह जाए। उदाहरण के लिए आलू के उस एक कीड़े को लीजिए जो 'आलू-कीट' के नाम से विख्यात है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि इस कीड़े का एक जोड़ा बिना किसी रुकावट के सन्तानोत्पत्ति कर पाये तो केवल एक ऋतु में ६०,०००,००० कीड़े उत्पन्न कर सकता है। यही हाल और कीड़ों का भी है। ये कीड़े क्या नहीं कर सकते! प्लेग जैसे घातक रोग का विस्तार, फसल की अपार क्षति, वनस्पतियों का संहार, इनके द्वारा यह सभी कुछ सम्भव है। पक्षी जो हमारा सबसे बड़ा उपकार करते हैं वह यह है कि इन कीड़ों को खा-खाकर इनकी अनियन्त्रित वंश-वृद्धि को रोकते रहते हैं।

अपने बाग में आप पक्षियों को बिलकुल न आने दें, फिर देखें, कुछ ही दिनों में आपके फूलों की क्या दशा होती है और आपके फल किस अवस्था को पहुँचते हैं। कृमियों आदि की बाढ़ से आपके बाग का संहार अवश्यम्भावी है।

(२) कीड़ों को ही नहीं बल्कि, छिपकली, चूहे, मेंढक आदि नुकसानदेह जीव-जन्तुओं की वृद्धि को भी पक्षी रोकते हैं। यदि ये ऐसा न करें तो यह पृथ्वी इन जन्तुओं से ही भर जाए। एक चूहे को ही लीजिए। कहते हैं कि चूहे का एक जोड़ा पांच वर्षों में ९४०,३६६,९६६,१५२ चूहे पैदा कर सकता है। पर ऐसा नहीं हो पाता क्योंकि हमारी आंखें बचाकर उल्लू आदि मांसाहारी पक्षी बगैर शोर मचाये, बगैर वाहवाही लिये, रात के गहन अंधकार में इनका संहार किया करते हैं।

(३) चील, कौवे, आदि कुछ पक्षियों से सफ़ाई का काम भी चलता रहता है। मवेशियों के शव तथा विभिन्न गन्दी चीज़ें, जो हमारे गांवों के आस पास पड़ी रहती हैं तथा जिनसे बीमारी फैलने का भय रहता है, इनके द्वारा नष्ट होती रहती हैं। क्या यह उपकार थोड़ा है?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) पक्षियों से केवल संहार का ही काम सम्पन्न नहीं होता; सृजन के काम में भी ये सहायक हैं। फुलचुही, शकरखोरा आदि पक्षी एक फूल का पराग दूसरे में डाल-डाल कर नई-नई किस्में पैदा करते हैं और इस तरह इनकी वजह से सैकड़ों नए प्रकार के फूल और फल पैदा हुए हैं, हो रहे हैं, और होते रहेंगे। इनकी चोंच, जिसमें फूलों का रस और पराग लगा होता है, विभिन्न पुष्पों का स्पर्श करके इस सृजन-क्रिया को सम्पन्न करती है, नर पौधे का पराग मादा पौधों के पास पहुंचा-पहुंचा कर बलिष्ठ पौधों के जनन में सहायक होती है। कहते हैं, इन मधुपायी पक्षियों के कारण सेमल वृक्ष के वंश को अपार लाभ हुआ है और इस तरह भारतवर्ष के दियासलाई के व्यवसाय को भी, क्योंकि दियासलाई में सेमल की लकड़ी का ही उपयोग होता है।

वसन्त काल में सेमल पर रस से भरे लाल-लाल फूल खिल आते हैं तो उन पर रसपायी पक्षियों का एक हुजूम-सा लग जाता है, दिनरात लगा रहता है। एक बार इन पक्षियों की जाति-गणना की गई तो कुल ६० जाति की चिड़ियां सेमल वृक्ष पर रस-पान करती हुई पाई गईं।

(५) यही नहीं, इन पक्षियों के द्वारा फलों की किस्म में भी इज़ाफ़ा होता रहा है, और फल वृक्षों के प्रसार में भी। देखिए यह किस तरह होता है।

पक्षी फल खाता है। उसके बीज उसके पेट से होकर उसकी बीट के साथ बाहर निकलते हैं तथा मिट्टी के सम्पर्क में आकर अंकुरित होते हैं। कुछ दिनों में ये वृक्ष बन जाते हैं। प्रकृति की विचित्र लीला है कि पक्षियों के उदर से होकर गुजरने वाले बीजों से उत्पन्न वृक्ष अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं। ये बीज साधारण ढंग से बोये गए बीजों की अपेक्षा कहीं अधिक सुगमता से उपजते भी हैं। उदाहरण के लिए वट या अश्वत्थ को लीजिए। यदि आप इसके बीज बोयें तो बड़ी देर से उगेंगे—सम्भव है कि न भी उगें; पर वे ही यदि कौए के पेट से होकर गुजरते हैं, उसकी बीट के साथ-साथ बाहर होते हैं तो धरती के सम्पर्क में आते ही जल्दी और आसानी से अंकुरित हो जाते हैं। इस तरह के दर्जनों पौधे मकान की दीवार तथा छतों पर, जहां मिट्टी का थोड़ा भी सम्पर्क रहता है, उपजते रहते हैं।

यही हाल अमरूद का भी है। पक्षी के उदर से होकर गुजरे हुए बीज-वृक्ष के फल कलमी वृक्षों की अपेक्षा कहीं अधिक मीठे, सुस्वादु तथा बड़े होते हैं।

इसी तरह जब किसी वृक्ष के फल खा-खाकर पक्षी पर्यटनशील रहते हैं तो एक देश या प्रान्त के फल-वृक्षों की उत्पत्ति दूसरे देशों में होती है। पक्षी-जाति की यह भी एक अमूल्य देन है।

(६) कुछ पक्षी, जिन्हें हम 'शिकार के पक्षी' कहते हैं, भोजन के काम भी आते हैं। मुर्गी, तीतर, बटेर और जल की बतखें आदि प्रसिद्ध भक्ष्य पक्षियों में हैं। मांसाहारियों के लिए ये सुस्वादु तो हैं ही, आयुर्वेद के कथनानुसार कई रोगों में बड़े लाभदायक भी हैं।

(७) पक्षियों के पर—सुरखाब के पर आदि—नारी-समाज के शृंगार के साधन हैं, उनकी सौन्दर्यवृद्धि में सहायक हैं। पुरुष भी किसी-किसी देश में इन्हें सर पर धारण किया करते हैं।

(८) पक्षियों की बीट खाद के काम में भी आती है। कबूतरों की बीट खास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तौर पर इस काम के लिए बड़ी उपयोगी मानी गई है और काफी तादाद में प्राप्य भी है। 'वायलट' आदि मौसमी फूलों के लिए तो यह अमृत के समान है।

(९) सन्देश-वाहक का काम भी ये पक्षी बड़ी निपुणता से करते आए हैं। प्राचीन काल की बातें जाने दीजिए, जब हंस दमयन्ती का सन्देश-वाहक बना था या हीरामन तोता राजकुमारी का। आधुनिक समय में भी कपोत सन्देश-वाहक का काम जिस खूबी से करते हैं यह सर्वविदित है। खास कर लड़ाई के दिनों में कबूतर बड़े काम के साबित हुए हैं। तभी तो अकबर ने ऐसे २०,००० कबूतर पाल रखे थे। श्री जोश मलसियानी के इस शेर में कबूतर के इस इस्तेमाल की ओर ही इशारा है—

हाय, लाया भी तो क्या लाया मेरे खत का जवाब,
बालो-पर नुचवा के आ बैठा कबूतर सामने।

तात्पर्य यह है कि पक्षी-समाज अनेक प्रकार से हमारे लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह सही है कि यह फसल का दुश्मन भी है, पर इसकी एक बुराई इसकी भलाइयों में उसी प्रकार छिप जाती है जैसे चांद में उसकी कलंक-कालिमा—

एकोहि दोषो गुण सन्निपाते,
निमज्जितीन्दोः किरणेष्विवांकः।

पक्षियों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उनकी पूर्णायु का है। किस पक्षी की आयु कितनी है, यह कहना कठिन है। इसका वास्तविक पता पाना कठिन तो है, पर जब से पक्षियों को पैर में छल्ला पहनाने की प्रणाली चल पड़ी है तब से यह कुछ आसान-सा हो गया है। इन छल्लों की मदद से साधारण तौर पर यह पाया गया है कि बड़े पक्षियों की आयु अधिक होती है, छोटों की कम। यह भी मालूम हुआ है कि जंगल में रहने वाले पक्षियों की अपेक्षा पालतू पक्षी ज्यादा दिन तक जीवित रहते हैं।

विलायत के एक पक्षी-विशेषज्ञ के अनुसन्धान का नतीजा, चार पक्षियों के सम्बन्ध में, इस प्रकार है :

जाति	पूर्णायु (पालतू अवस्था में)	पूर्णायु (जंगली अवस्था में)	औसत आयु (जंगली अवस्था में)
कस्तूरा	१७ वर्ष	९ वर्ष	१½ वर्ष
कस्तूरी	२० वर्ष	१० वर्ष	१¾ वर्ष
विदेशी मैना	१५ वर्ष	९ वर्ष	१½ वर्ष
दहंगल	२० वर्ष	११ वर्ष	१-१¼ वर्ष

गरज़ यह कि जहां छोटी चिड़ियां जंगलों में औसतन १½ वर्ष से अधिक नहीं जीतीं, वहां बड़े पक्षी स्पष्टतः ज्यादा दिनों तक ज़िन्दा रहते हैं, जैसे कि उल्लू, जिनकी जंगली अवस्था में औसतन आयु पांच साल की होती है या गरुड़, जो कि औसतन चार साल तक जीते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

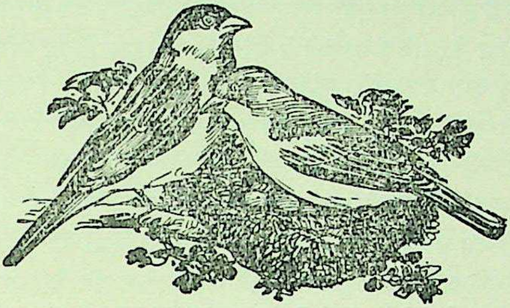

पक्षियों का जीवन

वन-उपवन की तरु-शाखाओं, समुद्र, नदी, तालाब के जल या कूलों पर, घोर जंगल और पहाड़ों के बीच या कि हमारे घरों के कार्निस पर अथवा पुराने मकानों की सूराख में रहने वाले, सुदूर व्योम में उड़न वाले या गृह-प्रांगण में विचरण करने वाले पक्षियों के जीवन में भी एक अद्‌भुत रोमांस भरा हुआ है जिसकी मिसाल सिवाय मानव-जीवन के किसी और जीव-जन्तु के जीवन में पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है।

इनके रोमानी जीवन का आरंभ तभी होता है जब कि अंडे के भीतर इनमें जीवन-शक्ति का संचार हो आता है तथा अंडे की कैद से बाहर निकलने को ये व्याकुल हो उठते हैं। यदि आप बड़े पक्षियों के अंडे पर, जब कि उसके फूटने का समय निकट आ जाता है, कान रखें तो आप ठहर-ठहर कर एक ध्वनि सुनेंगे तथा अंडे को हिलता हुआ पायेंगे। ये उस उद्योग के परिचायक हैं जो अंडे के भीतर विहंग-शिशु बाहर आने के लिये कर रहा है ; मानों वह अंडे रूपी कैदखाने के द्वार पर उसे तोड़ने के लिये चोट-पर-चोट दे रहा है ।

अंत में उसका परिश्रम सफल होता है तथा अंडे के बीचों-बीच अथवा अन्य किसी चौड़े स्थल पर जाति भेद के अनुसार एक दरार हो जाती है और कैदी बाहर निकलता है। उस समय तक वह एक तरल पदार्थ से भीगा हुआ-सा रहता है जो हवा के लगने से शीघ्र ही सूख जाता है। मुर्गी, तीतर, शुतुरमुर्ग आदि के बच्चे तो निकलते ही दौड़ना शुरू कर देते हैं, पर तोता, फ़ाखता, कौए के शिशु कई दिन तक आंख नहीं खोल पाते; वे एक निरीह-सी अवस्था में पड़े रहते हैं तथा हफ्तों तक घोंसले में ही अपने शैशव के दिन बिताते हैं। आश्चर्य है कि उन पक्षियों के बच्चे, जो तीक्ष्ण बुद्धि के लिए विख्यात हैं, प्रारम्भ में असहायावस्था में रहते हैं, पर मन्द बुद्धि वालों के बच्चे अंडे से बाहर होते ही चलना-फिरना और उड़ना तक शुरू कर देते हैं। यह भी प्रकृति की एक विचित्र लीला है।

महाकवि विद्यापति ने कहा है—

समय पाय तरुवर फर रे
कतबो सिचु नीर ।

—समय आने पर ही तरुवर फलते हैं, चाहे उनमें कितना भी जल डाला जाए। पक्षियों का भी यही हाल है। प्रजनन-काल आने पर ही वे जोड़ा बांधते हैं, अंडे देते हैं, लाख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कोशिश करके भी हम उनसे असमय में अंडे नहीं दिलवा सकते।

जब अंडा देने का समय आता है तो मादा के अंडाशय में अंडा आकार लेने लगता है। फिर वह जोड़ा बांधती है और तब इन अंडों के भीतर अंडाशय की नाली में नर के द्वारा उर्वरत्व स्थापित होता है। जिन पदार्थों से मांस-पिण्ड बनता है या परों की सृष्टि होती है वे विकसित होते हैं तथा धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं। फिर उपयुक्त समय पर मादा अंडे देना शुरू कर देती है। अंडों की निश्चित संख्या पूरी होने पर उनका सेना शुरू होता है। हर एक पक्षी के अंडों की एक निश्चित संख्या होती है। जब तक वह पूरी नहीं हो जाती है, वह अंडा देना समाप्त नहीं करती। बीच में यदि पारे हुए अंडे को आप हटा डालें तो वह पुनः अंडा देकर निश्चित संख्या पूरी करेगी। मसलन, यदि किसी चिड़िया के पांच अंडे हुआ करते हैं पर आप उसके अंडों को हटाते जाएं तो वह तब तक अंडे देती ही जाएगी जब तक उसे सन्तोष न हो जाए कि अंडों की निश्चित संख्या पूरी हो गई है, भले ही इस उद्योग में उसे पांच के बदले बीस अंडे तक देने पड़ जाएं। फिर भी उसके अंडाशय के भीतर कुछ अंडे बच ही जाते हैं जो अन्ततः शरीर में ही मिल जाते हैं, उसमें ही सूख जाते हैं।

जब बाकायदा अंडों का सेना प्रारम्भ होता है तो अंडों के पारने का द्वार अवरुद्ध-सा हो जाता है। किसी-किसी पक्षी के सम्बन्ध में यह पाया गया है कि वह बीच में, अर्थात् अंतिम अंडा पारने के पहले सेना आरम्भ कर देता है; पर ऐसा कम होता है तथा बाद के अंडों की संख्या अधिक नहीं हो पाती।

अंडा सेने के दिनों में मादा का ध्यान इस काम में कुछ ऐसा लग जाता है, उसमें ऐसी एकाग्रता उत्पन्न हो जाती है, कि यदि आप उसके अंडों को हटा कर कोई दूसरी वस्तु जैसे पत्थर के टुकड़े, रोड़े इत्यादि भी रख दें तो वह बगैर देखे-सुने उन पर बैठकर उन्हें सेती रहेगी। यही नहीं, उसके वक्षस्थल पर एक या उससे अधिक ऐसे स्थान निकल आएंगे जहां के पर गिर पड़ेंगे ताकि त्वचा से अंडों का सीधा सम्पर्क बना रहे और वे शरीर की गर्मी से लाभ उठा सकें और वृद्धि पाएं। शरीर के पर-रहित स्थान का तापमान अन्य स्थलों से अधिक होता है, क्योंकि परों के अभाव से तथा रगड़ से वहां रक्त अधिक मात्रा में जमा रहता है।

बहुधा ऐसा देखा गया है कि अंडों के खराब या निर्जीव हो जाने पर भी मादा एक लम्बे अर्से तक उन्हें सेती रहती है। उपयुक्त समय पर अंडे के भीतर एक खलबली उत्पन्न होती है तथा अंडे के भीतर से बाहर निकलने के लिए विहग-शिशु व्याकुल हो उठता है, जिसकी चर्चा उपर्युक्त पंक्तियों में की जा चुकी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त सारे काम बुद्धि के द्वारा होते हैं, मनुष्य की भांति, अथवा अन्तस् की प्रेरणा से? ध्यानपूर्वक देखने से ऐसा लगता है कि ये काम बुद्धि से नहीं, अन्तर्प्रेरणा के द्वारा ही संचालित होते हैं। यदि ये बुद्धि के द्वारा सोच-विचार कर किये जाते तो इनमें भिन्नता होती; पर यथार्थ में ऐसा पाया जाता है कि यदि सौ अथवा हजार पक्षी भी किसी ऐसे काम को करते हैं तो उनकी कार्य-विधि में एक अजीब समानता होती है। इसके ठीक विपरीत बुद्धि के द्वारा किये गये काम कभी एक-सां नहीं होते; 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्नः' के सिद्धान्त पर दस-बीस-पचीस की बात तो दरकिनार, दो प्राणी भी कभी ऐसा काम न करेंगे जिसमें भिन्नता न हो—जो हूबहू एक-स हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्धि तथा अन्तस्स्फूर्ति के द्वारा प्रेरित कामों के बीच यह एक बहुत बड़ा फर्क है।

बहुधा ऐसा देखा गया है कि जब अंडे के भीतर से पक्षी बाहर निकलने की कोशिश करता रहता है, उसके मां-बाप काफी सतर्क रहते हैं ; किसी खतरे की आशंका प्रतीत होते ही वे एक खास तरह की आवाज़ करते हैं जिसे सुनते ही वह शांत हो जाता है ; खतरा मिट जाने पर, मादा एक भिन्न प्रकार की आवाज़ करती है और वह पूर्ववत् बन्दी-गृह के द्वार पर चोट देना, प्रहार करना, आरम्भ कर देता है। आखिर इस आवाज या खतरे की घन्टी के समझने की क्षमता, सिवाय अन्तर्प्रेरणा या सहजज्ञान के, उसे कहां से मिलती है ? किसी ने ठीक ही कहा है—

जाके कुल की जौन है, ताके कुल की तौन,
बाज-बाघ के बाचवा, पकड़ि सिखावत कौन ?

प्रकृति इन्हें अन्तर्प्रेरणा दे कर इनकी जीवन-रक्षा का प्रबन्ध करती है। यही नहीं, वह और सूरतें भी प्रदान करती है, जैसे कि जमीन, जंगल की झाड़ी अथवा नदी के तट पर निवास करने वाले पक्षी के शरीर का रंग ऐसा बनाती है कि वह मिट्टी से मिलता-जुलता सा हो, जल्दी पहचाना न जाए और इस प्रकार अपने दुश्मनों की कुटिल दृष्टि से वह बचा रहे।

खतरे की जिस सूचना की चर्चा ऊपर की गयी है उसे नर या मादा अपने बच्चों को एक खास आवाज़ के द्वारा देती है तथा वे उसे सुन कर ऐसा बरतते हैं मानो उनकी शिक्षा-दीक्षा किसी शिक्षालय में हुई हो। मसलन, यदि कोई तीतर अपने बच्चों के साथ जा रहा हो और हम उसके रास्ते में आ जायें तो वह फौरन एक आवाज़ करके स्वयं झाड़ियों में जा छिपेगा। बच्चे संज्ञाशून्य-से होकर खड़े हो जायेंगे—मानों मिट्टी अथवा पत्थर के निर्जीव टुकड़े हों—तथा उसी मुद्रा में तब तक खड़े रहेंगे जब तक कि हम वहां से गायब न हो जाएं। खतरे के हटते ही वह तीतर, जो स्वयं झाड़ी के भीतर से सारे दृश्य को देख रहा होगा, पुनः बच्चों से आ मिलेगा और फिर वे साथ-साथ आगे की ओर बढ़ेंगे।

गरज़ यह कि जो काम हम अन्तस्स्फूर्ति के साथ-साथ बुद्धि के द्वारा भी करते हैं, तथा जिसे पूरा करने में हम कभी-कभी चूक भी जाते हैं, उसे ये पक्षी बड़ी खूबी के साथ अपनी अन्तस्स्फूर्ति की सहायता से सम्पन्न कर लेते हैं।

पक्षियों के नवजात शिशु अपने सहजज्ञान के द्वारा अपनी जीवन-यात्रा के प्रारम्भिक दिन व्यतीत करते हैं। फिर आते हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा के दिन, जो उन्हें अपने मां-बाप के द्वारा प्राप्त होती है। आपने बहुधा अपने बाग में देखा होगा कि घोंसले से तुरंत के निकले हुये बच्चों को उनके माता-पिता अपनी चोंच से सहायता करके या स्वयं उनके सामने पंख फड़फड़ाकर, उड़ कर, उड़ना दिखा-दिखा कर उन्हें उड़ने की शिक्षा देते हैं, कभी-कभी उड़ने में उन्हें दैहिक सहायता दे कर बल-प्रदान भी करते हैं। कभी-कभी प्रलोभन भी देते ह। वे मुंह में खाने की कोई स्वादिष्ट वस्तु रख लेते हैं और उसे बच्चों को दिखा कर उड़ने लगते हैं। बच्चे स्वभावतः उसके लोभ में पीछे-पीछे उड़ने की चेष्टा करते हैं—और इस तरह उड़ना सीख लेते हैं। बच्चों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो जल्दी उड़ना नहीं चाहते ; उन्हें ये बलपूर्वक घोंसले के बाहर निकाल देते हैं ताकि वे विवश होकर उड़ने का अभ्यास करें। बाज़ तथा गरुड़ खास तौर पर बच्चों के बड़े होने पर चोंच मार-मार कर उन्हें घर से निकाल देते हैं और उन्हें जीवन यात्रा में एक प्रकार से अपने पैरों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर खड़ा होने को विवश करते हैं। इसके सम्बन्ध में एक चश्मदीद गवाह "ए बर्ड फ़ोटोग्राफ़र इन इंडिया" नामक पुस्तक के लेखक का बयान सुनिये—

"मैं जिस घोंसले की बात कर रहा हूं उसके भीतर के विहग-शिशुओं के पर निकल आये थे और अब वे चंद घंटों के भीतर ही बाहर निकलने वाले थे। मुझे देर तक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। घोंसले के वयस्क पक्षियों में से एक का चित्र जब मैं उतार चुका तो मैंने देखा कि मां-बाप में से कोई भी बच्चों को दाना खिलाना नहीं चाह रहा है, बल्कि वे मुंह में दाना रखकर सामने के नीम-वृक्ष की एक डाल पर बैठे हुए तरह-तरह की बोलियां बोल रहे हैं मानों उन्हें प्रथम बार पंख-प्रयोग के लिए फुसला रहे हैं! प्रायः आध घंटे के बाद घोंसले के भीतर से एक शिशु बाहर निकला पर पुनः अन्दर घुस गया। तीन-चार बार ऐसा करके उसने इस नये प्रयास में कूद पड़ने का निश्चय कर लिया—तथा अन्त में अपने मां-बाप के पास पहुंचने में समर्थ हो सका। उसके माता-पिता की उत्तेजित आवाज़ से यह साफ परिलक्षित था कि जब वह ऐसा कर रहा था, अर्थात् उड़ने के प्रयास में था, वे आशंका-चिन्ता से परिपूर्ण हो रहे थे। उद्योग में सफल होने पर उन्होंने इसे दुगना दाना खाने को दिया तथा इसे लेकर वे एक दूसरी डाल पर चले गये।"

मुंह में दाना रख कर मां-बाप बच्चों को किस तरह दूर से उड़ने के लिये प्रोत्साहित या विवश करते हैं, उन्हें प्रलोभन देते हैं और उनके साहस पर उन्हें पुरस्कृत करते हैं, इसका यह अत्यन्त रोचक, आंखों देखा, वृत्तान्त है।

पक्षी 'परोपदेशे पांडित्यं' के सिद्धान्त पर नहीं चलते, बच्चों को अपने आचरण के द्वारा ही शिक्षा देते हैं, जो कहते हैं वह स्वयं कर दिखलाते हैं। पानी में तैर कर तैरने का तरीका बताते हैं, बड़े कीड़ों को मुंह से दूर कर या उनसे अलग रह कर तथा छोटों को खा कर उन्हें यह सिखाते हैं कि उनका आहार बड़े कीड़े नहीं, छोटे कीड़े हैं।

मतलब यह कि अन्तस्स्फूर्ति तथा मां-बाप की व्यावहारिक शिक्षा के द्वारा पक्षी-समाज के शिशु अपना शैशव-काल समाप्त कर इस योग्य बनते हैं कि वे अपनी बुद्धि का प्रयोग कर सकें। शिक्षक की आवश्यकता हर एक को, हर हालत में, होती है; 'गुरु बिनु कौन दिखावे बाट'—इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

पर यह तब की बातें हैं जब वे अंडे के अन्धकार से निकलकर भासमान सूर्य की ज्योति में प्रथम-प्रथम विचरण करना आरम्भ करते हैं। इसके पूर्व जब वे अंडा रूपी जेल के भीतर कैद रहते हैं, उनके मां-बाप बड़ी तत्परता से अंडे सेकर, अपने पंखों से उसे गर्म रख कर, उनकी रक्षा करते हैं। अंडा सेने का काम अधिकतर मादा के हिस्से में ही पड़ता है, पर नर भी, खास कर उन पक्षियों के, जिनकी बौद्धिक शक्ति का विकास अधिक नहीं हुआ है, उसके इस काम में हिस्सा बटाते हैं, यदा-कदा अंडे सेकर उसे अवकाश देते हैं कि वह घोंसले से बाहर निकल कर कुछ दाने चुगे, स्वच्छ वायु का सेवन करे तथा अपने पांव सीधे कर ले।

तीक्ष्ण बुद्धि वाले पक्षियों की प्रणाली इनसे कुछ भिन्न है। इनमें अंडा सेने का काम मादा ही करती है, नर उसके लिए तरह-तरह का खाना जुटाता है, उसकी सुरक्षा के सारे प्रबन्ध करता है, किसी खतरे के उपस्थित होने पर उसे सतर्क करता है, किसी बाहरी पक्षी के आने पर उससे लड़ने को तैयार रहता है, मादा के मन-बहलाव के लिए तरह-तरह से गाता है, नाचता है, उसके आराम तथा प्रसन्नता के सारे सामान

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जुटाता रहता है। मानव-जाति में कितने ऐसे पति हैं जो अपनी गर्भवती पत्नी के लिए इसका अल्पांश भी करते हैं?

सूर्य की अन्तिम किरणें जब धीरे-धीरे क्षीण हो चलती हैं तथा आती हुई संध्या के पांवों के नूपुर चरागाह से लौटती हुई गउओं के गले की क्षुद्र घंटिकायें बन कर बज उठते हैं तो मादा–जो सारा दिन अंडे सेती रही है–नीड़ से निकल कर बाहर आती है, दो-चार बार पंख फड़फड़ा कर थकान मिटाती है, शीघ्रतापूर्वक कुछ आहार ग्रहण करती है और फिर अपने बसेरे को लौट जाती है। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह बाहर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मोहित होकर इधर-उधर उड़ना शुरू कर देती है, कभी इस वृक्ष पर कभी उस पर जा-जाकर दिन भर के थके हुए अपने मन को ताजा करने की कोशिश करती है, उड़कर नीड़ (बसेरे) से दूर जा बैठती है, तो नर फौरन उसके पास जाकर उससे अनुनय-विनय करने लगता है कि वह घोंसले को लौट चले। मादा बसेरे को लौटती है पर सैर-सपाटे की उसकी प्रबल आकांक्षा उसे पुनः उड़ा ले चलती है; नर भी उसके साथ हो लेता है और तरह-तरह से इस बात की कोशिश करता है कि वह शीघ्रातिशीघ्र बसेरे को लौटे।

अन्त में वन-विहारिणी, स्वेच्छाचारिणी, प्रकृति-सौन्दर्य-मुग्धा मादा विवश होकर अपने घर को लौटती है। श्री हडसन ने अपनी पुस्तक में ऐसे ही एक दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

"यह भी एक अत्यन्त रोचक दृश्य था—मादा का बसेरे से दूर भागना, नर का ज़ोरों से उसका पीछा करना, और फिर बड़ी कोशिशों के बाद उसका घर लौटना, पर पुनः सहसा उसका गृह-द्वार से उड़ खड़ा होना, और तब व्योममंडल में नर का मादा को पकड़ने का उन्मत्त प्रयत्न! एक बार मादा को प्रसूति-गृह में लाने के लिए नर को पूरे चार बार अथक प्रयत्न करते हुए मैंने देखा था। चौथी कोशिश के बाद मादा ने अंडों पर बैठना स्वीकार किया—और तब उसका पति सैर-सपाटे को बाहर निकल चला।"

मादा का घोंसले से बार-बार दूर भागना—नीड़ प्रवेश की उसकी अनिच्छा—जिसका श्री हडसन ने उल्लेख किया है, एक प्रकार से स्वाभाविक भी है। चूंकि उसे वन-उपवन की खुली हुई जगहें त्याग कर हफ्तों घोंसले के भीतर बैठना पड़ता है, अतः यदि इस जीवन से उसका जी ऊबता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? किसी किसी पक्षी को तो महीनों अंडे सेते बीतते हैं। मुर्गी को अंडा सेने में तीन सप्ताह लगते हैं, तीतर को चार, हंस को पांच तथा कैन्डर नामक पक्षी को पूरे दो महीने।

मनुष्यों में बहुत से ऐसे लोग होते हैं जिनकी पुत्रैषणा बड़ी प्रबल होती है और इस की पूर्ति के लिए वे शादी पर शादी करते जाते हैं। पक्षियों में भी कुछ ऐसे हैं जिनका यही हाल है। यह उनकी अंडा सेने की उत्कट आकांक्षा से स्पष्ट परिलक्षित है। कबूतरों में आपने देखा होगा, नर बड़े चाव से अंडे सेता है: यही नहीं, बल्कि मादा को हटा कर अंडों पर बैठता है। नर स्वयं अंडे नहीं दे सकता, अतएव वह किसी तरह मादा को रिझा कर जोड़ा बांध लेता है, मादा से अंडे दिलवा लेता है और फिर उसके बाद उसके सेने तथा शिशु-पालन की सारी क्रियाएं स्वयं बड़े चाव से सम्पन्न करता है। इसी तरह का एक दूसरा पक्षी ऑक है जो लैपलैण्ड में पाया जाता है। इस जाति के पक्षियों में नर की संख्या अधिक है, मादा की कम; अतः सभी नर जोड़ा बांधने में सफल नहीं हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पाते हैं। पर उनकी अंडा सेने की--सन्तानपालन की--अभिलाषा दिल से नहीं जाती।

अप्रैल के आस-पास इस जाति के पक्षी समुद्र से उड़कर निकटवर्ती एक खास टापू में, जहां साल-दर-साल ये अंडे दिया करते हैं, आ जाते हैं। फिर जोड़ा बांधने की क्रिया शुरू होती है। इनमें नर अधिक होते हैं मादा कम। अतः कुछ अविवाहित ही रह जाते हैं। पर ये अपना शौक विवाहित औक दम्पति के साथ-साथ रह कर किसी तरह पूरा करते हैं। नर-मादा जब एक दूसरे के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करते रहते हैं--चोंच से चोंच मिलाते हैं, गाते हैं—तो अविवाहित औक उनके पास खड़ा इसे देखता रहता है--नेत्र-सुख से ही संतोष प्राप्त करता है। यही नहीं, किसी एक औक-दम्पति के परिवार का मित्र बनकर उनके प्रसूति-स्थान पर खड़ा रह कर नर के साथ-साथ पहरा देता है और जब वे दोनों कुछ काल के लिये समुद्र तट की सैर को चल देते हैं तो उनके अंडों पर बैठकर अंडा सेन की अपनी इच्छा पूरी करता है। इसके ठीक विपरीत कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जो अंडों को स्वयं न सेकर दूसरों से सेवाते हैं। कोयल, पपीहा आदि इनमें मुख्य हैं जो चोरी से अपने अंडे कौए, सतभइए आदि के घोंसलों में रख आते हैं और उन्हें बेवकूफ बनाकर उन से धात्री का काम लेते हैं। ये किस धूर्तता के साथ इस काम को करते हैं, यह इस पुस्तक में अन्यत्र दिये गये उनके जीवन-वृत्तान्तों से ज्ञात होगा। तीसरी प्रकृति के वे पक्षी हैं जो अंडों को न तो स्वयं सेते हैं और न औरों से सेवाते हैं, बल्कि उन्हें धूप के ताप से पका कर उनकी रक्षा करते हैं, जैसे कि सिकतामय प्रांतरों में निवास करने वाले शुतुरमुर्ग। ये अपनी छाती की रगड़ से गढ़ा तैयार करते हैं और उसके चारों ओर चोंच से बालू रख कर एक दीवार सी खड़ी कर लेते हैं। फिर इसी में मादाएं प्रायः बीस से तीस तक अंडे देती हैं--मादाएं इसलिए कि शुतुरमुर्ग की एक ही मादा नहीं होती, एक नर की कई पत्नियां होती हैं और ये सभी बारी-बारी से इसमें अपने अंडे पारती जाती हैं।

अंडे देने का काम पूरा हो जाने पर इन पर एक हल्की-सी बालू की परत बिछा दी जाती है। दिन भर सूर्य की किरणों से ये अंडे गर्म रहते हैं, रात्रि काल में ये इन पर बैठ कर इन्हें उष्णता प्रदान करते हैं।

कई पक्षी ऐसे हैं जो किसी उष्ण जल के झरने के पास गढ़े बना कर उनमें अंडे देते हैं, फिर उन्हें मिट्टी से ढांप कर अन्यत्र चल देते हैं। झरने के उष्ण जल से ये अंडे गर्म रहते हैं। समय पूरा होने के दिन ये लौट कर आते हैं और ऊपर की मिट्टी को हटा देते हैं। फिर अंडे फोड़-फोड़ कर बच्चे बाहर निकल आते हैं। सेलिबस नामक एक टापू इन पक्षियों का निवास-स्थान है।

जहां सख्त गर्मी पड़ती है, वहां के पक्षी अंडों को ठंडा रखने की व्यवस्था करते हैं, गर्म रखने की नहीं, और इसके लिए वे जल में अपनी चोंच भिगो-भिगो कर उनसे अंडों को भिगोते रहते हैं ताकि अत्यधिक ताप के कारण उन्हें नुकसान न पहुंचे।

कितनी रोचक हैं पक्षियों की ये संतानपालन की क्रियायें!

यही नहीं, जिस तत्परता के साथ ये अंडे सेते हैं, उनकी रक्षा करते हैं तथा अपनी संतान का पालन-पोषण करते हैं उसी तत्परता के साथ ये अपने बच्चों की रक्षा भी करते हैं।

कई तो नीड़ के ऐसे जबर्दस्त पहरेदार हैं कि किसी अपरिचित आगन्तुक पक्षी अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुश्मन के आने पर अग्निशर्मा हो उठते हैं और जान की बाजी लगा कर उन पर टूट पड़ते हैं। एक बार एक सज्जन को उल्लू पालने का शौक हुआ। उल्लू के एक घोंसले के पास जाकर उन्होंने देखा, एक शिशु चों-चों कर रहा है। बस फौरन उसे हाथ में लेकर वह वहां से चलते बने। थोड़ी दूर ही गये होंगे कि ऊपर से किसी ने उनके सिर पर जोर से चोट मारी। खून निकल आया। आंख उठा कर देखते हैं तो बड़ा-सा उल्लू उनके सिर पर मंडरा रहा है, मानों पुनः चंचु-प्रहार की चेष्टा कर रहा हो। बच्चे को जमीन पर फेंक कर वह फौरन वहां से नौ-दो-ग्यारह हुए।

यह तो बड़े पक्षियों की बात है। यदि आपको छोटे पक्षी का तमाशा देखना हो तो किसी भुजंगे के घोंसले के पास चले जायें। चोंच मार-मार कर यह आप को परेशान कर डालेगा।

सन्तान-रक्षा में बहुधा देखा गया है कि पक्षी अपनी जान की भी परवाह नहीं करते। टामस एडवर्ड नामक एक सज्जन का कहना है कि एक बार किसी झंझावात के बाद वह रास्ते से गुजर रहे थे, कि उन्होंने एक जंगली बतख को छाती से कुछ दबाये हुए पाया। निकट जाकर देखा तो वह अपने ग्यारह अंडों के साथ घोंसले को छाती से लगाए मरी पड़ी थी। जाहिर है कि झंझावात से अंडों को बचाने में ही उसने प्राण गंवा दिये थे।

एक घटना मेरी आंखों के सामने घटी। "गुलमोहर" के एक वृक्ष पर पीलक का एक घोंसला था। नर-मादा घोंसले के पास बैठे हुए नवजात शिशुओं की निगरानी कर रहे थे। इतने में एक कौआ वहां आ धमका। बस पीलक की त्योरियां चढ़ गयीं और वह हुंकारता हुआ कौए पर टूटा। कौआ भाग चला। पीलक ने उसका पीछा किया तथा उसके अंगों पर चोंच मारता हुआ उसे वह बाग की सरहद के पार तक भगा आया। फिर लौट कर इस तरह बैठा जैसे दंगल में विजयी कोई पहलवान हो।

चिड़ियां सन्तान-रक्षा में तरह-तरह की बहानेबाजियां करके आगन्तुक को अचम्भे में भी डाल देती हैं। बहुधा ये उसे देखकर लंगड़ाने लगेंगी, मानों किसी शिकारी के द्वारा घायल की गयी हों। दुश्मन—शिकारी, बधिक, श्वान, शृगालादि—उन्हें पकड़ने की उम्मीद में उनका पीछा करेगा। वे दूर तक चकमा देती हुई निकल जायेंगी और तब एकाएक तेजी से उड़ कर कहीं चल देंगी। और इस तरह दुश्मन को घोंसले से दूर ले जा कर उसे पथभ्रष्ट कर देंगी ताकि वह किसी और दिशा को चल दे तथा नीड़ के शिशुओं पर आयी हुई आपदा इस तरह टल जाये।

विलायत में टिट्टिभ पक्षी के अंडे बड़े कीमती समझे जाते हैं तथा उनकी तलाश में अंडा-विक्रेता नदी के कछारों में अक्सर घूमते रहते हैं। अंडों के सही स्थान से दूर बैठी हुई टिट्टिभ अपनी करुणापूर्ण बोली से इन बिक्रेताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रहती है ताकि उसकी भावी सन्तान सुरक्षित रहे।

छोटी-छोटी चिड़ियों में यह बहुधा देखा गया है कि ये शिशु-पालन में भेद-भाव नहीं रखतीं तथा खिलाते वक्त दूसरे के बच्चों को भी उसी अपनी आनन्द से खिलाती हैं जैसे अपनी सन्तति को। इसमें ये एक कौतूहल अनुभव करती हैं।

चिड़ियां दूसरों की आंख में धूल झोंकना भी खूब जानती हैं। वे जब घिर जाती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं तो मृतवत् होकर जमीन पर लेट रहती हैं, देखने वाला उन्हें मरी समझ कर आग की ओर बढ़ चलता है और तब ये फौरन जमीन छोड़ कर भाग खड़ी होती हैं ।

कभी-कभी पकड़े जाने पर भी ये मृतक होने का बहाना कर लेती हैं ताकि हम इन्हें मरी हुई जान कर फेंक दें। पक्षियों के नाड़ी-ज्ञान के ज्ञाता ही समझ सकते हैं कि ये जीवित हैं या मृत, क्योंकि इनका यह छद्म-भाव बड़े ऊंचे दर्जे का होता है। इस अभिनय को ये बड़ी निपुणता के साथ अदा करती हैं । हमारे लिए इसका भेद पाना बड़ा मुश्किल होता है ।

क्रीड़ा-कौतुक में भी पक्षी-समाज पूरा दक्ष है । आपने शायद देखा होगा, आपके प्रांगण अथवा बरामदे में अक्सर गौरैयों का झुंड झूठी लड़ाइयां लड़ा करता है । पहले एक बोलेगी, फिर दूसरी, तब तीसरी, और इस तरह सभी गौरैयां बोल उठेंगी। फिर इकट्ठी होकर ये झूठी लड़ाई में जूझ पड़ेंगी। पर यह लड़ाई अधिक काल तक नहीं ठहरती, कुछ ही क्षणों में ये पुनः उड़-उड़ कर दाना चुगने को चल देंगी। इनके युद्ध के रंग-ढंग से ही यह समझा जा सकता है कि ये वास्तव में झगड़ रही हैं या बनावटी लड़ाई लड़ रही हैं ।

पालतू पक्षी—कनेरी आदि—इतने शोख हो जाते हैं कि बहुधा अपने पालने वाले की अंगुलियां चोंच से चाटते रहते हैं या दाढ़ी-मूंछ सुलझाते रहते हैं । इसमें ये एक खास आनन्द अनुभव करते हैं ।

चिड़ियां तरह-तरह के खेल भी खेलती हैं। कभी बसेरे बनाती हैं और फिर उन्हें तोड़-फोड़ कर फेंक देती हैं; कभी मादा को हटा कर नर अंडों पर बैठता है और फिर उसे फोड़ डालता है; कभी नट की तरह आकाश में उड़ते हुए ये तरह-तरह के खेल दिखाती हैं—सीधे ऊपर जाकर इस तरह गिरती हैं मानों निष्प्राण हो गयी हों! कभी-कभी ये आपस में खासकर कठफोड़े, लुकाछिपी का खेल भी खेलते हैं। बया को यदि आप पिंजड़े में डाल दें और उसमें कुछ डोरे, रुई इत्यादि रख छोड़ें तो फिर देखें कि वह किस आनन्द के साथ वहीं बुनाई का काम शुरू कर देती है।

किसी डाल से लटक कर झूला झूलना भी कई पक्षियों को बड़ा पसन्द है, खासकर तोतों तथा कनेरियों को। इन्हें आप बहुधा शाखाओं पर लटके हुए झूला झूलते पाएंगे । कई ऐसे भी पक्षी हैं जो मानव-शिशु के साथ बड़े आनन्द से खेलते हैं । इनमें स्टार्क (लगलग), कोयल, कौए आदि इस काम के लिए प्रसिद्ध हैं। ये बच्चों के पास चले जाते हैं, पर जब बच्चे इन्हें पकड़ने को दौड़ते हैं तो थोड़ी दूर भाग जाते हैं, फिर लौट आते हैं, फिर भागते हैं और इस तरह काफी देर तक खेलते रहते हैं ।

कइयों को पिंजड़े का सामान बाहर फेंकने में बड़ा मज़ा आता है। वे खाने-पीने के प्याले बाहर गिरा देते हैं और वे यदि फूट जायें तो बड़ा आनन्द अनुभव करते हैं, जो उनके कूदने-फांदने, चहकने से साफ ज़ाहिर होता है ।

काकातुआ की यह खास आदत है कि वह अपने पिंजड़े की छड़ से बंधे हुए तार को तोड़ने की कोशिश में दिन-रात लगा रहता है।

गरज़ यह कि मनुष्य की तरह पक्षी भी खेल-कूद, क्रीड़ा-कौतुक के बड़े शौकीन हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्हें घर बनाने और सजाने का भी शौक है। मलय, ताइलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि देशों में एक प्रकार का तीतर पाया जाता है जो झाड़ियों में अपना 'बैठक खाना' बनाता है। घास-फूस ला-ला कर किसी एक खास स्थान पर अपना ड्राइंग रूम तैयार करता है और सफाई पर इतना ध्यान देता है कि यदि वहां घास का कोई टुकड़ा अथवा कोई सूखी पत्ती कहीं से उड़ कर आ जाये तो उसे फौरन चोंच से उठाकर दूर फेंक आता है। इस तरह के एक नहीं दर्जनों पक्षी पाये गये हैं, जिन्हें अपना कमरा सजाकर, स्वच्छ रखने का बड़ा शौक है।

"भिन्न रुचिर्हि लोकः"—संसार में भिन्न-भिन्न रुचि के लोग होते हैं। पक्षियों का भी यही हाल है। हर एक की रुचि एक-सी नहीं होती ; मसलन, कुछ तो ऐसे होते हैं जिनको सफाई का बड़ा ध्यान रहता है ; कुछ ऐसे, जिन्हें हुदहुद की तरह, गंदगी ही अधिक प्रिय है। नीड़-निर्माण के सम्बन्ध में भी उनकी प्रकृति एक-जैसी नहीं होती। कुछ बड़े बेडौल, बेढंगे घोंसले बनाते हैं। पर कुछ इनके बनाने में बड़ी कारीगरी प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए जल-मुर्गी को लीजिए। इसे सुन्दर घोंसला बनाने का जन्मजात और स्वाभाविक शौक है। बड़े यत्न से लकड़ियों के टुकड़े ला-ला कर यह जल के समीप किसी झाड़ी में घोंसला बनाती है। घोंसले को सुन्दर ढंग से फूल-पत्तियों से सजाती भी है। बाढ़ के दिनों में जब पानी की सतह ऊंची हो जाती है तो यह दूर-दूर से लकड़ियों के छोटे टुकड़े ला-ला कर उसे पहले से ज्यादा मजबूत और ऊंचा बना डालती है ताकि वह जल-प्रवाह में बह न जाये।

वन-मुर्गी साल में कई बार अंडे देती है और इसलिए घोंसले में उसके अल्पवयस्क शिशु प्रायः तमाम साल नज़र आते हैं। ये नीड़-निर्माण में मां-बाप की सहायता भी करते हैं। श्री हेमैन नामक एक पक्षी-विशेषज्ञ का कहना है कि एक बार उन्होंने एक वन-मुर्गी को घोंसला बनाते देखा। वह पास की एक झाड़ी में छुप कर बैठ गये और उसकी गृह-निर्माण-प्रक्रिया का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि वह बाहर से लकड़ी के कुछ टुकड़े और वृक्षों की छोटी टहनियां लायी तथा उन्हें अपने बच्चे को देकर चली गयी। विहंग-शिशु उन्हें लेकर आधे तैयार हुए घोंसले को बनाने में लग गया। काफी देर तक यह सिलसिला चलता रहा। वह लकड़ियां ला-ला कर इसे देती और यह उन्हें घोंसले में लगाता। इस सम्बन्ध में जो सबसे रोचक घटना थी वह यह कि लकड़ी के जिन टुकड़ों को विहंग-शिशु अच्छा या काम के लायक नहीं समझता था, उन्हें वह चोंच में दबाकर बाहर फेंक आता था—केवल अच्छे टुकड़ों का ही उपयोग गृह-निर्माण में करता था। इसे क्षीर-नीर विवेक कहें या अन्तस् की प्रेरणा ? यह पक्षियों की कलात्मक प्रवृत्ति और सौन्दर्य-प्रियता का एक सुन्दर दृष्टांत है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि किसी पक्षी ने नीड़ बनाया पर वह उसे पसन्द न आया, उसे तोड़-फोड़ कर वह दूसरा बनाने लगा और इस प्रकार चार बार घोंसला बना कर, तोड़ कर, अंत में मन के लायक घोंसला बनाने में वह समर्थ हो पाया।

जब पक्षियों के जोड़ा बांधने का समय आता है तो नर मादा को विविध प्रकार से रिझाने की चेष्टा करता है। गाने वाले पक्षी जब काम-विह्वल होते हैं तो ज़ोर-ज़ोर से गाना शुरू कर देते हैं। न जाने कहां से इन दिनों उनके गले में एक खास सोज़ आ जाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, स्वर में मधुरिमा, हृदय में जोशोखरोश की बाढ़ आ जाती है, और वे दिन-रात प्रणय-गीत गाने में तल्लीन रहने लगते हैं, जैसे भारत के कुछ कोकिल, पपीहा आदि । पक्षी समाज में मादा की अपेक्षा नर की संख्या अधिक है—हर नर को भार्या-प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता। इसीलिये स्वभावतः जोड़ा बांधने के प्रयत्न में प्रतिद्वन्द्विता बहुत है। नर को बड़ी कोशिशों के बाद मादा का सहवास प्राप्त होता है। इस कोशिश में उसे हर प्रकार के वशीकरण-साधनों का उपयोग करना पड़ता है, अच्छे पर धारण करने पड़ते हैं, गान में निपुणता लानी पड़ती है और नृत्य में आकर्षण, ताकि वह अपने प्रति द्वन्द्वियों को अच्छी तरह परास्त कर सके।

इस काम में अल्पवयस्कों की अपेक्षा अधिक उम्र वाले पक्षी ज्यादा कारगर होते हैं क्योंकि उन्हें बरसों का अनुभव रहता है। उनके परों में आकर्षण भी अधिक होता है।

कुछ पेड़ की डाल पर बैठ कर ऊंचे गले से गाते हैं, जैसे कोयल, पपीहा आदि ; कुछ आकाश में उड़-उड़ कर गाते हैं, जिनमें चंडूल मुख्य है।

वसंत के आने पर आप देखेंगे, चंडूल का नर, मादा के साथ-साथ गाता हुआ, प्रणय-भिक्षा मांग रहा है। घंटों तक यह प्रणय-लीला चलती रहती है। अंत में यदि मादा रीझ गई तो वे जोड़ा बांध लेते हैं।

कभी-कभी प्रणय-गीत के साथ-साथ नर तरह-तरह के हाव-भाव भी दिखाता है—पंख फला कर, दुम उठा कर, छाती फुला कर। ऐसे वक्त यदि कोई प्रतिद्वन्द्वी आ गया तो उस पर बाज़ की तरह टूटता भी है। जिन्हें गाना नहीं आता वे गले से आवाज़ करते हैं, चिल्लाते हैं, ज़ोर-ज़ोर से बोलते हैं; पर क्या कहते हैं, यह सिवा मादा के दूसरा नहीं समझ सकता। ऐसे पक्षियों में दाबिल मुख्य है।

मोर, कबूतर आदि नाच-नाच कर मादा को रिझाते हैं। मोर नाचता है और नाचने में ऐसा मशगूल हो जाता है कि उसे अपने तन की सुध नहीं रह जाती। मादाएं आकर उसके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। पर वह नाचता है, नाचता ही जाता है। उसका यह प्रणय-नृत्य देखने योग्य होता है।

कबूतर का ढंग कुछ और है। मादा दाना चुगती रहती है, नर यकायक उसके पास गला फुला-फुला कर नाचने लगता है, कुछ आगे बढ़ता है, फिर पीछे लौटता है, और इस प्रकार उसे रिझाने की चेष्टा करता है।

सुदूर आकाश में उड़ने वाले पक्षी, चील आदि, आकाश में ही नृत्य करते हैं। उनका यह नृत्य गोलाकार रूप में होता है। व्योम-मंडल में वे देर तक अपने करिश्मे दिखाते हैं और तब नीचे आकर मादा के संग बैठते हैं। ऐसे ही एक नृत्य का वाल्ट ह्विट्मैन ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है. जो इस प्रकार है—

The clinching interlocking claws, a living, fierce, gyrating wheel,
Four beating wings, two beaks, a swirling mass tight grappling,
In tumbling turning clustering loops, straight, downward falling,
Till over the river pois'd, the twain yet one, a moment's lull,
A motionless still balance in the air, then parting, talons loosing,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Upward again on slow — firm pinions slanting, their separate diverse flight,
She hers, he his, pursuing.

—पंजे एक दूसरे में जकड़े हुए
एक सजीव, वलयित चक्र
चार फड़फड़ाते पंख
दो चोंचें
कस कर गुंथा हुआ एक गत्यात्मक पिंड
लड़खड़ाते हुए, घूमते हुए, आलिंगन करते हुए छल्ले
सीधे, नीचे, लुढ़कते हुए
ठीक नदीतल के ऊपर आकर रुकते
दो—फिर भी एक !
एक क्षण की शांति
पवन में एक गतिशेष संतुलन
और फिर पंजों की जकड़ का छूटना
स्थिर, मंद, सुदृढ़ पंखों पर आकाशवर्ती तिरछी उड़ान
मादा का नर और नर का मादा के पीछे भागना ।

प्रथम मादा, नर के प्रणय-गीत तथा प्रणय-नृत्य की ओर से उदासीनता दिखाती है। वह चुपचाप दाने चुगती रहती है या निश्चेष्ट बैठी रहती है मानो नर की प्रणय-परीक्षा ले रही हो। अंत में जब वह उसके हृदय पर काफी प्रभाव डाल लेता है, उसके भीतर काम-संचार हो जाता है, तो सचेष्ट होकर जाहिर करती है कि उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, उसके संग जोड़ा बांधना उसे मंजूर है। फिर वे गृह-निर्माण में लग जाते हैं। अनुकूल समय में उनकी सन्तान होती है और वे अपने गार्हस्थ्य-जीवन के उत्तर-दायित्व को पूरा करते हैं।

इसके ठीक विपरीत बटेरों में नर नहीं बल्कि मादा अपनी भाव-भंगिमाओं से नरों को अपनी ओर आकर्षित करती है। काफी देर तक उनकी प्रणय-परीक्षा लेकर उनमें से किसी एक के साथ जोड़ा बांध कर वह घर बनाती है, अंडे देती है, और फिर उनके ऊपर अंडों के सेने का भार छोड़कर नौ-दो-ग्यारह हो जाती है। दो-तीन दिन में ही वह पुनः उपर्युक्त विधि से किसी और नर के साथ जोड़ा बांध कर दूसरा घर बनाती है, अंडे देती है और फिर तीसरे की तलाश में घर छोड़ कर निकल पड़ती है। जनन-ऋतु में वह एक-दो-तीन नहीं, बल्कि अनेक नरों के साथ इसी प्रकार जोड़ा बांधती है और फिर नये वन और चरागाह की तलाश में निकल पड़ती है। नरों में बया नाम के पक्षी भी एक ही ऋतु में एक से अधिक मादाओं के साथ जोड़ा बांधते हैं।

पक्षी-समाज के शिशु, मानव-शिशु की भांति, शैशवावस्था में सुन्दर नहीं होते ; कोई कोई तो बिल्कुल कुरूप होते हैं। पर उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनका सौन्दर्य भी निखरने लगता है। उदाहरणार्थ पीलक पक्षी की मादा को लीजिये। छोटी अवस्था में वह उतनी सुन्दर नहीं रहती, उसके परों में वह आकर्षण नहीं होता, जो कि प्रौढ़ावस्था में होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती जाती है, उसका सौन्दर्य, उसका रूपाकर्षण भी बढ़ता जाता है और वह नर को अपनी ओर आकर्षित करने में अधिक सफलता प्राप्त करती है।

मनुष्यों में युवावस्था ही आकर्षण का सबसे उपयुक्त समय माना गया है। कविवर बिहारी लाल के शब्दों में—

इक भीजे चहलै परे बूड़े बहे हजार,
किते न औगुन जग करत नय वय चढ़ती बार।

पर पक्षियों में ऐसा नहीं है। उनके बीच 'नय वय चढ़ती बार' नहीं, बल्कि नर की प्रौढ़ावस्था ही एक ऐसा समय है जब पक्षी एक दूसरे की ओर तीव्रता से आकर्षित होते हैं (पक्षी-जाति में आकर्षण का केन्द्र अधिकांशतः मादा नहीं, नर होते हैं), क्योंकि जो वस्तु उनके आकर्षण का सबसे बड़ा कारण है वे उनके पर हैं जिनका सौन्दर्य उनकी अवस्था के साथ-साथ निखरता है। जिसे हम ढलती हुई उम्र कहते हैं वह इनके सौन्दर्योत्कर्ष का समय होता है।

जिस पक्षी के परों का रंग पूर्णतः विकसित रहता है उसकी ओर मादाएं अधिक आसानी तथा शीघ्रता से आकर्षित होती हैं तथा नर को जोड़ा बांधने में न कोई कठिनाई होती है और न विलम्ब ही। साथ ही यह भी सही है कि एक बार जब मादा किसी नर का वरण कर लेती है, उसके साथ दाम्पत्य-सूत्र में बंध जाती है, तो फिर उसे छोड़ती नहीं। सुन्दर से सुन्दर पर वाले किसी दूसरे नर के आ जाने अथवा लुभाने के प्रयत्न पर भी वह उसका साथ नहीं त्यागती। इसके एक नहीं, हजारों दृष्टांत पाए गए हैं।

जोड़ा बांधने के पहले जिस निपुणता के साथ भाव-भंगिमाओं से नर, मादा को रिझाता है वह दर्शनीय है। देर तक वह पंख फड़फड़ाता हुआ अथवा कबूतर की भांति नृत्य करके सिर नीचा कर, उससे प्रणय-याचना करता रहता है। यदि एक से अधिक नर हुए तो आपस में वे झगड़ भी पड़ते हैं; मादा चुपचाप उदासीन भाव से बैठी रहती है। अन्त में जो नर औरों को दूर भगा कर विजेता होता है, वह उसके पास पहुँचता है या उड़ कर उसकी पीठ पर जा बैठता है, और "मौनं स्वीकृति लक्षणं" के सिद्धान्त पर उसके साथ जोड़ा बांध लेता है।

पक्षियों में बहुपतित्व अथवा बहुपत्नीत्व है या नहीं, और यदि है तो किस हद तक, इस प्रश्न को लेकर पक्षी-जीवन-वेत्ताओं के बीच काफी मतान्तर रहा है, वाद-विवाद चलता रहा है। पर जिन्होंने पक्षी-प्रवृत्तियों का निकट से तथा गहन अध्ययन किया है उन से यह पता चलता है कि आम तौर पर पक्षियों में ये प्रचलित नहीं हैं। पर ऐसे पक्षी भी हैं जो इसके अपवाद ही नहीं बल्कि जबर्दस्त अपवाद माने जा सकते हैं जैसे कि गिर-गिटमार बाज़, जिनके बीच हर एक नर की दो मादाएं हुआ करती हैं। विलायती कोयल के बारे में भी आम धारणा है कि एक मादा का सम्बन्ध उसी जाति के कई नर-पक्षियों के साथ होता है।

गाना पक्षी-समाज का जन्म-सिद्ध अधिकार है। पर न तो सभी पक्षी गाते हैं और न उनके संगीत में समान रूप से माधुर्य ही होता है। कुछ तो काग जैसे हैं, जिनके संगीत से भगवान बचाये; कुछ कोयल और श्यामा जैसे, जिनके स्वर से माधुर्य टपकता है।

आपने शायद देखा होगा, मनुष्यों में ऐसे गायक भी हुआ करते हैं जिनका अपना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तर्जे-संगीत तो है ही, दूसरों के तर्ज एवं स्वर में भी वे हू-बहू उन्हीं जैसा गा लेते हैं। पक्षियों में भी ऐसे एक नहीं अनेक गायक-गायिकाएं हैं जो दूसरे पक्षियों के स्वर में, लय में, उनके ही गाने इस दक्षता के साथ गाती हैं कि यदि आप उन्हें देख न लें तो कभी विश्वास न करें कि यह गाना कोई और गा रही है।

शिमले में मैंने एक बार ऐसी ही एक पहाड़ी मैना को चीड़-वृक्ष की डाल पर से विविध पक्षियों के गाने, उनके ही स्वर और लय में, गाते देखा था; यही नहीं, अपने गले से वह वादनयन्त्रों की आवाज भी निकाला करती थी, जिसे सम्भवतः उसने आस-पास के किसी मकान से निःसृत होते हुए सुना था।

पिंजड़े की मैना भी, आपने देखा होगा, तरह-तरह की आवाज़ें, गाने आदि, आसानी से सीख लिया करती है। तोते की नकलबाजी तो जगत्-प्रसिद्ध है। चंडूल, दहियल, पीलक और नीलकंठ में भी इस कला में काफी नैपुण्य प्राप्त करने की क्षमता है। श्री ह्यू हालीडे नामक एक अंग्रेज लेखक लिखते हैं—

"वे जो कि पक्षियों की पहचान उनके गाने से करते हैं, कभी-कभी अपरिचित स्वर से अचम्भे में भी पड़ जाते हैं। अन्वेषण करने पर बहुधा यह देखा गया है कि जिस ध्वनि को सुन कर वह चकित रह गये थे वह किसी परिचित पक्षी की ही आवाज थी जो अपना नहीं, बल्कि किसी और पक्षी का गाना गा रही थी।"

अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने अपने कई अनुभवों की भी चर्चा की है।

जब-तब ऐसा भी देखा गया है कि यदि किसी पक्षी-शिशु को आप अन्य जाति के पक्षी के साथ जन्म-काल से ही रख छोड़ें तो वह उसकी ही आवाज में बोलने लगता है। राय आयभर नामक एक सज्जन ने पिछले वर्ष एक नीलकंठ की जाति के पक्षी-शिशु को पाल रखा था पर उसके सभी साथी दूसरी जाति के पक्षी थे, नीलकंठ नहीं; अतएव पाया गया कि उस नीलकंठ के बड़े होने पर उसकी आवाज नीलकंठ जैसी नहीं, बल्कि उसके साथियों जैसी थी।

पर समय आने पर ये पक्षी अपने वंश की ध्वनियों को, उस स्वर तथा संगीत को, जिन्हें वे पैतृक परंपरा से प्राप्त करते हैं, फौरन धारण कर लेते हैं।

कुछ पक्षी ऐसे हैं जो किसी भी अवस्था में अपनी वंश-प्रणाली को नहीं त्यागते, मसलन कोयल, जो परभृता होकर भी कुहू-कुहू छोड़ कर एक बार भी कांव-कांव बोलती हुई नहीं पायी गयी है।

कहते हैं नारि-स्वभाव और शब्द बड़े मधुर होते हैं। पर विभिन्न प्रदेशों की नारियों के स्वर-माधुर्य में भिन्नता होती है। यही हाल पक्षियों का भी है। देश, जलवायु, वातावरण—इनसे इनके स्वर में भी काफी परिवर्तन आ जाता है। बिहार तथा पंजाब की कोयलें यद्यपि कुहू-कुहू ही बोलती हैं पर दोनों के स्वर में कितना अन्तर है! यही नहीं, उनके तर्जे-कलाम में भी काफी फर्क पाया जाता है। विलायत के एक पक्षी प्रेमी का कहना है—

"मैं कई ऐसे स्थानों पर गया हूं जहां के रोबिन (कलचुरी) पक्षी की आवाज इस जाति के पक्षियों की आवाज से बिल्कुल ही भिन्न थी।"

आवाज के साथ-साथ पक्षियों की रूप-रेखा, कद इत्यादि में भी स्थान-भेद से काफी अन्तर आ जाता है। बिहार के कौओं से यदि आप दिल्ली के कौओं को मिलाएं तो उनका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वजन दूना-तिगुना अधिक पायेंगे। यही हाल और पक्षियों का भी है। फारस तथा हिन्दुस्तान की बुलबुलों में कितना अन्तर है !

प्राचीन काल में जैसा कि क्षत्रियों के बीच हुआ करता था, पक्षियों के बीच प्रेम और संघर्ष (युद्ध) दोनों साथ-साथ चलते हैं। स्वयम्वर में किसी सुन्दरी कुमारिका का वरण करके जब कोई भाग्यवान पुरुष प्रस्थान करता था तो बहुधा प्रतिद्वन्द्वियों के साथ उसकी लड़ाई छिड़ जाती थी—कभी-कभी तो पाणिग्रहण-काल में ही। यही पक्षियों के समाज में भी होता है। और इसके लिये वे अपनी चोंच, चंगुल तथा डैनों का पूर्ण रूप से प्रयोग करते हैं।

कौए, भुजंगे और सबसे बढ़कर सुग्गे, अपनी चोंच के द्वारा काफी चोट पहुंचाते हैं; शिकारी पक्षी, चील आदि, अपने चंगुलों से। बतखों का अस्त्र उनके डैने हैं।

जोड़ा बांधने के दिनों में शिकारी पक्षियों का सिर सदा गर्म रहता है तथा प्रेयसी के पास किसी का फटकना उन्हें बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होता। कोई आया नहीं कि वे लड़ पड़े।

कुछ पक्षी तो ऐसे भी लड़ने में काफी मशहूर हैं, जैसे कि तीतर, बटेर, बुलबुल, नीलकंठ, मुर्गी आदि। प्राचीन काल में दिल्ली और लखनऊ में इनके बड़े-बड़े दंगल हुआ करते थे। पर अब समय बदल गया है, 'वह मुतरिब और वह साज, वह गाना बदल गया', न राम रहे, न वह अयोध्या ही, बटेर और बलबुल की वे लड़ाइयां अब कहां ?

घाघ की एक कहावत है—

> **कलसे पानी गरम है,**
> **चिड़ियां न्हावै धूर।**
> **अंडा लै चींटी चढ़ै,**
> **तौ बरषा भरपूर।**

अर्थात् जब चिड़ियां धूल में नहायें तो समझिये कि भरपूर वर्षा होगी। इससे पक्षियों का धूल से नहाना जाहिर होता है। जिस प्रकार सूखे पाउडर से कपड़े, बगैर जल-प्रयोग के, साफ किये जाते हैं, वैसे ही बहुतेरे पक्षी भी धूल से अपने पंख साफ करते हैं। आपने अक्सर देखा होगा, सड़कों पर, जहां की मिट्टी गाड़ी के पहियों की रगड़ से खूब महीन बनी हुई है, गौरैया पंख से धूल उछाल-उछाल कर नहा रही हैं। जब उनके पर धूल से खूब शराबोर हो जाते हैं तो वे वहां से हटकर पंखों को खूब फड़फड़ाती हैं और उन्हें साफ कर लेती हैं। और इस तरह वे अपनी ड्राई क्लीनिंग (सूखी सफाई) किया करती हैं। और भी कई पक्षी धूल से इसी प्रकार नहाते हैं। कुछ तो महीन धूल में नहाते हैं, कुछ मोटी धूल में, और कुछ, जैसे तीतर, जमीन में गड्ढा खोद कर उसमें लोटते हैं। पर ये सभी धूल से ही अपना शरीर स्वच्छ करते हैं।

किन्तु धूल की अपेक्षा जल में पक्षियों का नहाना अधिक प्रचलित है। नदी अथवा ताल-तलैयों के तट पर आपने मैना को या कौओं को झुंड बांधकर नहाते अवश्य देखा होगा। पंख से पानी उछाल-उछाल कर ये अपने सारे बदन को भिगो लेते हैं और फिर कहीं बैठकर उन्हें सुखाते हैं: चोंच से अपने परों को साफ करते हैं, उन्हें सँवारते हैं: पंखों से जल पर हिलकोरे देते हैं ताकि बदन के पर भीग जायें और फिर उड़कर कहीं जा बैठते हैं और परों

LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सफाई करने लगते हैं। उल्लू ओस में अपने शरीर को भिगोकर नहाते हैं। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न पक्षी विभिन्न प्रकार से जल-स्नान कर के अपने शरीर की शुद्धि तथा परों की सफाई करते हैं। वे गर्मी में तो नहाते ही हैं, जाड़ों में भी स्नान करते हैं, और इस तरह मानव-समाज को, खास कर उन्हें जो पहाड़ों पर रहते हैं तथा जो साल में एक-दो बार ही स्नान करते हैं, स्वच्छता की शिक्षा देते हैं।

कई पक्षियों को वर्षा के जल में नहाने का भी बड़ा शौक है। वर्षा की पहली बौछार में आप बहुधा बतखों तथा सुग्गों को बड़े आनन्द के साथ नहाते देखेंगे।

गौरैये छोटे पक्षी हैं पर बड़े साहसी हैं। नहाने का और शायद स्वच्छता का भी इन्हें इतना शौक है कि सुबह सूर्योदय के पहले ही ये जल से अपनी स्नान-क्रिया समाप्त कर लेते हैं। अपनी इसी प्रकृति के कारण ये पक्षियों में ब्राह्मण माने गये हैं—"जल सूर ब्राह्मण, कलम सूर कायस्त", कहावत मशहूर है।

पक्षियों में सूर्य-स्नान का भी काफी रिवाज है। नीलकंठ आदि पक्षी बहुधा शरीर के परों को फैला कर तथा डैने और पूंछ को ऊपर उठा कर धूप-सेवन करते हैं और इस तरह धूप से विटामिन 'डी' ग्रहण करते हैं। नीड़ के विहंग-शिशु भी दरवाजे के करीब आ कर धूप में अक्सर बैठा करते हैं। उनके भाव से ही प्रतीत होता है कि धूप में बैठना उन्हें कितना प्यारा है।

नहाने के बाद चिड़ियों को आप देखेंगे कि वे कहीं बैठी हुई बाल की सफाई कर रही हैं, शौकीन मिजाज़ी का परिचय देती हुई ये काफी देर तक अपने परों की सफाई में लगी रहती हैं। कभी-कभी चोंच से एक दूसरे के बाल भी सँवार दिया करती हैं। बतखों की पीठ पर, दुम के पास, एक उठा हुआ-सा स्थान होता है, इससे एक प्रकार का स्निग्ध तरल पदार्थ बहिर्गत होता है जिससे ये अपने परों के श्रृंगार में मदद लेती हैं ; इन के पर मुलायम रहते हैं तथा इनके ऊपर से पानी आसानी से नीचे गिर जाता है। अंग्रेजी की एक कहावत भी है—'बतख की पीठ से जैसे पानी'। जाहिर है कि तेल और जल का कभी सम्मिश्रण नहीं होता।

औरतों के केश-विन्यास के लिये जैसे तेल सहायक है, बतखों के पर के लिये भी वह उतना ही आवश्यक है। यही नहीं, जब वे जल में तैरती रहती हैं, इस तेल के कारण ही उनके पर जलसिक्त होकर भारी नहीं होते तथा तैरना उनके लिए आसान रहता है।

स्वर्ग के पक्षी की यूरोप में बड़ी ख्याति है। ये सर्व-प्रथम न्यूज़ीलैण्ड की ओर आज से सैकड़ों वर्ष पहले दृष्टिगोचर हुये थे। इनके सम्बन्ध में एक स्वतंत्र लेख इस पुस्तक में दिया गया है। देखने में ये पक्षी अपनी भड़कीली पोशाक के कारण अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। इनके नहाने तथा शरीर-स्वच्छता की प्रक्रिया भी बड़ी विचित्र है। ये जमीन पर लोटते हैं और साथ-साथ खूब शोर मचाते हैं, अपने तुर्रे को उठा-उठा कर जब चिल्लाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी दुश्मन से लड़ रहे हैं, पर यह इनकी लड़ाई की क्रिया नहीं, नहाने की, परों की सफाई की प्रक्रिया है।

जल-पक्षी घंटों जल में तरह-तरह से क्रीड़ा करते रहते हैं, जल-विहार में कभी-कभी सारा दिन बिता डालते हैं। इनके चमड़े के भीतर प्रकृति ने चर्बी की एक तह बना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखी है जिसके कारण ये सर्दी अनुभव नहीं करते, ठंडक से बचते हैं। यही नहीं, इनके शरीर की बनावट भी ऐसी है कि ये जल पर आसानी से तैरते रहते हैं, डूबते नहीं; उदाहरण के लिए आप बतखों को देखें, इनकी बनावट बिल्कुल ऐसी नाव के सदृश है, जो डूबे हुए जहाज के मुसाफिरों को बचाने के काम में आती है। ऐसे ही पेंगुइन पक्षी का बदन हू-बहू पनडुब्बी की आकृति का होता है। कुछ तो अपने पंखों से और कुछ परों से शरीर-रूपी नाव के खेने का काम लेते हैं। एक दक्ष तैराक की भांति ये भी काफी देर तक जल के भीतर डूबे रहते हैं और इस तरह शिकारियों से अपना बचाव करते हैं।

पक्षियों में चोर और डाकुओं की भी कमी नहीं है। चोरी में कौआ प्रसिद्ध है, डाकेजनी में गरुड़। जैसा कि इस पुस्तक में वर्णित उसके जीवन-वृत्तान्त से ज्ञात होगा, गरुड़ की कई उपजातियां हैं। इनमें दो इस काम में सबसे दक्ष हैं, और सबसे भयंकर भी हैं—श्वेत मस्तक वाले समुद्री गरुड़ तथा सुनहले गरुड़। समुद्री गरुड़ किस तरह जल-दस्यु का काम करता है, यह नीचे लिखे विवरण से ज्ञात होगा।

समुद्र-तट के किसी ऊंचे गिरिश्रृंग अथवा पेड़ की चोटी पर मादा गरुड़ बैठी है। नर जल के ऊपर उड़ रहा है। कभी सुदूर आकाश में चला जाता है, कभी नीचे आता है। मादा बीच-बीच में उसे एक चीत्कार की-सी आवाज के द्वारा कुछ कहती है। शायद हिम्मत बँधाती है। दैव-दुर्विपाक से एक हंस उड़ता हुआ (शायद किसी दमयन्ती का संवाद लेकर) उसी रास्ते से जा रहा है। गरुड़ की पत्नी की दूर-दृष्टि उस पर पड़ती है; वह एक आवाज देती है जिससे नर सतर्क हो जाता है।

हंस करीब आता है। जल-दस्यु उस पर टूटता है। वह भाग खड़ा होता है। गरुड़ उसका पीछा करता है। कुछ काल तक दोनों उड़ते रहते हैं। अन्त में हंस के डैने थक जाते हैं। गरुड़ यह समझ जाता है और अपने कठिन पंजों से उस पर प्रहार कर उसे घायल करता है। गरुड़ एक बड़े झोंके के साथ उसे समुद्र-तट पर गिरा देता है। हंस का प्राण-पखेरू शरीर छोड़ कर चल देता है।

फिर तो गरुड़ की मादा भी वहां आ पहुँचती है और तब पति-पत्नी दोनों मिल कर उसका भक्षण करते हैं।

पारस्परिक साहाय्य की प्रवृत्ति, और वह भी सामूहिक ढंग पर, पक्षियों में, खासकर छोटे पक्षियों में, बहुत ज्यादा है। एक बार का किस्सा है कि अबाबील पक्षी के एक जोड़े ने किसी मकान की छत पर घोंसला बना रखा था। उसमें वे चैन की नींद सोते थे, पर एक दिन एक दूसरे पक्षी ने आकर उस पर कब्जा कर लिया। लाख कोशिशों पर भी उसने इन्हें भीतर घुसने न दिया। कुछ समय के बाद देखा गया कि अबाबीलों का एक बड़ा-सा झुंड वहां आ पहुंचा। उन्होंने घोंसले के पास आकर बड़ा शोर मचाया, पर अनधिकारी टस-से-मस न हुआ। अन्त में हार कर वे कहीं चली गईं, पर कुछ ही देर में पुनः लौट आयीं। इस बार उन सब के मुँह में मिट्टी थी जिसे लगा-लगा कर उन्होंने घोंसले का मार्ग ही अवरुद्ध कर डाला—दरवाजे पर पलस्तर लगा दी। क्षणों में दम घुटने से घर-घुसे पक्षी का प्राणान्त हो गया।

संक्षेप में पक्षी जीवन की यही कथा है। रूसो ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है, पर हर ओर जंजीरों में बंधा हुआ है। पक्षियों के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती। वे हमारी तरह न तो सामाजिक नियमों और न राजकीय कायदे-कानूनों के बन्धन में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। वे आजाद हैं, जब जहां जी चाहा, चले गये। कभी पहाड़ों की चोटियों पर, कभी नील नभसागर में, कभी फल-फूलों से लदे हुए वृक्षों पर, कभी कमलों से सुशोभित झीलों में, कभी मानव-आवास के बीच उनके गृह-प्रांगण में और कभी ओस से भरे हुए मैदानों के दूर्वादलों पर वे विहार करते हैं। राजनीतिक दाँव-पेंच से उन्हें कोई वास्ता नहीं, उन्हें स्वेज़ के जल से मतलब है, न कि इससे कि इसके ऊपर अंग्रेजों का नियंत्रण है या कि मिस्र वालों का। वे कश्मीर की चैरियों के भूखे हैं, राजनीतिक झगड़ों से उन्हें क्या ? उन्हें फिक्र केवल अपने आहार और मौसम की है। ऋतु के अनुसार वे अपने सरो-सामान ठीक करते रहते हैं, मानों महाकवि अकबर की यह उक्ति उन पर ही चरितार्थ होती है—

हमें क्या जर्मनी आता है, याकि रूस आता है,
यहाँ तो फिक्र है दिल में कि माहे-पूस आता है।

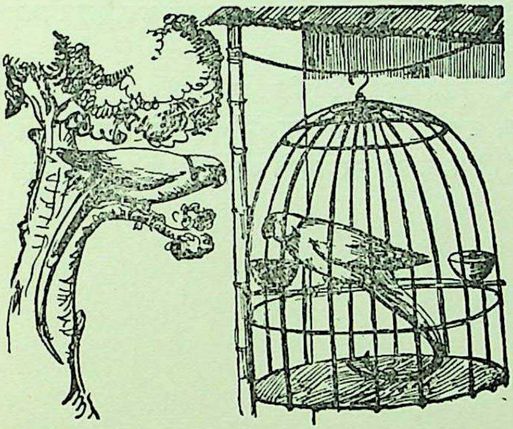

पर माहे-पूस हो या माहे-चैत, शीतकाल की कड़ी सर्दी हो अथवा वसंत काल का सुहावना समय, वे किसी भी दशा में अपनी आजादी खोने को तैयार नहीं हैं। घास-फूस का बसेरा उन्हें अधिक प्रिय है, सोने का पिंजड़ा नहीं। एक बार की घटना है कि पिंजड़े का पक्षी सोने के पिंजड़े में था, वन का पक्षी वन में। अचानक विधाता के मन में न जाने क्या आया कि दोनों का मिलन हुआ।

वन के पक्षी ने कहा—भाई पिंजड़े के पक्षी ! चलो हम दोनों मिल कर वन को चलें।

पिंजड़े के पक्षी ने कहा—वन के पक्षी ! आओ हम दोनों पिंजड़े की एकान्तता में रहें।

वन-पक्षी ने कहा—नहीं, नहीं, मैं जंजीर में अपने को बँधने न दूंगा।

पिंजड़े के पक्षी ने कहा—हाय, मैं किस तरह वन में जा सकूंगा !

बाहर बैठकर वन का पक्षी वन के जितने गान थे उन्हें गाता था।

पिंजड़े का पक्षी सिखाये गान को गाता था।

दोनों की भाषाएं दो प्रकार की थीं।

वन का पक्षी कहता—पिंजड़े के भाई पक्षी ! वन का गीत गाओ तो जरा मैं सुनूं।

पिंजड़े का पक्षी कहता—भाई वन के पक्षी ! पिंजड़े का गीत सीख लो न।

वन का पक्षी कहता—नहीं, मैं सिखलाया हुआ गाना नहीं गाता।

पिंजड़े का पक्षी कहता—हाय, मैं किस तरह वन का गाना गा सकूंगा !

वन का पक्षी कहता—इस घने नील आकाश को देखो, कहीं कोई बाधा नहीं है घूमने में।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिंजड़े का पक्षी कहता—यह पिंजड़ा हर तरह से सुरक्षित है, यहीं आओ न !

वन का पक्षी कहता—एक बार अपने आपको इन मेघों के बीच तो छोड़ कर देखो।

पिंजड़े का पक्षी कहता—इस एकान्त-सुख के कोने में अपने को बांध रखो न ।

वन का पक्षी कहता—नहीं, नहीं, वहां किस तरह उड़ पाऊंगा मैं ?

पिंजड़े का पक्षी कहता—मैं मेघ में बैठने का स्थान कहां पाऊंगा ?

इस तरह दोनों पक्षी एक दूसरे को प्यार करते, पर एक दूसरे के पास नहीं पहुंच पाते थे ।

एक दूसरे को पिजड़े की फांक से चुपचाप देखता तथा चोंच से चोंच मिलाता था ।

न एक दूसरे के भाव को समझ पाता है और न समझा पाता है ।

एक दूसरे से मिलने को पंखों से पिंजड़े पर झपट्टा मारता है और कातर प्राण से कहता है—निकट आओ !

वन-पक्षी कहता है—नहीं, नहीं, मैं निकट न आऊंगा, क्या जाने कब इस पिंजड़े का द्वार मुझे बन्द कर ले ।

पिंजड़े का पक्षी कहता—हाय, मुझमें उड़ने की शक्ति नहीं ! *

हम इन्सानों की अवस्था आज उपर्युक्त "खांचार पाखी" (पिंजड़े के पक्षी) के समान है, सोने का पिंजड़ा हमें भले ही प्राप्त हो, पर प्रकृति की गोद हमें उपलब्ध नहीं है !

---

*महाकवि रवीन्द्रनाथ की एक कविता का यह हिन्दी गद्यानुवाद है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'पक्षी हमारे विनोद का साथी था'... (एक प्राचीन चित्र : कांगड़ा शैली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काग, कौन सन्देश तुम लायो, तव बोलिया सुहावन

(एक प्राचीन चित्र : कांगड़ा शैली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

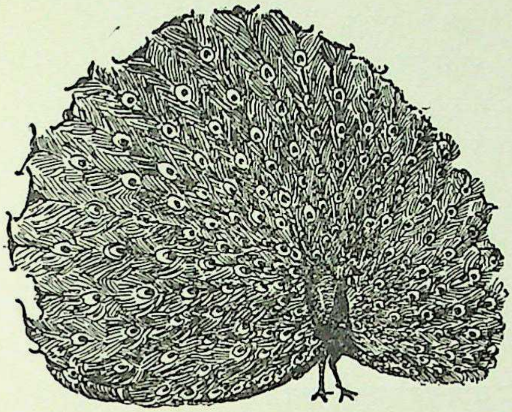

भारतीय साहित्य में पक्षी

अपनी शीतोष्णता के कारण भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहां हर प्रकार के पक्षी उपलब्ध हैं—जाड़ों के भी, गर्मियों के भी। कुछ तो यहां के बारहमासी पक्षी हैं, कुछ ऋतु-विशेष में बाहर से आते हैं, फिर ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ अन्यत्र चल देते हैं। शीतकाल में गोधूलि के समय आप देखेंगे कि कतार के कतार जल-पक्षी सुदूर व्योम-मार्ग से कलरव करते हुए हिमालय की ओर से चले आ रहे हैं। निशा-काल के शान्त समय में भी इनके कूजन के शब्द कानों में आते रहते हैं। ये शीतकालीन पक्षी हैं जो इस देश की झीलों में आ कर शीतकाल बिताते हैं, तटवर्ती शस्य-पौधों के फल से उदर-पूर्ति करते हैं, फिर वसन्त के आते ही पहाड़ों को चल देते हैं। इनकी कतार देख कर ऐसा लगता है मानो सैनिकों की पंक्तियां किसी युद्ध-स्थल की ओर जा रही हों।

इन वतखों में बहुतेरी किसी और देश को न जा कर भारत के ही ठंडे हिस्सों में रह जाती हैं, कश्मीर में अथवा हिमालय के किसी अन्य प्रान्तर में। कुछ तो गर्मियों में यहां ही, ऐसी झीलों में, जिनका पानी सूखता नहीं, रह जाती हैं।

इसी तरह ग्रीष्म-काल का पदार्पण होते ही कुछ पक्षी दक्षिणसे उत्तर अथवा उत्तर-पूर्वीय-प्रदेशों में आ जाते हैं। कुछ अफ्रीका से इस देश के पश्चिमी हिस्से में आते हैं।

पर भारतवर्ष के अधिकांश पक्षी ऐसे हैं जो तमाम साल इसी मुल्क में व्यतीत करते हैं, और ऐसे पक्षी दस-बीस नहीं, सैकड़ों प्रकार के हैं। हां, जलप्लावन आदि कारणों से जब भोजन की कमी हो जाती है तो ये स्थान-परिवर्तन कर लेते हैं, पर दूर नहीं जाते; अड़ोस-पड़ोस के ही किसी इलाके में चले जाते हैं।

इन पक्षियों में से कइयों के साथ जन-जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, जैसे कि सुग्गा, मैना, कौआ, कपोत, गौरैया आदि। तोता-मैना पालने की परिपाटी बहुत दिनों से इस देश में चली आती है। कौए घर-घर के चिरपरिचित पक्षी हैं ही, कपोत तथा गौरैये भी मानव-आवास के साथ-साथ ही अपना घर बनाते हैं।

भारतीय, खासकर संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में न जाने कितनी पंक्तियां इनके ऊपर लिखी जा चुकी हैं; इनकी प्रशस्ति में कवियों ने अपनी कलमें तोड़ डाली हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें से कई तो ऋतुराज वसन्त के मानो अभिन्न अंग के समान हैं। सुनिए कवि विद्यापति की यह सूक्ति—

आएल रितुपति राज वसन्त,
धाओल अलिकुल माधवि-पंथ।
दिनकर-किरण भेल पौगंड,
केशर-कुसुम धएल हेमदंड।
नृप-आसन नव पीठल पात,
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ।
मौलिक रसाल मुकुल भेल ताय,
समुखहि कोकिल पंचम गाय।
सिखि कुल नाचत अलिकुल यन्त्र,
द्विज कुल आन पढ़ आसिस मन्त्र।

भारतीय लोक-गीतों में भी पक्षियों की खासी चर्चा है, पर जिस पक्षी ने उनमें सबसे अधिक स्थान पाया है वह है काग। प्राचीन काल में साधारण जनता के लिए न तो यातायात की कोई व्यवस्था थी न डाक की। प्रवासी प्रियजन का सम्वाद पाना एक कठिन काम था। संयोगवश यदि कोई व्यक्ति परदेश से आया तो उसकी खबर मिली। स्वभावतः परिवार के लोग—विशेषतः प्रवासी पुरुष की अर्द्धांगिनी—उसके कुशल-सम्वाद के लिए चिन्तित रहा करते थे तथा काग उड़ा-उड़ा कर अथवा काग की बोली सुनकर, जमीन पर चिन्ह अंकित कर या दृष्टि-पथ पर आने वाले प्रथम तृण के टुकड़े को अंगुलियों से माप कर उसके शुभ-समाचार या गृहागमन की पूर्व-सूचना पाने की चेष्टा किया करते थे।

प्रोषितपतिका जब विरह से अत्यन्त विकल हो उठती थी तो काग से प्रार्थना करती थी कि वह उसका सम्वाद प्रियतम के पास पहुँचा आये तथा उसकी कुशल-वार्ता लाकर उसकी चिन्ता दूर करे।

प्राचीन काल से इस देश में यह धारणा चली आती है कि कागों का बोलना शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की भावी घटनाओं का सूचक है तथा जब कभी कोई अतिथि आने को होता है तो ये पहले से ही बोल-बोल कर इसकी सूचना दे देते हैं। इसी विश्वास के आधार पर लोक-गीतों में काग उड़ाने, काग के बोलने, काग के सन्देश ले जाने की बार-बार चर्चा की गई है। विवाह आदि शुभ-अवसरों पर गाने वाले गीतों में बार-बार काग से अनुरोध किया गया है कि वह शुभभाषी हो—'शुभ बोलु रे कागा, शुभ बोलु',—आदि।

कौओं के सम्बन्ध में यह धारणा भी, कि यदि वे आहार बांट-बांट कर खायें तो शुभ है, इस देश के पूर्वीय प्रान्तों में प्राचीन काल से चली आ रही है। भक्त कवि चंडीदास की नायिका तभी तो कृष्ण-आगमन की आशा अपने हृदय में रखती है और कहती है—

आजु परो भाते काको कलोकली,
आहारो बांटिया खाय........।

दूसरी ओर एक ग्रामीण नायिका गृह-प्रांगण-स्थित चंदन के वृक्ष पर से बोलने वाले काग से कहती है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की काग नहर से आवा की हरिजी पठावा,
काग कौन सन्देश तुम लायो तव बोलिया सुहावन ?

काग उत्तर देता है—

नहीं हम नैहर से आवा ना हरि जी पठावा,
आजु से नवयें महीना होरिल तोरे होइहें।

—न हम तुम्हारे मैके से आये हैं, न तुम्हारे प्रियतम ने हमें भेजा है। यही बताने आये हैं हम कि आज से ९वें महीने तुम्हारे पुत्र होगा।

नायिका तब उससे कहती है—

चुप रहौ काग, तू चुप रहौ, बैरिनि ना सुनें।

—काग रे, चुप रह, चुप रह, गांव की मेरी कोई बैरिन स्त्री इसे न सुन ले। कहीं नजर न लगा दे।

इसी तरह एक दूसरी ग्रामीणा अपनी कन्या के लिए वर ढूंढने का अनुरोध सुग्गे से करती है—

सावन सुगना मैं गुर घिउ पाल्यों चैत चना कै दालि,
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव।

—सुआ ! सावन में मैंने तुझे गुड़ और घी, चैत में चने की दाल, खिला-खिला कर पाला। अब सयाना-समझदार हुआ तू। जा, मेरी कन्या के लिए वर ढूंढ ला।

मिथिला प्रदेश की एक नव-वधू पति का इन्तजार करते-करते थक जाती है। अन्त में पति आता है, कहता है, कोयल की मधुर बोली सुनते-सुनते देर हो गई। वधू कोयल को पत्र लिखती है, कोयल उत्तर देती है—"तू भी ऐसी ही मीठी बोली बोल कर क्यों नहीं प्रियतम को ठहरा लेती है ?" और इस प्रकार मधुरभाषिणी न होने के लिए उस पर व्यंग्य करती है। फिर भी एक दूसरी नायिका उससे आरज़ू-मिन्नत के साथ कहती है—

सुनु-सुनु कोयल एहि ठां आऊ,
मधुमय षट्रस भोजन खाउ,
करु गय काज हमर यहि राति,
विनति करुअ तोहर कत भांति,
पांखि मढ़ाएब मोतिक रेख,
अहंक बनाएब सुन्दर भेख,
लय लिय लय लिय लिखलहुं पांति,
बितय चहय पिक आधी राति,

* * *

कहब बुझाय सुनब पहुं बात,
कथिलय कैलहुं कामिनि कात,
ओ धनि मरत विरह विष खाय,
तिन सै पैसठि राति बिताय,
सतत नयन सं नीरक छोर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलु-चलु मरइछ लिय गै कोर,
जँ नहि जाएब आजुक राति,
कामिनि देतिह जीवन साति।

—कोयल री, यहां आ। मधुमय भोजन खा और आज की रात मेरा एक काम कर आ, मैं विनती कर-कर तुझसे कहती हूं। मैं सोने से तेरे पंख मढ़ाऊंगी (पता नहीं, कोयल के ऊपर इस प्रलोभन का क्या असर हुआ), मोतियों से अधर और इस प्रकार तेरा सुन्दर रूप बनाऊंगी।

आधी रात बीतने आयी, ले मेरा यह पत्र जो कि मैंने अपने प्रवासी प्रियतम के नाम लिखा है। इसे उन्हें देना और समझा कर कहना कि किस लिए आपने एक कामिनी का वरण किया यदि उसकी सुधि नहीं लेनी थी? ३६५ लम्बी रातें वह आपकी प्रतीक्षा में काट रही है और अब शीघ्र ही विरह-विष पान कर अपना प्राण देने वाली है।

उसकी आंखों से अविरल अश्रुपात हो रहा है, शीघ्र चलकर उसे सान्त्वना दीजिए, यदि आज की रात आप न गये तो फिर आपकी प्रियतमा का अस्तित्व ही न रहेगा।

इसी तरह एक राजस्थानी नायिका बड़ी आरजू के साथ काग से कहती है—

उडज्या रे काग, गिगन का वासी,
खबर तो ल्याव म्हारे राजन की।

—ओ गगन विहारी काग! जरा उड़ कर जा तो, मेरे प्रियतम की खबर ला।

और विद्यापति की नायिका इन सुन्दर शब्दों में उसे प्रलोभन देती है—

मोरा रे अंगनमा चनन केरि गछिआ,
ताहि चढ़ि कुररय काग रे,
सोने चोंच बांधि देब तोयं बायस!
ज्यों पिया आओत आज रे।

फिर देखिए, महाराष्ट्र प्रदेश की एक अबोध बाला, ससुराल में निवास करती हुई, एक पंछी से पुकार-पुकार कर कहती है—

रूण-झुण, पांखरा रे, जा माझ्या माहेरा
कमानी दरवाजा रे। त्यावरी बैस जा
घरच्या आईला रे। सांगोवा सांग जा
दादाला सांग जा रे। ने मला माहेरा।

—सुन ले मेरा संदेश, ओ पक्षी! लिख कर जल्दी से मेरी मां के पास उसे पहुंचा दे। कहना मां से कि वह शीघ्रातिशीघ्र मेरे भाई को यहां भेज कर मुझे बुला ले। मां के घर का कमान का दरवाजा अच्छी तरह पहचान कर वहां जाना।

पक्षियों के द्वारा प्रवासी पति के पास सन्देश भेजने या उनकी खबर पाने का यह यत्न सदियों से इस देश की नायिकाएं करती आयी हैं, साथ ही कोहबर-वासक-गृह की दीवारों पर प्रथम मिलन की रात में विविध पक्षियों की तस्वीर बनाने की भी परिपाटी इस देश में रही है—खास कर मोर और तोतों की। इससे सम्बन्धित एक सुन्दर मैथिल लोक-गीत सुनिए—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहमहि लिखल मोर रे मजुरवा,
कहमहि लिखल आठ दल रे,
कोबर लिखल मोर रे मजुरवा,
वेदिय लिखल आठ दल रे।
कहमहि बोलल कारी रे कोयरिया,
कहमहि बोलल मजूर रे।
आम डारि बोलल कारी रे कोयरिया,
दुअरहि बोलल मजूर रे।

—कहां मोर-गण चित्रित हुए और कहां अष्टदल कमल लिखा गया? कोबर-कोहबर में मोर चित्रित हुए, वेदी के चारों ओर अष्टदल कमल लिखे गए।

कहां काली कोयल कूकी? कहां मयूर बोला? आम की डाली पर कोयल कूकी, दरवाजे पर मोर बोला।

प्रियतम के घर लौटने पर एक राजस्थानी नायिका का गीत भी सुनें—

साजन-साजन हूं करूं,
साजन जीव जड़ी,
साजन फूल गुलाब को,
निरखूं घड़ी-घड़ी!
काग उड़ावत धण खड़ी,
आयो पीव भड़क्क,
आधी चूड़ी काग गली,
आधी गई तड़क्क।
साजन आया हे सखी,
ज्याँ की जोती बाट,
थामा नाचै, घर हँसै,
खेलन लागी खाट।

और असम के एक प्रेमी नायक की इन बातों पर ध्यान दें—

हांह होई पोरिम गैं तोमारे पुखुरित,
पारह होई पोरिम गोई चालत,
धाम होई होमाम गोई तोमारे शरिरत,
माक्खी होई चूमा देम गालत।

—मैं हंस हो कर तुम्हारे (प्रियतमा के) तालाब में तैरूंगा, कपोत हो कर तुम्हारे घर के मुड़ेरे पर बैठूंगा, पसीना हो कर बदन पर आऊंगा, मक्खी बन कर तुम्हारे कपोल चूमूंगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असम के आहोम राजाओं के दरबारी पंडितों के द्वारा लिखित उनके वंश-इतिहास बुरंजियों में सात कौओं की कथा तथा मुर्गे की जांघ पर के मांस के द्वारा भावी घटनाओं के जानने का उल्लेख भी पक्षियों के साथ मानव-जीवन के घनिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।

स्वभाव-भेद के अनुसार लोक-साहित्य में पक्षियों का जाति-भेद भी किया गया है तथा उन्हें पक्षियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र माना है, मानो वे भी वर्णाश्रम धर्मावलम्बी हों।

श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "पक्षी" हमारे "विनोद का साथी था, रहस्यालाप का दूत था, भविष्य के शुभाशुभ का द्रष्टा था, वियोग का सहारा था, संयोग का योजक था, युद्ध का सन्देश-वाहक था, और जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था, जहां वह मनुष्य का साथ न देता हो।" लोक साहित्य के उपर्युक्त कुछ अवतरणों से यह साफ-साफ परिलक्षित है।

फिर भी, आश्चर्य है कि हमारे देश में पक्षियों की रूप-रेखा, रहन-सहन, पक्षी-जीवन एवं शरीर-रचना-विज्ञान के अध्ययन की भरपूर चेष्टा कभी नहीं की गई और न यही जानने का यत्न किया गया कि इस देश में कितने प्रकार के पक्षी पाये जाते हैं। मुगल बादशाहों में से कइयों को चन्द पक्षियों—बाज, कबूतर आदि से प्रेम अवश्य था, जिसके प्रमाण इस पुस्तक में प्रकाशित मुगल-शैली के पक्षी-चित्र हैं, पर वैज्ञानिक ढंग पर पक्षियों के अध्ययन की कमी ही रही, मसलन भारतीय पक्षियों की सूची तैयार करने की ओर किसी का ध्यान न गया। सर्वप्रथम १९वीं सदी में, शायद १८६२ में, जर्डन नाम के एक अंग्रेज ने भारतीय पक्षियों पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया और इसके बाद भारतीय नेशनल कांग्रेस के जन्मदाता श्री ह्यूम के तत्वावधान में इस विषय पर कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए तथा एक पत्रिका भी, 'स्ट्रे फ़ेदर्स' नाम की, प्रकाशित हुई जो १८८८ तक जीवित रही। इसके बाद और भी कई पुस्तकें, अंग्रेजी में ही, इस विषय पर जब-तब प्रकाशित होती रहीं, पर इस विषय में दिलचस्पी लेने वाले अधिकतर विदेशी थे, भारतीय नहीं।

गत २०–२५ वर्षों के भीतर कुछ भारतीय जनों में भी इस विषय की ओर अभिरुचि पैदा हुई है तथा बम्बई के श्री सलीम अली ने अंग्रेजी में, श्री पारसनाथ सिंह तथा कुंवर सुरेशसिंह ने हिन्दी में, तथा कलकत्ते के पक्षी-प्रेमी डाक्टर सत्य चरण लाहा ने बंगला में, भारतीय पक्षियों पर सुन्दर तथा उपादेय ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रकृति से हमारा जितना सम्बन्ध-विच्छेद होता गया है, हम उससे जितनी दूर होते गए हैं, उतना ही मानव जाति के बीच पारस्परिक संघर्ष और घरेलू कलह का जोर बढ़ता गया है। यही नहीं, हम नाना प्रकार के रोगों के वशीभूत होते गए हैं, हमारे स्वास्थ्य का संहार होता गया है।

प्रकृति का एक प्रमुख अंग है पक्षी-समाज। हमारी कोमल भावनाओं को इसके द्वारा भी वैसा ही बल मिलता है, जैसा कि बाग-बगीचों, वन-उपवन के सुन्दर, सजीले फूलों से। यदि हम संसार के झमेलों से समय निकालकर एक दो घण्टे भी पक्षियों के संग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिता सकें तो हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाए, संसार के पंकिल-जल के दलदल से ऊपर निकल कर हम विश्व-प्रेम के स्वच्छ वारि से अपनी मनोभावनाओं को सिक्त करने में समर्थ हो सकें। और तभी हम "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श-पथ पर आगे बढ़ सकेंगे। प्रकृति से विलग होकर हम अन्तर की उन भावनाओं को, जो दिव्य हैं, कभी भी जागृत न कर पायेंगे। तभी तो बापू ने साबरमती के तट पर तथा गुरुदेव ने शान्ति निकेतन के वन-वृक्षों के बीच अपना आवास बनाया था।

शहर के लोग चिड़ियाखाने तथा चिड़िया बाजार में पक्षी देखने जाते हैं, पर उन्हें पता नहीं कि उनके अड़ोस-पड़ोस में ही सबसे बड़ा चिड़ियाखाना है जिससे वे उदासीन हैं। मेरा तात्पर्य उन बड़े-बड़े वृक्षों से है जो शहर के आस-पास सौ-दो-सौ वर्षों से अपनी भुजाएं बढ़ाकर खड़े हैं, मानों हमें अपनी-अपनी ओर बुला रहे हों। इनके ऊपर सुबह, दोपहर, शाम को जो पक्षियों का मेला लगता है वह देखने ही योग्य है। वट-पीपल के वृक्ष जिन दिनों फलों से लद जाते हैं—उन पर दो-चार नहीं, सैकड़ों किस्म के पक्षियों का जमवट लगता है, एक शोर-सा मचा रहता है। पत्तों की ओट में कोयल, हारिल, तरु-शिखर पर तोतों का समूह, डाल-डाल पर भृंगराज, पंडुक, श्यामा, दोयल, बुलबुल, पीलक, मछमरनी, नीलकंठ आदि अपनी-अपनी बोलियां बोलते हुए नाचते हैं, थिरकते हैं, चहकते हैं, तथा वृक्ष के छोटे-छोटे सुमधुर फलों से अपनी भूख मिटाते हैं। यदि आप को इस मनोमुग्धकारी दृश्य को निरखना हो तो आहिस्ता-आहिस्ता वृक्ष के करीब चले जाइए तथा समीप के किसी झुरमुट में बैठिए, फिर देखिए, कितना आनन्द आता है।

'अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग' का नमूना देखें। सेमल के वृक्ष पर, जिन दिनों यह पूर्णरूप से पुष्पित हो उठता है, पक्षियों की भीड़ लग जाती है, इसके फूलों से रस की धारा प्रवाहित होती है, जिससे वे अपने कंठ की तृष्णा मिटाते रहते हैं। सेमल के लाल फूल, रंग बिरंगे पक्षियों से घिरे हुए एक अत्यन्त सुहावना दृश्य उपस्थित करते हैं।

फिर जाड़ों में जब सर-सरिताएं पंक-विहीन, स्वच्छ हो कर नील जल की चादर ओढ़ लेती हैं, तब उनके सिकतामय किनारों पर जा कर देखें, कैसे-कैसे सुन्दर पक्षी वहां विचर रहे हैं। शस्य-क्षेत्रों—धान के खेतों से घिरी उन झीलों में, जहां क्रौंच-दम्पति प्रणय-लीला में लीन तथा अन्य जल-पक्षी—लालसर, चैती, टील आदि—रात-दिन कूजते रहते हैं, जा कर इनके कलरव से अपने कानों को तृप्त कीजिए।

भारत का कोना-कोना, चाहे वह हिमालय का पहाड़ हो, अथवा राजपूताने का रेगिस्तान—पक्षियों से भरा हुआ है। वृक्ष, सर-सरिता और झील की बात छोड़िए, गांव की पगडंडियों पर ही आप जाकर कुछ काल शान्त भाव से खड़े हो जाएं तो देखेंगे कि विविध प्रकार के पक्षी—पंडुक, खंजन, मैना, महोख आदि—इसके आस-पास दाना चुग रहे हैं या कूजन कर रहे हैं। गरज़ यह कि भारतवर्ष आज भी, वन-वृक्षों की हृदयहीन कटाई के बाद भी, पक्षियों से खाली नहीं है, बल्कि परिपूर्ण है। कवि से क्षमा-याचना करते हुए हम निस्संकोच कह सकते हैं कि इस देश में—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खग ना हिरानो, खग प्रेमी हिरानो है।

महाकवि अकबर ने लिखा था—

आलम को लुभाती हैं पियानो की सदाएं,
बुलबुल के तरानों में अब लय नहीं आती।

यह सही है कि "हज़ार-दास्तां" बुलबुल की जगह आज कृत्रिम संगीत अधिक लोक-प्रिय हो रहे हैं, पर इनमें दिल पर असर करने वाली वह शक्ति कहां जो इसे तड़पा दे, रुला दे या नचा दे। 'वह बात दे जुबां में कि दिल पर असर करे!' अफसोस, कि इनमें वह बात नहीं!

जैसा कि पूर्व-कथित है, इस मुल्क में हजारों किस्म की चिड़ियां प्राप्य हैं। यही नहीं, एक ही जाति के पक्षी के रंग-रूप में स्थान-भेद से काफी अन्तर पाया जाता है। इस छोटी-सी पुस्तक में उन सब का जिक्र करना मुश्किल था। दरअसल ऐसी कोई भी पुस्तक अंग्रेजी तक में आज तक न लिखी जा सकी जिसमें भारत में पाये जाने वाले समस्त पक्षियों का उल्लेख हो। अतः मैंने इस पुस्तक में भारत के प्रमुख पक्षियों पर ही कुछ न कुछ लिखने की—पाठकों से उनका परिचय कराने की—चेष्टा की है। इस प्रयास में मुझे कहां तक सफलता मिली है, यह तो वही बता सकेंगे जो इस विषय के पंडित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : १ घर की ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : २

नेहरू जी
कबूतर
छोड़ते हुए

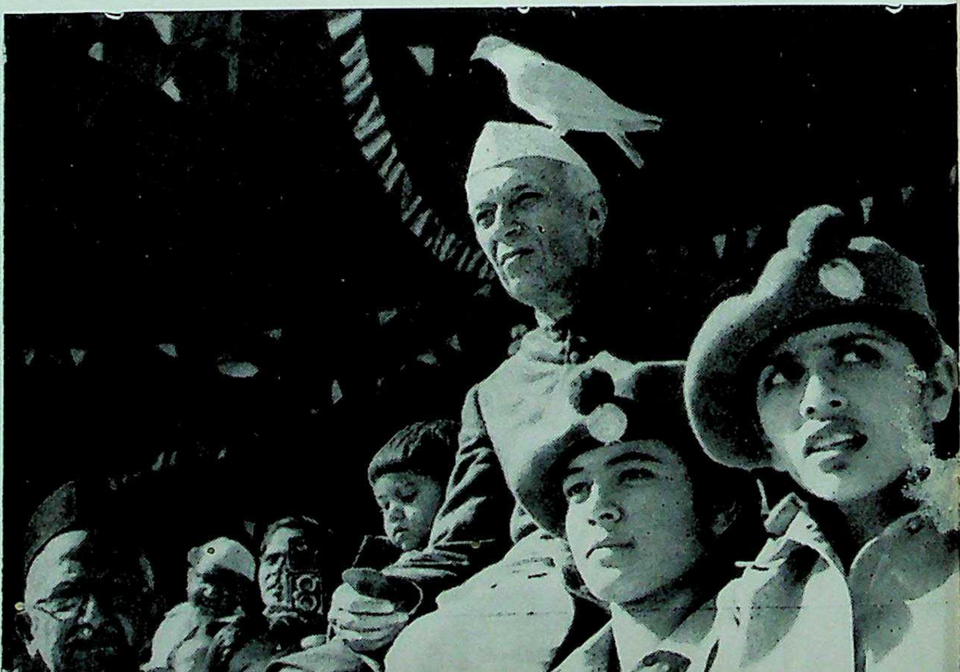

चित्र संख्या : ३

शान्ति का
सन्देशवाहक
कबूतर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

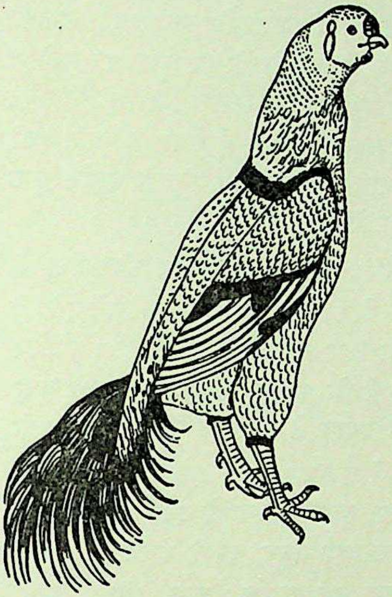

भारतीय पक्षी और चित्रकला

भारतवर्ष की चित्र तथा मूर्ति कलाओं में पक्षी ने आदिकाल से स्थान पाया है, पर शुरू में पक्षियों का चित्रांकन एक सीमित परिधि में आबद्ध था। चित्रों में दो-चार खास पक्षियों के अलावा औरों को शायद ही स्थान प्राप्त हुआ हो; मोर, तोता, हंस, मुख्यतः इनका ही अंकन होता था और वह भी वासकगृहों की भित्ति पर, सजावट के रूप में, अथवा राधा-कृष्ण-लीला से सम्बन्धित चित्रों में या किसी नायिका के नायक के पास संवाद भेजने के सिलसिले में। स्वतन्त्र रूप में पक्षी के चित्रांकन की प्रणाली न के बराबर ही थी।

मूर्तिकला में केवल ऐसे पक्षी, जिनका सम्बन्ध हिन्दू देवी-देवताओं से है, स्थान पा सके। दक्षिण भारत के मंदिरों में ऐसे पक्षियों की मूर्तियां काफी संख्या में उपलब्ध हैं। इनमें भगवान विष्णु का वाहन गरुड़, लक्ष्मी का उलूक सरस्वती का हंस, मुख्य हैं। गरज़ यह कि पौराणिक कथाओं में उल्लिखित तथा देवताओं से सम्बद्ध पक्षियों को प्राचीन हिन्दू मूर्तिकला में काफी परिमाण में स्थान मिला।

पक्षी-चित्रांकन की प्रथा को मुगल बादशाहों के द्वारा काफी बल मिला। उनके संरक्षण में इसने तरक्की ही नहीं की, बल्कि यह उन्नति की चरम-सीमा पर पहुँच गई। मुगल बादशाह स्वभाव से ही कलाप्रेमी थे, साथ-साथ प्रकृति के विभिन्न अंगों—पशु, पक्षी आदि—में दिलचस्पी रखने वाले भी। अतः स्वाभाविक था कि उनके शासन-काल में चित्रकला का उत्कर्ष होता तथा पशु-पक्षियों के चित्रांकन की ओर चित्रकारों का ध्यान खास तौर पर जाता। अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां, तीनों ने ही पक्षी-चित्रांकन को प्रोत्साहित किया, जहांगीर ने विशेषरूप से, जिसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबसे बड़ा प्रमाण उसका पक्षी-चित्रों का एलबम है जो मुगल शैली के चित्रों की एक बहुमूल्य निधि है ।

शुरू-शुरू में मुगल शैली के चित्रकार पक्षी-चित्रों का उपयोग पुस्तक की सजावट के लिए करते थे । ऐसे अनेक तत्कालीन ग्रन्थ मिलेंगे जिनके हर पृष्ठ पर पक्षियों के चित्र बने हुए हैं; बाबरनामा तथा अकबरनामा की ऐसी प्रतियां मिली हैं जिन पर अकबर-कालीन प्रसिद्ध चित्रकार मनोहर के बनाए हुए चित्र हैं तथा 'गुलिस्तां' की एक प्रति लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है जिसके प्रत्येक पृष्ठ को मनोहर के बनाए हुए पक्षियों के चित्र सुशोभित करते हैं ।

चित्र में पक्षी-सम्बन्धी कथाओं के प्रदर्शन का भी तत्कालीन चित्रकारों के द्वारा प्रसार हुआ । मणि नामक एक प्रसिद्ध चित्रकार का 'ऐयारे दानिश' ऐसे ही चित्रों में है जिसमें उल्लू तथा कौए के झगड़े की कथा चित्र में कही गई है । विविध पक्षियों का जमघट है, जिसमें यह फैसला हुआ है कि पक्षियों का सरदार उल्लू चुना जाय । इस फैसले के विरोध में कौआ एक ऊंचे स्थान से व्याख्यान दे रहा है, जिसके परिणामस्वरूप अंत में यह प्रस्ताव रद हो जाता है ।

धीरे-धीरे पक्षियों के स्वतन्त्र अंकन का, स्वाधीन रूप से उनके चित्राध्ययन का, प्रवेश होता है तथा मुगल चितेरे, खासकर उस्ताद मंसूर, अपनी कलम से सुन्दर पक्षियों का अंकन करते हैं । मंसूर के बनाए हुए सारस, बाज़, चील, गीध आदि के चित्र ऐसी ही तस्वीरों में हैं । क्रियाशील पक्षियों—खास कर बाज़—के चित्र भी मंसूर ने बड़े कौशल से अंकित किए हैं ।

बादशाह अकबर के ज़माने के मनोहर, मणि, हुसैन, कान्हा आदि चित्रकार प्रसिद्ध हैं, पर जहां तक मुगल शैली के चितेरों का सम्बन्ध है, जहांगीर का शासन-काल उनके अभ्युदय का चरम काल है—वह समय जबकि मंसूर—जिसे जहांगीर ने 'उस्ताद' की पदवी प्रदान की थी—तथा नादिर अल अस्र जैसे कुशल चित्रकार पैदा हुए जिनके चित्रों में कलम की बारीकी तो है ही, चित्रों में प्राण है, सजीवता है । खेद है कि ऐसे चित्रों का अधिकांश हिस्सा आज विदेशी चित्रशालाओं की शोभा बढ़ा रहा है ।

निस्सन्देह ऐसे चित्रकारों में मंसूर का स्थान सब से ऊंचा है । उसके चित्रों पर अधिकतर उसका अपने हाथों से लिखा हुआ नाम पाया जाता है, मानो उसे इस बात का भय था कि कोई और उसके चित्रों की चोरी न कर ले—उन्हें अपने न बता दे । और इसमें शक नहीं कि समकालीन अथवा आगे की पीढ़ियों में कोई ऐसा चितेरा न हुआ जो कुशलता से उसके तर्ज़ की नकल कर सकता। बिना अत्युक्ति के वह भी अपने नकलनवीसों के सम्बन्ध में कह सकता था कि—

मेरी तर्ज़े कलम की वह अगर तकलीद करते हैं,
खिजल होंगे, असर की भी अगर उम्मीद करते हैं।

किसी अन्य चितेरे की कलम वह असर न पैदा कर सकी जो उसकी तूली ने किया । शाहजहां की दिलचस्पी अधिकतर शिल्पकला की ओर गई, पर उसका ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह चित्र-प्रेमी था तथा उसके एलबम में भी अनेक ऐसे सुन्दर चित्रों का समावेश है जिसे मंसूर के बाद के चित्रकारों ने अंकित किए थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर तथा शाहजहां की पोषिता यह कला लाहौर तथा दिल्ली के चित्रकारों के बीच, कम या बेशी, मुगल साम्राज्य के जीवन-संध्या-काल तक जीवित रही।

महाराज संसार चंद से पोषित कांगड़ा शैली के चित्रों में भी पक्षी ने प्रमुख स्थान पाया था।

आज से दस-बीस साल पहले तक इस देश के विविध हिस्सों में महिलाओं में गुदना गुदवाने का रिवाज था, शरीर के कतिपय अंगों पर, खास कर हाथों पर, नाम तथा चित्र खुदवाने का। इनमें मोर और तोते खास तौर पर स्थान पाते थे और यह इस बात का साक्षी है कि यद्यपि मुगलों के शासन-काल में पक्षी-चित्रकला ने विशेषरूप से उत्कर्ष पाया, चित्रों में पक्षियों के रूपांकन की प्रथा तथा पक्षी-प्रेम इस देश में बहुत पहले से था। काश, हम यह जान पाते कि पुराण-कालीन चित्रकार चित्रलेखा ने पक्षियों के कितने चित्र अंकित किए थे!

मुग़लों में जहांगीर का शासन-काल मुग़ल शैली की चित्रकला का स्वर्णयुग माना जाता है। जहांगीर ने फारस के राज-दरबार के दो मशहूर चितेरों—मीर सैय्यद अली तथा समद को अपने यहां बुला कर उनसे मुसलमान एवं हिन्दू चित्रकारों को शिक्षा दिलवाई थी तथा मुग़ल, हिन्दू, दक्षिणी और यूरोपीय चित्रकर्ताओं के चित्रों का एक सुन्दर संग्रहागार निर्मित किया था। वह स्वयं चित्रों का पारखी था तथा चित्रशाला में जा कर उनके चित्रांकन का स्वयं निरीक्षण किया करता था। उसके समय के चित्रों तथा मानव, पशु और पक्षियों के अंकित रूपों से सुशोभित पुस्तकों की पाण्डुलिपियां आज हिन्दुस्तान ही नहीं, अमरीका तथा यूरोप के अजायबघरों की शोभा बढ़ा रही हैं। इनमें सबसे महत्व के चित्रों के वे एलबम—मुरक्का—हैं जो अधिकांशतः बर्लिन तथा तेहरान के सरकारी ग्रन्थ-संग्रहागारों में सुरक्षित हैं। कुछ लुव्र संग्रहालय, ग्यीमें संग्रहालय, सिनसिनाती के कला संग्रहालय, कनसस संग्रहालय तथा ओटो सोन-रेथेल के संग्रह में भी हैं। ये सभी १७वीं सदी के प्रारम्भ के हैं।

जहांगीरकालीन चित्रशैली पर तुर्किस्तान की तत्कालीन शैली की छाप साफ परिलक्षित है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जहांगीर ने तुर्किस्तान से फ़र्रुख बेग नाम के किसी चित्रकार को १५८५ ई० में भारत बुला कर अपनी चित्रशाला का अध्यक्ष नियक्त किया था और उसके ही प्रभाव से गोवर्धन, बिशनदास, दौलत तथा आक़ा रेज़ा आदि चित्रकारों की कलम में यह असर आया था। फ़र्रुख बेग ने स्वयं भी अनेक चित्र अंकित किए थे जो कला के श्रेष्ठ नमूनों में शामिल हैं, पर उसके तथा औरों के चित्रों में यह फर्क है कि जहां बालचन्द, बिशनदास, दौलत आदि के चित्रों के पशु, पक्षी और वृक्ष भारतीय हैं, उसके चित्रों के पशु-पक्षी-वृक्षादि इस देश में नहीं बल्कि तुर्किस्तान, काबुल और कश्मीर तक में पाए जाते हैं। फर्रुख के बाज और चकोर हमारे बाज-चकोरों से कुछ भिन्न हैं।

मुग़ल शैली एक ऐसी शैली है, जिस पर राजपूत, तुर्की, फारसी तथा यूरोपीय शैलियों का प्रभाव विद्यमान है। जहांगीर ने बहुतेरे यूरोपीय चित्रों का भी संग्रह किया था; वह सर टामस रो के साथ बैठकर घण्टों चित्रकला सम्बन्धी बातें किया करता था। पर मुग़लकाल के—खासकर जहांगीर कालीन चित्र—जिस

-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैली से भी प्रभावित हुए हों, इन सबों में पक्षी ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। कुछ तो विभिन्न पक्षियों के स्वतन्त्र चित्र हैं, बाकी में भी चित्र के चारों किनारों पर तरह-तरह के पक्षी अंकित हैं। ये मानव तथा पक्षी के बीच घनिष्ट सम्बन्ध के जबर्दस्त द्योतक हैं। अधिकांश चित्रों में मुग़ल बादशाह या बेगमें हाथ पर बाज या तोता लिए नज़र आती हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में शेख ज़ैनुलउद्दीन (कलकत्ता), राम दास तथा भवानीदास (पटना) नामक चित्रकारों ने पक्षियों के सुन्दर चित्र अंकित किए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum,
LUCKNOW.

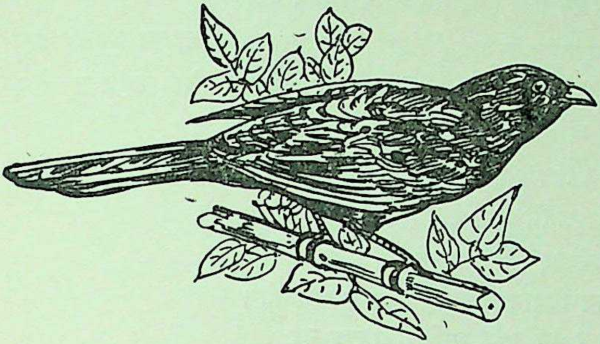

कोयल

बन बागन पिक बट परत की बिरहिन मत मैन,
कुहो, कुहो, कहि-कहि उठत करि करि राते नैन ।

—बिहारी

बसंत का दिन । पौ फटने का समय । उषा काल । धीमी-धीमी पुरवाई । कलियों का चटकना । अमराइयों के बीच से कोयल बोल उठती है—'कुहू-कुहू ' और एक साथ सहसा सैंकड़ों हृदयों के हृदय-तन्तु कांप उठते हैं, डोल उठते हैं । आगे का हाल इन पंक्तियों में पढ़िए—

सिहर उठा उर देख नदी का,
सिहर उठी जल-बीच पंकजा ;
ताल-ताल पर तेरे आली,
प्रेम-व्यथा जग उठी संत की ।

संत-हृदय में भी प्रेम-व्यथा जगाने की शक्ति सिवा कोयल के और किस पक्षी में है ? कौन है वह हृदय जिसे मदभरी कोयल की कूक ने तड़पाया नहीं, रुलाया नहीं ? प्रकृतितः भारतीय साहित्य ने जो स्थान कोयल को दिया है वह किसी और को नहीं । न जाने कितनी शत-सहस्र पंक्तियां इसकी प्रशंसा में, प्रशस्ति में लिखी जा चुकी हैं और आज भी, जबकि प्राचीन परम्पराओं की दीवार द्रुत गति से ढहती जा रही है, आधुनिक साहित्य में इसका स्थान अक्षुण्ण है ।

मनुष्य की वाणी उसका मित्र और शत्रु दोनों ही है । दुर्योधन के सम्बन्ध में कहे हुए दो शब्द महाभारत के भीषण रण का कारण बने । महात्मा गांधी के मीठे शब्दों ने कितनों को उनके चरणों पर विनयावनत किया । यही हाल पक्षियों का भी है । समय पड़ने पर हम प्रिया-प्रियतम के संवादवाही काग की भले ही खुशामद कर लें, साधारण तौर पर उसकी कर्कश वाणी से तंग आकर हम ढेले मार-मार कर उसे उड़ाते फिरते हैं। पर कोयल की, जो देखने में उतनी ही कुरूप है जितना कि काग, वाणी सुनने को हम उत्कंठित रहते हैं, और ऐसे स्थानों में, जहां कोयल का आवास नहीं है, मसलन शिमला, मसूरी आदि पहाड़ों पर, उसकी बोली सुनने को तरसते हैं । उसकी मधुर बोली ने ही तो मानव-हृदय में उसके लिए यह गहरा स्थान बना रखा है । किसी ने ठीक ही कहा है—

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौआ कासों लेत है, कोयल काको देत,
मीठो बचन सुनाय कै, सब को बस करि लेत।

कोयल और वसंत का गहरा सम्बन्ध है तथा वसन्त काल में कोयल का कूकना कहीं तो आनन्द की वर्षा करता है, कहीं प्रोषित पतिकाओं के हृदय में विष उड़ेलता है। कवि "पण्डित प्रवीन" के शब्दों में--

बल्ली[1] को बितान, मल्ली[2] दल को बिछौना,
मञ्जु महल निकुञ्ज है प्रमोदवन[3] राज को,
भारी दरबार भिरी भौंरन की भीर
बैठे मदन दिवान इतिमाल[4] काम काज को।
'पण्डित प्रबीन' तजि मानिनी गुमान गढ़
'हाजिर हुजूर' सुनि कोकिल अवाज को,
चोपदार चातक बिरद बढ़ि बोलैं
'दर दौलत दराज महराज ऋतुराज को।'

ऋतुराज के दरबार की ज्योतियों में है यह कोयल, अतिशय सुखदायी। पर देखिए, पद्माकर का विचार कुछ और ही है। वे कहते हैं--

ए ब्रजचन्द! चलो किन वा ब्रज
लूकैं वसन्त की ऊकन लागीं,
त्यों 'पद्माकर' पेखौ पलासन
पावक सी मनो फूंकन लागीं।
वै ब्रजवारी बिचारी वधू वन
बावरी लौं हिये हूकन लागीं,
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु
कुहू कुहू क्वैलियां कूकन लागीं।

विचार चाहे पद्माकर के अपने हों अथवा ब्रजवनिता के, पर यहां स्पष्ट है कि उसका ककना विष ही ढालता है, अमृत नहीं। क्यों? इसे वियोग वाण से बिंधे हुए जन ही समझ सकेंगे। फिर भी कोयल, कोयल ही है, पक्षीराज है, और—

तावच्चकोरश्चरणायुधचक्रवाक पारावतादि विहगाः कलमालपन्तु,
यावद्वसन्तरजनीघटिकावसानमासाद्य कोकिल युवा न कुहूकरोति।

—चकोर, मुर्गा, चकवा तथा कबूतर आदि पक्षी तभी तक अपनी-अपनी बोलियां सुनाते हैं जब तक कि वसंत की प्रभात वेला में कोयल अपना कुहू-कुहू शब्द नहीं सुनाने लगती।

कोयल उन पक्षियों में है जिन्हें गाने का अत्यन्त शौक है। वह जब गाती है तो दिल खोल कर गाती है, और गाती ही रहती है। फारस की बुलबुल की तरह वह दिन-रात गाती है। वसंत के आरम्भ में जब आम के वृक्ष बौरों से लद जाते हैं तो वह मंजरी, कोपलें, फल आदि का रसास्वादन करती हुई पंचम स्वर

---

१. लता। २. बेला। ३. नाम विशेष। ४. इंतजाम, प्रबन्ध।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में ऐसी तान छेड़ती है कि एक समां बांध देती है। डाल-डाल पर नाचती है और रह-रह कर गाने में तल्लीन हो जाती है।

वसंत के बाद भी, ग्रीष्म तथा पावस में, उसका कूकना जारी रहता है। किसी कवि का यह कथन "अब तो दादुर बोलिहैं, भये कोकिला मौन" गलत है, क्योंकि वर्षाकाल में भी वह पूरे जोशोखरोश के साथ गाती रहती है और तब तक गाती है जब तक कि शीतकाल का आरम्भ नहीं हो जाता तथा अन्तरिक्ष में पहाड़ी झीलों से आए हुए जल-पक्षी अपने कूजन से आकाश को भरना नहीं शुरू कर देते। गरज़ यह कि साल में चार-महीने से अधिक वह चुप नहीं रहती। कहते हैं कि जाड़ों में यह दक्षिण की ओर, जहां ठंडक नाम-मात्र को पड़ती है, चली जाती है। मुमकिन है इनमें से कुछ चली जाती हों, पर अवश्य ही सभी नहीं जातीं, क्योंकि शिशिर और हेमन्त में भी बहुधा कोयल को बोलते सुना गया है। हां, सर्दियों से इसे नफरत जरूर है और यही वजह है कि पहाड़ों की ओर यह कभी भूल कर भी नहीं जाती। पर्वतीय कोयल (चित्र संख्या : ७) समतल क्षेत्रों में पाई जाने वाली कोयलों से भिन्न, देखने में इनसे सुन्दर अवश्य है, पर उसके गले में न तो वह सोज़ है न वह साज़ जो इन काली कोयलों में है।

केवल उत्तर-पश्चिम सीमान्त को छोड़ कर, भारतवर्ष के सभी राज्यों में यह पाई जाती है और हर जगह इसकी कद्र है। मलय, चीन आदि देशों में भी वह मिलती है। अधिकतर वट, अश्वत्थ आदि वृक्षों के छोटे-छोटे फल इसके आहार हैं, पर भोजन निरामिष ही हो, ऐसा कोई बन्धन नहीं है। यदा-कदा कीड़े-मकोड़े भी उसके भोजन-पात्र में स्थान पा जाते हैं। कोयल उन चिड़ियों में है जिसे बड़ी मुश्किल से हम देख पाते हैं, क्योंकि यह कभी जमीन पर नहीं उतरती तथा वृक्षों पर भी अधिकतर पत्तों की ओट से ही अपनी तान छेड़ा करती है। यदि आपने कभी भूल कर वृक्ष के नीचे जाकर इसे देखने की चेष्टा की तो यह फौरन वहां से उड़ कर अन्यत्र चल देगी। एक वृक्ष से उड़ कर दूसरे पर जाते हुए ही इसे हम देख पाते हैं। पर काली होने के कारण हम इसे कौआ समझ कर अक्सर भ्रम में पड़ जाते हैं। अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने कुकू पक्षी के, जो कोयल वंश की ही एक विख्यात गायिका है, सम्बन्ध में कहा था—

O, Cuckoo ! Shall I call thee Bird,
Or, but a wandering Voice ?

—कुकू ! तुम्हें मैं पक्षी कहूं या कि भ्रमणशील एक ध्वनि मात्र ?

कोयल के सम्बन्ध में भी, जिसे हम हाड़-मांस के बने हुए पक्षी के रूप में कम ही देखते हैं, उसकी ध्वनि-मात्र ही सुन पाते हैं—कभी इस वृक्ष से, कभी उस वृक्ष से—हम कुछ ऐसा ही कह सकते हैं।

कोयल के नर और मादा के रंग-रूप में काफी अन्तर है। नर नीली-हरी चमक लिए हुए पूरा काला और मादा भूरी होती है। मादा के पेट पर गहरा भूरापन होता है, डैनों आदि पर सफेद चित्तियां होती हैं। दुम गहरी भूरी होती है और उस पर श्वेत धारियां होती हैं जो पपीहे से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। नर और मादा दोनों की आखें लाल और पांव गहरे स्लेटी रंग के तथा चोंच हरी होती है। लम्बाई प्रायः १७ इंच होती है। गाने का शौक नर को ही है। आवाज में ज़ोर है। गला फाड़ कर जब यह पक्षी 'कुहू-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुहू' की रट लगाता है तो दिग् दिगन्त गूंज उठता है । मादा कभी-कभी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाती हुई, तेजी से 'किकू-किकू-किकू' शब्द उच्चारण करती है ।

इसके अंडे नीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं, जिन पर कत्थई चित्तियां होती हैं। यह कई अंडे एक साथ देती है और एक ही ऋतु में कई बार भी । विलायत की कोयल तो कहते हैं कि एक ऋतु में २०-२५ अंडे तक दे डालती है पर भारत की कोयल के सम्बन्ध में २०-२५ अंडे देने का दृष्टांत अब तक प्राप्त नहीं हो सका है । फिर भी अंडों की संख्या अधिकांश पक्षियों से अधिक अवश्य होती है । आकार में ये छोटे होते हैं । अंडा देने का समय अप्रैल से अगस्त तक है ।

संस्कृत के एक नीति-श्लोक में कहा है कि मनुष्य को यदि कूटनीति सीखनी हो तो वार-वनिता से सीखे अथवा किसी राज दरबार में—"वारांगणा राजसभा प्रवेश ।" आम तौर पर कूटनीति का मतलब धूर्तता से समझा जाता है और इस अर्थ में कोयल भी, जो पक्षियों में गान-विद्या की दृष्टि से गणिका के समकक्ष है, आचार्य-पद के सर्वथा उपयुक्त है । जिस धूर्तता से वह अपने अंडे स्वयं न सेकर कौए के घोंसले में रख आती है और उनसे अपने अंडे सेवाती तथा बच्चों का पालन-पोषण कराती है उस धूर्तता के कारण वह बड़े-बड़े धूर्त कूटनीतिज्ञों के भी कान काट सकती है । कौए की, जो स्वयं दूसरों को चकमा देने में सिद्धहस्त है, आंखों में धूल झोंकना साधारण काम नहीं है, पर कोयल इस काम को बड़ी निपुणता के साथ करती है । तरीका यों है—

सर्वप्रथम नर कोकिल कौए के घोंसले के पास पहुँचता है और तरह-तरह की भाव-भंगिमाओं से उसे चिढ़ाता है । मादा मुँह में अंडा रख कर अड़ोस-पड़ोस के ही किसी वृक्ष पर छिप कर बैठ जाती है । कौआ या यों कहिए कि कौए—कोयल के अभद्रतापूर्ण व्यवहार से चिढ़कर उस पर टूटते हैं और वह भाग चलती है । कौए उसका पीछा करते हैं । कोयल उड़ने में तेज होती ही है, उड़ती हुई कुछ दूर निकल जाती है, साथ-साथ कौए भी; इधर मैदान खाली पा कर मादा कोयल घोंसले में घुसती है, अंडा रख देती है और कौए के अंडे कहीं दूर गिरा आती है । फिर एक ऐसी आवाज देती है जिससे नर समझ जाता है कि काम सफल हो गया—बस एक ही छलांग में कौओं के दृष्टि-पथ से वह ओझल हो जाता है । कौए यह सोच कर कि दुश्मन सरहद से बाहर हो ही गया, लौटते हैं और पुनः घर-गृहस्थी में लग जाते हैं । कौआ जैसे धूर्त पक्षी को भी मूर्ख बनाकर स्वार्थ-साधन करने वाली कोयल को यथार्थतः महाकवि कालिदास ने विहगेषु पण्डितः की उपाधि प्रदान की है । विक्रमोर्वशीयम् में लिखा है—

अये, इयनातपान्तसंवुक्षितमदा जम्बूविटपमध्यास्ते परभृता ।
विहगेषु पण्डितैषा जातिः ।

यजुर्वेद में इसी का नाम 'अन्यवाय' (दूसरे के घोंसले में अपना अंडा रखने वाला पक्षी) है ।

यथाकाल कोयल-कुमार का जन्म होता है, काग-दम्पति बड़े शौक से उसे अपनी संतान समझकर पालते-पोसते हैं और जब वह उड़ने लायक हो जाता है तो एक दिन उन्हें चकमा दे कर नौ-दो-ग्यारह हो जाता है । यही नहीं, घोंसले में यदि कौए की कोई वास्तविक संतान रही हो तो मौका देखकर उसे जन्म के कुछ ही दिन बाद ठोकर देकर नीचे गिरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूठे हुए चित्र संख्या : ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ५

प्रणय-भिक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी डालता है। प्रश्न उठता है कि कोयल के इस नवजात शिशु को आखिर यह धूर्तता तथा कौओं के प्रति विद्वेष की यह भावना सिखाता कौन है ? निस्सन्देह वंश-गुण और संस्कार से ही उसे यह प्रेरणा मिलती है। दूसरों के द्वारा पाले जाने के कारण ही कोयल संस्कृत भाषा में परभृता कहलाई है। अभिज्ञान शाकुन्तल में जब शकुंतला महाराज दुष्यन्त की स्मृति जगाने की चेष्टा करती है तो वह कहते हैं—

स्त्री गामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः,
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात
मन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति ।

—हे गौतमी ! तपोवन में लालित-पालित हुए हैं, यह कहकर क्या इनकी अनभिज्ञता स्वीकार करनी पड़ेगी ? मनुष्य से भिन्न जीवों की स्त्रियों में भी जब आप से आप पटुता आ जाती है तो फिर बुद्धि से युक्त नारी में यह प्रकट हो, इसमें आश्चर्य ही क्या ? मादा कोयल, अन्तरिक्ष-गमन के पहले अपनी सन्तान की अन्य पक्षी के द्वारा पालन-पोषण की व्यवस्था कर लेती है।

देखने में कौए की अपेक्षा अधिक सुन्दर और तगड़े होने के कारण कभी-कभी कोयल-कुमार अपने झूठे मां-बाप के विशेष लाड़-प्यार के भागी बन जाते हैं। प्रकृति की ऐसी माया है कि कौए इस छल-छन्द को कतई नहीं समझ पाते हैं तथा इन्हें अपनी ही संतान मान बैठते हैं। यही नहीं, इन पर अधिक प्यार भी दिखाने लगते हैं।

इस सम्बन्ध में कभी-कभी एक बड़ी रोचक घटना हो जाती है। कौए के एक ही घोंसले में अज्ञानवश कई कोयलें अपने-अपने अंडे रख आती हैं और इस प्रकार काक-दम्पति को कोयल के चार-चार पांच-पांच बच्चों तक को पालना पड़ जाता है। पर वे इस काम को बड़ी खुशी के साथ करते हैं। यह संसार धोखे की टट्टी है, इसमें सन्देह नहीं।

लन्दन के "फ़ील्ड" नामक एक पत्र में परभृत कुकू की बेनियाज़ी का एक मज़ेदार वर्णन पिछले दिनों पढ़ने को मिला, जो इस प्रकार है—

हार्ली नामक एक व्यक्ति की पुष्प-वाटिका में २४ जुलाई, १९५६ को परभृत के दो शिशु नज़र आए जिनके पूरी तरह पंख हो आए थे। उसके साथ ही रॉबिन की वह मादा भी थी, जिसने उन्हें पाला-पोसा था। वह श्री हार्ली के घर के आसपास से खाद्य वस्तुएं ला-ला कर दोनों बच्चों को खिलाती और वे मुंह खोल-खोल कर बड़े चाव से खाते थे। सारे दिन यह सिलसिला चलता रहा। बीच-बीच में परभृत शिशु क्रोधापन्न हो कर दंहगल पर चंचु-प्रहार भी कर देता था, पर वह इसका कोई ख्याल न कर अपने कर्तव्य में जुटी रही।

दूसरे दिन दो बच्चों में से एक गायब था, तीसरे दिन दूसरा। पंख पाकर दोनों नौ-दो-ग्यारह हो गए थे। दंहगल कुछ काल एकाकी, विरहाकुल अवस्था में, उदास हो कर बैठी रही, फिर वह भी अन्यत्र चली गई। जिन्हें पाल-पोस कर उसने बड़ा किया उन्होंने चलते समय उससे विदा भी न मांगी ! 'परभृत'—चाहे मानव कुल के हों या पक्षीकुल के—कभी किसी के नहीं होते।

खैर, तो इधर काक-दम्पति उनके अंडे सेने तथा बच्चों के पालन-पोषण में व्यस्त रहते हैं, उधर नर और मादा कोयल मंजरी-मदिरा का पान एवं नाचने-गाने में अपना समय बिताती है और कहती है—

-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिन भर गाना, दिन भर पीना—
हमें यही है रुचिकर जीना ;
चार दिनों का ही तो जीवन,
जी भर पीलें, जी भर गा लें,
प्याले पर प्याले हम ढालें,
वास स्थान हमारा मादक—
आम्र-मंजरी का मदिरालय,
परवश नहीं, किसी का क्या भय ?

कहीं इंगलैण्ड का प्रसिद्ध कवि किपलिंग उसे देख कर अपने वतन के सम्बन्ध म पूछता है—

Oh Koel, little Koel, singing on the siris bough,
* * * *
Can you tell me aught of England or of spring in England now?
—Kipling

—सिरीष-वृक्ष की डालों पर से गाती हुई कोयल ! ओ नन्हीं कोयल ! नन्हीं कोयल ! क्या तुम मुझे इंगलेंड के अथवा इंगलेंड में वसंत के विषय में कुछ बता सकती हो ?

और कहीं प्रमत्त पिक के कूक-वाण से विंधा हुआ कवि भोर की कोयल से पूछता है—

रात क्या आयी न तुझ को नींद,
कोकिले, किसके विरह में तड़पती लवलीन ?
तड़पती जल-गर्भ में ज्यों विरह-व्याकुल मीन ।
तू रही क्रन्दित पपीहा-सी
न तुझ को चैन,
फट न क्यों पड़ती धरा यह
श्रवण कर दुख-बैन ?
रात भर तू ने बजाई बैठ उर की बीन,
कोकिले, किसके विरह में तड़पती लवलीन ?
पौ फटी, आकाश में था
अरुणिमा-विस्तार,
हँस उठी नीलोत्पला तज
सेज-स्वप्नागार,
जीव माया में फँसा ज्यों
सजग हो, निर्बन्ध,
नलिनि-बन्धन से निकल कर
अलि हुआ स्वच्छन्द ।
प्रणय के किस पाश में, पर, तू रही गति-हीन,
कोकिले, किस विरह में तड़पती लवलीन ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ले चले सन्देश प्रियतम
को प्रिया का, काग,
औ धरा-मुख पर लगाने
प्रातवात पराग,
कर रहे छाती भिगो कर
ओस का मृदु पान,—
नीलकंठ, कपोत, पंडुक,
और भ्रमर सुजान,
मंजरी-मधु से विरह-व्रण हो न पाया क्षीण,
कोकिले, किसके विरह में तड़पती लवलीन ?

आखिर कोयल की कूक से वह घबड़ाता क्यों है ? उत्तर देखिए—

आधी रात पुकारे चातक,
और भोर में कोयल,
कैसे कहो, रहे थिर मेरा
यह छोटा अन्तर-तल ?

पपीहा

न गोई कज के मी गरदद
चकाक इलहाने मूसीक़ार,
न गोई कज चे मी मानद
तदर्व अनबाए असफ़ातें ? —सनाई

—चातक को ऐसे मधुर स्वर में सुन्दर राग का अलापना कौन सिखाता है, और चकोर को इतने सुन्दर वस्त्र पहनने को कौन देता है ?

भारतवर्ष के विभिन्न लोक-गीतों में जो स्थान पपीहा ने पाया है वह और किसी पक्षी को शायद ही नसीब हुआ हो—

पपिहरा पापी रे,
* * *
पिउ पिउ रटत पपिहरा,
* * *
जा रे पपीहा पिऊ के देश।
* * *
दूर देस ना दईं मेरे बाबल,
उत्थे पाणी दा तसीह, बोले जंगल दा पपीहा—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि अगणित ऐसे गीत हैं जिनमें पपीहे की चर्चा है, उसे कोसा भी गया है और उससे तरह-तरह की प्रार्थनाएं भी की गई हैं। कारण स्पष्ट है। पपीहे की दो आदतें इसके लिए उत्तरदायी हैं। प्रथम, उसका बारम्बार 'पिउ, पिउ' रटना; द्वितीय, समय-असमय का कुछ भी ख्याल न कर प्रियतम की याद दिलाना।

बाकी सभी चिड़ियां गाती हैं, पर रट नहीं लगातीं। लेकिन पपीहे का रटना एक कहावत-सा बन गया है—

चातक[1] रटहिं तृषा अति ओही।

* * *

कहुं रटत पपिहरा बन की ओर।

उपर्युक्त तथा ऐसी ही असंख्य पंक्तियों में पपीहे के रटने का ही उल्लेख है, गाने का नहीं।

एक तो बार-बार प्रियतम का स्मरण कराना और फिर समय-असमय पर ध्यान न देना, आधी रात में जबकि सारा संसार सोया रहता है, केवल चांद की किरण आजादी से जहां-तहां नाचती फिरती है, अथवा पौ फटने के समय जबकि नायिका सेज पर गाढ़ी नींद में सोयी रहती है, प्रातवात थपकियां दे-दे कर उसे सुलाता रहता है, पपीहा समय-असमय का ख्याल न कर गला ऊँचा करके उसके कानों में प्रियतम का नाम उड़ेलने लगता है—परदेश गये नायक की स्मृति जागृत कर देता है, सुप्त विरह वेदना

१. पपीहे की एक जाति

को उभार देता है। स्वाभाविक है कि ऐसे पपीहे को पापी विशेषण से विभूषित किया जाए, उसे कोसा जाए। किसी वियोगिनी की यह दर्प भरी उक्ति क्षम्य ही है—

ऊधो ! यह ऊधम जताय दीजो मोहन सों,
ब्रज में सुवासो भयो अगिन अवासो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
काहू बीथित वियोगिनि के प्रानन को प्यासो है।

पर कुछ ऐसी नायिकाएं भी होती हैं जो पपीहे के उक्त आचरण से नाराज होने की बजाय खुश होती हैं तथा उससे अनुरोध करती हैं कि वह प्रियतम के पास, जिसकी याद वे हृदय में प्रतिक्षण बनाए रखना चाहती हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति में पपीहे को सहायक पाती हैं, उनका प्रणय-सन्देश पहुंचाए। कृष्ण-विरह में व्याकुल मीरा ऐसी ही नायिकाओं में थी जिसने बार-बार पपीहे से आरज़ू करते हुए कहा था—

जा रे पपीहा पिउ के देश,
कहियो पिउ से मेरा सन्देश।

यही नहीं, ब्रज की एक विरहिणी नायिका ने तो उसे प्रमाण-पत्र तक दे डाला—

सखी री चातक मोहि जियावत।
जैसेहि रैनि रटति हौं 'पिय-पिय' तैसेहि पुनि-पुनि गावत।
अतिहि सुकंठ दाहु प्रीतम को तारू जीभ न लावत,
आपु न पीवत सुधारस सजनी बिरहिनि बोल पिआवत।
जो ए पंछि सहाय न होते प्राण बहुत दुख पावत,
जीवन सफल सूर ताही को काज पराए आवत।

ठीक ही कहा है, जीना उसी का सफल है जो औरों के काम आए—

जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिए।

पर मज़ा तो देखिए—जिस पपीहे को विरहिणी नायिकाएं दूत बना कर भेजना चाहती हैं वह स्वयं ही किसी के विरह में जल रहा है ! कहते हैं, स्वाति-बूंद के बिना पपीहे की प्यास नहीं बुझती, प्रकृतितः स्वाति-घन की प्रत्याशा में वह आकाश की ओर आंखें लगाए रहता है तथा बादल को देखते ही उससे जलदान की याचना करने लगता है; यह जानने का यत्न नहीं करता कि आखिर यह बादल स्वाति-घन है या कोई और। उसकी इसी मूढ़ता पर किसी सहृदय कवि ने उसे मैत्रीपूर्ण राय दी है कि—

रे रे चातक, सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्
अंभोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां, गर्जन्ति केचिद्वृथा,
यं-यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।

—हे मित्र चातक, मेरी यह बात तू सावधान होकर सुन कि इस व्योम-मंडल में कई प्रकार के बादल हैं, उनमें से कुछ तो पानी की बूंदों से पृथ्वी को तर कर देते हैं, कुछ वृथा ही गरजते हैं, बरसते नहीं। अतएव तू जिस-तिस को देख कर उसके आगे दीन वचन न कह।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर पपीहे ने कवि की इस राय को कब सुना। वह आज भी बादलों को उमड़ते देख कर "पी-पी" अथवा "पी-कहां, पी-कहां" की रट लगाता ही रहता है। जोश मलसियानी के शब्दों में—

जब्तेनवा के सदमें कब तक सहे पपीहा,
मैकश चहक रहे हैं क्यों चुप रहे पपीहा,
अब क्यों न दौरे म की रौ में बहे पपीहा,
अब क्यों न शेख जी से पी-पी कहे पपीहा,
बरसा रही हैं सागर बरसात की घटाएं।

देखने में यदि हम पपीहे को शिकरे (शिकार पकड़ने वाला एक पक्षी) का प्रतिरूप कहें तो असंगत न होगा। आंखें पीली, शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा डैना भूरापन लिए हुए बादामी या यों कहिए कि स्लेटी भूरे होते हैं। दुम के पास से कुछ दूर तक सफ़ेद, बहुत छोटी धारियां होती हैं। दुम लम्बी होती है। इसके बीचोंबीच कुछ काली और सफेद आड़ी पट्टियां और छोर पर एक उजली धारी होती है। नीचे का हिस्सा--चोंच से छाती तक—सफेदी लिए हुए हल्का स्लेटी होता है और पेट के पास भूरी धारियां होती हैं। चोंच आंखों की तरह ही पीली, पर हरापन लिए हुए होती है और इसके आगे का भाग काला रहता है। पैर भी पीले ही होते हैं। लम्बाई प्रायः १५ से १६ इंच तक होती है। नर और मादा के रूप-रंग में कोई अन्तर नहीं होता।

कहते हैं कि इसके गले में एक छेद होता है और जब यह पानी पीने लगता है तो बहुत-सा पानी इसके गले से निकल जाता है। गाते समय अपने गले को फुला-फुला कर तान छेड़ता है। "पी-पी कहां" की रट से सारा वातावरण गूंज जाता है।

पपीहे और शिकरे के रूप-रंग में तो समानता होती ही है, इनके उड़ने के ढंग में भी असाधारण समानता है। यही वजह है कि हम पपीहे को तब तक नहीं पहचान पाते जब तक कि वह बोल न उठे। यह भी एक विधि की विडम्बना है कि एक ही प्रकार के दो पक्षियों में एक तो इतना सहृदय, मिष्टभाषी और दूसरा इतना निष्ठुर, घोर हिंसक!

पपीहे का आवास मुख्यतः बंगाल से लेकर राजस्थान तक है। पंजाब और सिन्ध में ये नहीं के बराबर पाए जाते हैं। दो हज़ार फुट से ऊपर के पहाड़ी इलाकों में तो बिल्कुल ही नहीं पाये जाते। दरअसल यह गर्मी का पक्षी है। कहते हैं, जाड़ों में ये दक्षिण की ओर, जहां सर्दी कम पड़ती है, चले जाते हैं। कुछ जाते होंगे, पर सभी नहीं जाते क्योंकि दिसम्बर-जनवरी में भी हम उत्तर बिहार के इलाके में इसे बोलते सुनते हैं। पर निस्सन्देह इसके संगीत का पूर्ण विकास वसंत और ग्रीष्म तथा पावस ऋतुओं में ही होता है। निशा काल में भी जब शरच्चन्द्र पीयूष की वर्षा करता है, यह बोलने से नहीं चूकता। यह पेड़ों पर ही रहता है और कीड़े-मकोड़े तथा छोटे-छोटे फलों से अपनी उदर-पूर्ति करता है।

पपीहे के सम्बन्ध में भी "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी", कहा जा सकता है। कोई तो इसकी वाणी में "पी-कहां" का आभास पाते हैं, कोई "पिया-पिया" का, कोई "पिऊ-पिऊ" का तो कोई "पी-पी हो" का। महाराष्ट्र वालों का कहना है कि यह "पाऊस आला" (पावस आता है) कह-कह कर वर्षारम्भ की सूचना देता है।

आधुनिक महिलाएं प्रायः घर संभालने से घबराती हैं। गाना-बजाना, नृत्य, पार्टियां, इन्हें छोड़ कर गृहस्थी के रसहीन कामों में वे नहीं पड़ना चाहतीं। यही दशा हमारी गाने वाली चिड़ियों की भी है। कोयल का हाल तो आपने सुना ही है कि किस छल-छन्द के साथ वह अपने अंडे कौए के घोंसले में रख आती है तथा काक-दम्पति से अपनी सन्तान का लालन-पालन कराती है। अपना बोझ उनके मत्थे डाल कर अपना सारा वक्त नृत्य एवं संगीत-साधना में बिताती है। पपीहे का भी बहुत कुछ यही हाल है। मादा अपने अंडे स्वयं न सेकर चरखी (सतभइये) के घोंसले में रख आती है—अपने गले का भार उतार आती है और फिर दिन-रात "पी-कहां" का धुन लगाती है, मस्ती के साथ गाती रहती है। पर उसे इस कार्य-साधन में कपट से काम लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। चरखी स्वभाव से बड़ी सीधी-सादी चिड़िया है और हर समय घोंसले में रहती भी नहीं। अतः पपीहे की मादा बड़ी आसानी से अपने अंडे उसके घोंसले में रख आती है। चरखी बड़े शौक से उन्हें सेती है तथा बच्चों का लालन-पालन धात्री के समान करती है।

कोयल और पपीहा—इन दोनों के ही अंडे नीले रंग के होते हैं। दोनों का अंडे देने का समय अप्रैल से जून तक समान है।

पपीहे की एक जाति ऐसी है जो साधारण पपीहे से भिन्न है। इसे "चातक" कहते हैं। हालांकि संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के साहित्यों में "चातक" शब्द का प्रयोग समस्त पपीहा जाति के लिए किया गया है, पर पक्षी-शास्त्र के पण्डितों ने "चातक" से काली जाति के पपीहे का अर्थ माना है। कद में यह उक्त पपीहे के बराबर ही होता है पर इसके सर पर बुलबुल की तरह एक तुर्रा होता है। इसका रंग बिल्कुल काला होता है, जिसमें काफ़ी चमक होती है। इसकी आदत भूरे पपीहे से कुछ भिन्न होती है। भूरा पपीहा वसन्त काल से ही बोलने लगता है, चातक वर्षारम्भ से। पपीहे की तरह वह पत्तों की ओट से नहीं गाता बल्कि अन्तरिक्ष में उड़ता हुआ काफी दूर चला जाता है, मानो बादलों के आलिंगनार्थ, और फिर वहां से एक प्रकार की बोली बोलता है जिसके सम्बन्ध में बंगला-भाषियों का कहना है कि वह बादल से "फटिक जल" (स्फटिक जल) कह कर जल की भिक्षा मांगता है। पता नहीं, "चातक रटहिं तृषा अति ओही" से गोस्वामी तुलसीदास का आशय भूरे पपीहे से है कि इस चातक से। सम्भव है दोनों से ही हो, क्योंकि वर्षारम्भ पर दोनों ही घन से जल की याचना करने लगते हैं।

अंग्रेजी में पपीहे को "ज्वर-ग्रस्त-मस्तिष्क पक्षी" कहते हैं, क्योंकि इसकी बोली अंग्रेजों को पसंद नहीं। रात में जब यह गाना आरम्भ करता है और धीरे-धीरे ध्वनि को ऊंचा कर अन्तरा पर ला देता है, एक के बाद दूसरा फिर तीसरा इस तरह अनेक भिन्न-भिन्न वृक्षों से बोलना शुरू कर देते हैं, तो उनका कहना है कि उन्हें बड़ा कष्ट होता है, उनकी नींद हराम हो जाती है। पर हम भारतवासी तो पपीहे का गाना सुनने को तरसते रहते हैं।

कुछ पक्षी-विशेषज्ञों के अनुसार, पपीहे की रटन उसकी प्रणय-पुकार है जो प्रजनन-काल की समाप्ति के बाद भी जारी रहती है। इसका कारण कुछ विशेष ग्रंथियों की क्रिया है। जब ये ग्रंथियां कुछ समय के लिए अपनी क्रिया बन्द कर देती हैं तो यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी मूक हो जाता है।

पपीहे की कथा समाप्त हुई। आषाढ़ का आरम्भ है। आकाश में मेघ घिर आए हैं—वे मेघ जिन्हें आज से न जाने कितने दिन पूर्व रामगिरि-पर्वत पर कान्ता के विरह में दग्ध यक्ष ने देखा था—

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।

सामने वृक्ष पर पपीहा "पी-कहां" की रट लगा रहा है, कभी धीमे, कभी उच्च स्वर में, मानों आगन्तुक मेघ से अपने हृदय की बातें खोल-खोल कर कह रहा है। क्या यह वही "चातक" है, जिसके सम्बन्ध में भर्तृहरि की यह उक्ति है—

एक एव खगो मानी वने वसति चातकः
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरंदरम् ॥

और गोसाईं तुलसीदास का यह कथन—

ऊंची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर,
कै जांचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर।

तो क्या सचमुच ही पपीहा ताल-तलैयों का जल नहीं पीता? "चातकव्रत," जिस की चर्चा विक्रमोर्वशीयम् नाटक में निम्नलिखित शब्दों में महाकवि ने की है, क्या काल्पनिक है?

अदो दाव तुए दिव्वरसाहिलासिणा चादअव्वदं गहिदम्।

पपीहे का यह प्रण सच हो या काल्पनिक, पर इतना अवश्य है कि स्वाति-नक्षत्र अर्थात् शरद् काल के बीतते-बीतते उसके गले में वह सोज़ नहीं रहता जो वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद् ऋतुओं में रहता है—बल्कि उसका गाना बन्द-सा हो जाता है। संभव है शीतकाल के आविर्भाव के कारण ऐसा होता हो या स्वाति के उस घन के द्वारा जल प्राप्त कर, जिसकी चर्चा युग-युग से इस देश के कवि करते आ रहे हैं।

कहते हैं, पपीहे की रट, विरही जनों के, विशेषकर विरह-विकल वनिताओं के लिए बड़ी कष्टदायी होती है, विरह-वाण से उनकी छाती छेदती है। प्रियतम और प्रियतमा की याद दिला-दिला कर उनके हृदय को आलोड़ित कर डालती है। पर यह तो हुई सांसारिक जनों की बात। अब देखिए परमात्मा से जिन्होंने लौ लगा रक्खी है उनके हृदय में भी "पी-कहां" की यह चिरपरिचित ध्वनि कौन-से भाव पैदा करती है।

एक सूफी शायर "बेदिल" फ़र्माते हैं—

तेरा हुस्न इस जहां में जो न होता परतौ अफगन,
न ये फूल दिल लुभाते, न ये सब्ज़ाज़ार होता।
न तो रट लगाती कोयल, न पपीहा शोर करता,
न वह मारी-मारी फिरती, न यह बेकरार होता!

संभव है, पपीहे की यह बेकरारी स्वाति-घन के लिए नहीं, बल्कि उन घनश्याम के लिए है जिनके सम्बन्ध में स्वयं वृषभानुनन्दिनी ने कहा था—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ६
भुजंगा

चित्र संख्या : ७
एक प्रकार की
पहाड़ी कोयल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

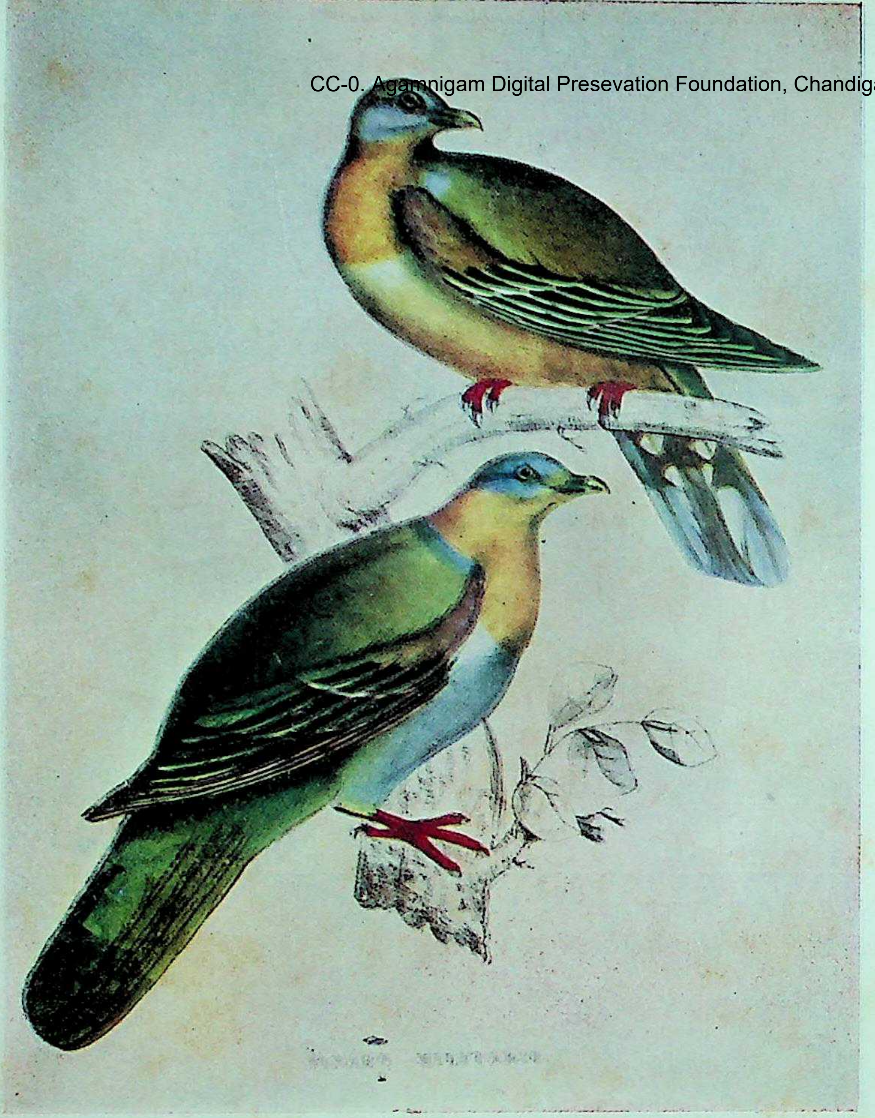

चित्र संख्या : ८
हारिल

चित्र संख्या : ९
हरे फाख्ते

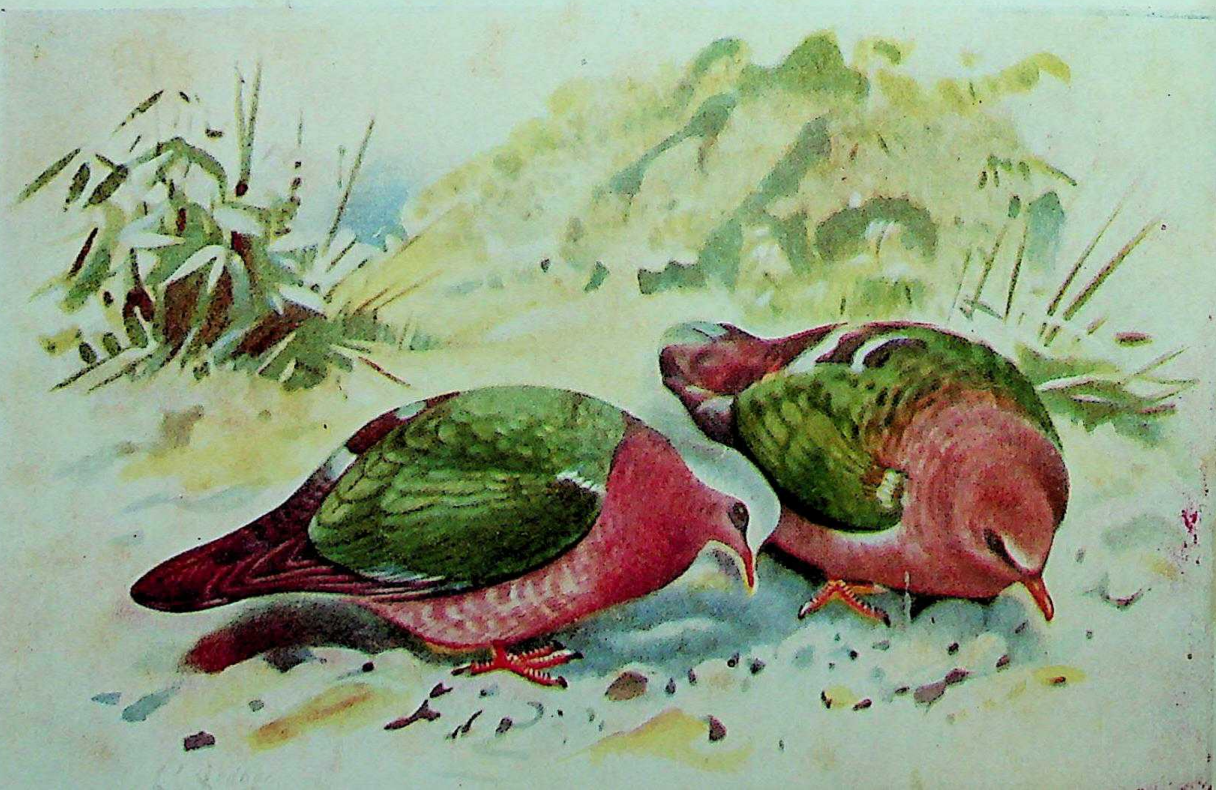

State Museum, LUCKNOW
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न मूर्खधीरस्मि न वा दुराग्रहा,
शरीरभोगेषु न चातिलालसा,
किन्तु व्रजाधीशसुतस्य ते गुणा,
बलादपस्मारदशां नयन्ति माम्।

—हे सखि, न मैं मूर्खा हूं, न मुझ में दुराग्रह है, न मुझे शरीर-सुख की ही लालसा है। किन्तु श्यामसुन्दर में ही कुछ ऐसे गुण हैं जो बरबस मुझे अपस्मार दशा में ला देते हैं।

तात्पर्य यह कि पपीहे की इस शाश्वत बेचैनी का कारण मानव की समझ में आज तक नहीं आ सका है।

श्यामा

आज इस परिवर्तनशील देश में ऐसे बहुतेरे पुराने रस्मो-रिवाज हैं जो समयानुकूल नहीं हैं और इसलिए धीरे-धीरे अन्तर्हित हो गए हैं या होते जा रहे हैं। महफिलों का रिवाज भी इन्हीं में से एक है। खुशियों के मौके पर, विवाह, यज्ञोपवीत, दशहरा आदि शुभ अवसर पर, पहले महफिलें हुआ करती थीं। रात में शामियाने के नीचे या किसी बड़े हाल में फर्श बिछती, कारचोबी के काम के गद्दी-मसनद लगाए जाते जिनके ऊपर जरी के काम का चंदोवा तनता, सोने-चांदी के इत्रदान, पानदान वगैरह सजाए जाते। चंदोवा के नीचे, शादियों में नौशा तथा अन्य मौकों पर सबसे विशिष्ट व्यक्ति, बैठता था; उसकी दोनों ओर सम्माननीय अतिथि और उनके पीछे दरबारी बैठते थे। बाकी सब ओर विभिन्न आगन्तुक, अड़ोस-पड़ोस के लोग बैठते। शामियाने के बीचो-बीच गानेवाली तवायफें या नर्तकियां तथा अन्य गायक बैठते थे। ऊपर झाड़-फानूस टँगे होते थे, नीचे शमा जलती थी।

इनके प्रकाश से सारी महफिल रौशन होती थी। इन्हीं रोशनियों के सम्मुख, गायक-गायिकाओं के निकट बहुधा कुछ पिंजड़े रखे जाते थे जो दिन में काले कपड़ों से ढके होते थे और रात में सफ़ेद कपड़ों से। यह इसलिए होता था जिससे अन्दर बैठे हुए पक्षी दिन में रात का भ्रम मानकर चुप रहें और रात में चारो ओर के उजेले को दिन मान कर खुल कर तान छेड़ें। ये पिंजड़े एक खास पक्षी के होते थे। भीतर एक छोटी-सी चिड़िया बैठी हुई गायक की तान के साथ-साथ जोशो-खरोश के साथ, गला ऊंचा कर गाती थी, सीटियां भरती थी, और अपनी मधुर वाणी से सारी महफिल को मन्त्रमुग्ध-सा कर डालती थी। यही नहीं, गायक-गायिकाओं के साथ बहुधा उसकी एक होड़-सी मच जाती थी। यही है "शीरीं....जुबान" श्यामा, जिसका परिचय इस अध्याय में दिया जा रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

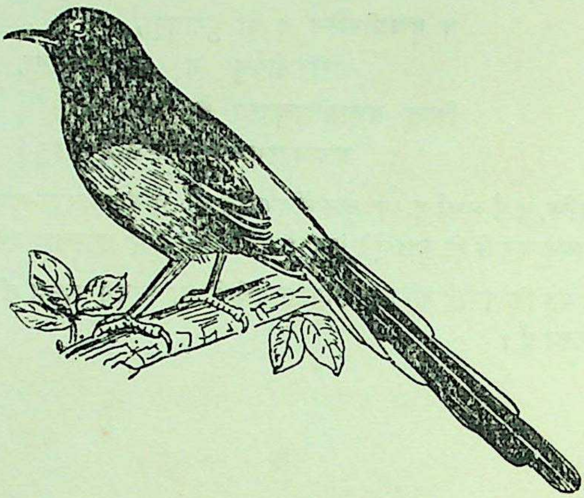

गाने वाले पक्षियों में श्यामा की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध और सर्वमान्य है। कोयल और पपीहा यदि पक्षी समाज के 'एमेचर' या शौकीन गायिका और गायक हैं तो यह निपुण, गायिका पक्षी है, जिसका गला मंजा हुआ है, जिसकी आवाज में ताकत है और जिसका संगीत-ज्ञान ऊंचे दर्जे का है, जिसकी ध्वनि, स्वर और लय मानो तराश-खराश के बाद निष्क-लंक, त्रुटिहीन, बनायी गयी हो। गरज़ यह कि उसकी गान-क्षमता की तुलना संसार के बड़े बड़े गवैयों से की जा सकती है। सारंगी की गहरी गमक और तबलों की ठमक मानो इसके हृदय में एक लहर पैदा कर देती है, और गाने वालों के गले के अलाप पर तो इसका चुप रहना असम्भव-सा हो उठता है। यह गाती है और ऐसा गाती है कि एक समां बांध देती है, गाती ही जाती है, और स्वर को क्रम-क्रम से अन्तरा पर ला देती है। एक बार की बात है, काशी की एक प्रसिद्ध गायिका गा रही थी—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहर वेषम्,
न कुरु नितम्बिनि ! गमन बिलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्।

पिंजड़े में बैठी हुई श्यामा इसे सुन रही थी। लोग पद-लालित्य तथा गायिका के स्वर माधुर्य पर लुब्ध थे। वह गाती गई—

धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली,
गोपीपीनपयोधर मर्दन चंचल कर युगशाली।

श्यामा का अब चुप रहना असंभव-सा हो उठा, उसने भी तान छेड़ी। गायिका ने गाया—

नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदुवेणुम्,
बहु मनुतेऽतनु ते तनुसंगतपवनचलितमपि रेणुम्।

इधर पिंजरे के इस पक्षी ने भी तान लगायी और उधर गायिका ने स्वर ऊंचा किया—

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शंकितभवदुपयानम्,
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पंथानम्।

श्यामा के लिए ध्वनि-दंगल में हार कर बैठ जाना नामुमकिन था। स्वर को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तरा पर लाकर उसने इस तरह गाना, सीटी देना शुरू किया कि गायिका की आवाज, सारंगी का स्वर, तवले की ठमक, सभी मात खा गए। गाने वाली संगीत शास्त्रविशारदा थी—फिर भी इस छोटे-से पक्षी के साथ वह होड़ में अधिक काल तक न ठहर सकी, अन्त में यह गाती हुई कि—

मुखरमधीरं त्यज मंजीरं, रिपुमिव केलिसुलोलम्,
चल सखि कुंजं सतिमिरपुंजम् शीलय नीलनिचोलम्।

उसने गाना बन्द कर दिया। लोगों ने हर्षध्वनि की—संगीत के इस दंगल में श्यामा की विजय रही।

अब देखिए, एक अंग्रेज पक्षी-प्रेमी श्री लोथर, श्यामा के इस मधुर संगीत के सम्बन्ध में क्या कहते हैं—

"एक दिन सुबह इस निपुण गायिका का सुमधुर गान सुनकर मैं मुग्ध हो उठा। मैंने उसका गान पहले कभी नहीं सुना था; और यद्यपि मैंने निश्चित रूप से महसूस किया कि यह श्यामा ही गा रही है, मेरी उत्सुकता तब तक शान्त नहीं हुई जब तक कि कुछ दिन बाद मैंने इस निपुण गायिका को गाते हुए प्रत्यक्ष रूप में न देखा।"

श्री लोथर श्यामा के घोंसले की तलाश में दो वर्षों तक घूमते रहे। अन्त में उनका परिश्रम सफल हुआ, श्यामा के घोंसले का उन्हें दर्शन ही नहीं मिला बल्कि उसकी एक सुन्दर-सी तस्वीर उतारने में भी वह सफल रहे। विलायतवालों की कद्रदानी का यह भी एक नमूना है।

अब कुछ इस पक्षी के रूप-रंग के सम्बन्ध में भी सुनिए। यह काले रंग की एक छोटी-सी चिड़िया है। नर की पूंछ के कुछ पर सफेद होते हैं। मादा न तो नर जैसी घनी काली ही होती है, न इसकी पूंछ ही लम्बी होती है। गाता नर है। यह पहाड़ के उन हिस्सों में पाई जाती है, जहां ठंडक नहीं होती। विधि की विडम्बना तो देखिए, स्वभाव की वह इतनी झगड़ालू होती है कि पिंजरे में मियां-बीबी तक साथ नहीं रह सकते। खाती कीड़े है, पर स्वर में इसके इतनी मिठास होती है कि श्रोता को पल मात्र में ही मंत्रमुग्ध कर लेती है!

जब यह पिंजरे में रहती है, इसे घी में भुना हुआ सत्तू खिलाया जाता है जिसमें प्याज, लहसुन, अंडे तथा मांस के अंश पीस कर घी के साथ मिला दिए जाते हैं। कहते हैं, इससे इसकी आवाज बुलंद होती है, इसके गले में साज और सोज आता है। सत्तू के अलावा छोटे-छोटे कीट-पतंग, विशेषतः टिड्डे भी इसे खिलाये जाते हैं। श्यामा पालने वालों को या उनके नौकर को आप अक्सर देखेंगे कि वे देर तक सुबह-शाम घास के मैदानों पर घूम रहे हैं और किसी चीज की तलाश कर रहे हैं; बस आप फौरन समझ लें कि ये श्यामा के लिए कीड़े ढूंढ़ रहे हैं।

कहते हैं, वन के स्वतन्त्र वातावरण में पक्षियों का गला ज्यादा खुलता है, गीत में माधुर्य का विकास होता है। पर श्यामा का हाल इस के ठीक विपरीत है। पिंजरे में, खास कर जब पिंजरा किसी काले आवरण से ढका होता है, वह ज्यादा जोशो-खरोश के साथ गाती है, उसके संगीत का अधिकाधिक विकास होता है, स्वर में माधुर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गले में ताकत आती है। इसके लिए परतंत्रता ही मानों वरदान है। इसे पिंजरे में रहते हुए अपने भोजन की चिन्ता नहीं करनी होती, और शायद इसीलिए यह अपना सारा समय गाने में व्यतीत कर पाती है।

अन्य पक्षियों के गाने भी यह बड़ी निपुणता के साथ सीख लेती है और उन्हें इस खूबी के साथ गाती है कि सुनने वाला शायद ही समझ पाये कि गाने वाली कोई भिन्न चिड़िया है। यह अप्रैल से जून तक अंडे देती है। किसी वृक्ष की सूराख में घास-फूस रख कर वहीं प्रजनन-क्रिया सम्पन्न करती है। मकान बनाने के झमेले में वह नहीं पड़ती। आखिर गाने से इसे फुरसत कहां कि यह गृह-निर्माण की झंझट में पड़े ?

●

दोयल या दंहगल

दहियल खंजन पक्षि-विशेष,
दाहिन दर्शन पुणयहि लेख।

—डाक

श्यामा की तरह ही दोयल भी एक छोटा-सा संगीत-प्रवीण पक्षी है, जिसके गले में माधुर्य है, और साथ-साथ तन-सौन्दर्य भी। पर यह साल भर न गाकर एक निश्चित अवधि में ही संगीत-साधना में संलग्न होता है—अर्थात् अप्रैल से जुलाई तक। कोकिल की तरह—'अब तो दादुर बोलिहैं, भये कोकिला मौन'—यह भी जब वर्षा-काल आता है और मेंढक अपना राग अलापना शुरू कर देते हैं तो अपना गाना बंद कर देता है। वसन्तकाल में जब फूल खिल उठते हैं, अमराइयों में बौर छा जाते हैं, टहनियों पर नये-नये पल्लव आ जाते हैं, यह तन्मय होकर गाता है। घने जंगल या झाड़ी इसे पसन्द नहीं ; फूलों से लदे हुए बाग ही इसे ज्यादा पसन्द हैं, जहां कोयल की भांति दोयल भी पत्तों की ओट से संगीत वर्षा करके श्रोताओं के हृदय में प्रेमोन्माद का संचार करता है। तभी तो उन्नीसवीं सदी के अन्त में बंगाल के एक कवि ने अपनी प्रेमिका से कहा था—

के तुमि
तुमि कि आमार सेइ
हृदयमोहिनी ?

* * *

एस जाइ सेइ देशे, फूल फुटे, चांद हासे,
दोयल, कोयल गाय
प्राणेर रागिनी !

निस्सन्देह दोयल के गाने में 'प्राणेर रागिनी' फूट पड़ती है। कद में ८ इंच की यह एक छोटी-सी चिड़िया है। नर और मादा के रंग में तनिक भेद है। नर के सर, गर्दन, सीना और पीठ पर चमकीला कालापन होता है, नीचे के हिस्से में सफेदी होती है, दुम उठी हुई होती है, मध्य के दो पर काले, बाकी सफेद होते हैं, डैने काले होते हैं जिनके बीच में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

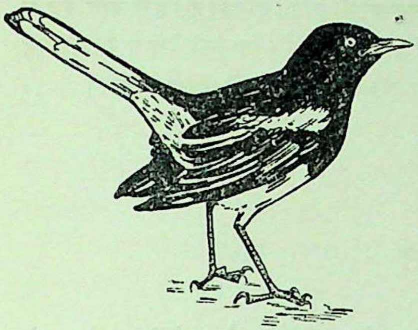

सफेदी होती है। मादा की रूपरेखा प्रायः ऐसी ही होती है; अन्तर इतना होता है कि जहां नर के बदन में कालापन होता है वहां मादा के भूरापन। इनकी चोंच काले रंग की होती है।

नर और मादा का चिर-सम्बन्ध है। मादा अधिकतर अप्रैल और मई में अंडे देती है। पेड़ या मकान के सूराख में या नदी के कगारों में घोंसला बनाती है। इसके बच्चे अत्यन्त शोर मचाने वाले (संख्या में चार) होते हैं। प्रारंभ में इनका स्वर कर्कश रहता है, पर पीछे चल कर अपने पिता की भांति यह भी मधुरभाषी हो जाते हैं।

कीड़े-मकोड़े इसके आहार हैं। वैसे तो दोयल एक एकान्त-प्रिय पक्षी है। जहां कहीं भी देखिये, दो एक से अधिक एक स्थान पर नज़र न आयेंगे। पर अंदमान द्वीप-समूह में इनकी यह एकान्तप्रियता न जाने कहां चली जाती है और ये सूर्योदय होते ही दल के दल गाने लगते हैं और खूब दिल खोलकर गाते हैं एवं सुनने वालों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

●

दामा

कद में दोयल से छोटी, पर रूपरेखा में उससे मिलती-जुलती दामा भी एक गाने वाली चिड़िया है जो साल भर अपने घोंसले में निवास करती है और कबूतर की तरह साल में कई बार अंडे भी देती है। बाग-बगीचे तथा मानव-आवास का अड़ोस-पड़ोस इसे जंगल की अपेक्षा अधिक रुचिकर है। इसकी सबसे बड़ी पहचान इसकी दुम है, जिसे यह बारंबार ऊपर उठाती रहती है। नर का रंग चमकीला काला और मादा का गाढ़ा भूरा होता है; नर के कन्धों पर सफेद चित्ते रहते हैं। दोनों की दुम का निचला हिस्सा कत्थई होता है। देहाती भाषा में इसे ललगंडी और कलचुरी भी कहते हैं।

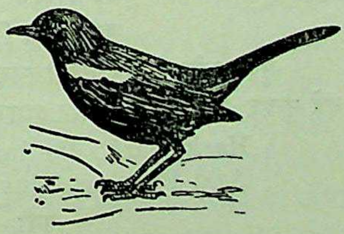

अप्रैल से जून तक इसके अंडे देने का मुख्य समय है। यों तो यह साल भर अंडे देती ही रहती है। इसके घोंसले में दुनिया भर की चीजें पाई जाती हैं—पक्षियों के पर, ऊन, रेशम के टुकड़े, सांप की केंचुल, रंगीन कागज, टिन अथवा अबरक के टुकड़े। इसे अजायबघर समझिये या किसी अघोर-पंथी साधु की कुटिया।

इसके स्वर में माधुर्य है, पर श्यामा अथवा दोयल की तरह इसमें गाने की क्षमता नहीं होती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका भी मुख्य आहार कीट-पतंग ही हैं। यह काफी ढीठ चिड़िया है। इसे आप बहुधा अपने बरामदे अथवा गृह-प्रांगण में कीड़े-मकोड़े पकड़ते पायेंगे। आपको देख कर भी यह तब तक अपने काम में लगी रहेगी जब तक आप इसे स्वयं भगाने की चेष्टा न करें।

चंडूल

हमारे देश के साहित्य में जो स्थान कोयल और पपीहे का है, अंग्रेजी साहित्य में वही 'कुकू' और 'लार्क' का है। महाकवि शेक्सपियर से लेकर वर्ड्सवर्थ तक सभी कवियों ने इन पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है, सुन्दर काव्य की रचना करके इन्हें अमरत्व प्रदान किया है। व्योमविहारी 'लार्क' पक्षी के सम्बन्ध में देखिए, ब्लैक की कितनी सुन्दर उक्ति है :—

A skylark wounded on the wing
Doth make a cherub cease to sing

—आहत 'व्योमविहारी' लार्क,
जब उड़ान भरता है
तो परी-कुमारों का गायन,
सहसा थम जाता है।

और मिल्टन की यह उक्ति देखिए—

To hear the lark begin his flight,
And singing, startle the dull night.
From his watch-tower in the skies
Till the dappled dawn doth rise.

सुनना लार्क पक्षी को पंख फड़फड़ाते हुए
गाते हुए, गहन-निशा को चौंकाते हुए
अपनी ऊँची बुर्जी से, गगन अटारी में,
जब तक न चित्रमयी ऊषा जग जाती है।

सुदूर व्योम से यह अपनी स्वर-सुधा की वर्षा करता है। महाकवि शेक्सपियर ने बड़े सुन्दर ढंग से इसकी ओर इशारा किया है—

Hark, hark! the lark at heaven's gate sings,
And Phoebus 'gins to rise.

—सुनो, सुनो, उस स्वर्ग-द्वार पर
लार्क गा रहा गान
पूर्व दिशा में उगा दिवाकर,
होने लगा विहान!

दार्शनिक कवि वर्ड्सवर्थ ने इसे आकाश का तीर्थ यात्री कहा है तथा उन बुद्धिमान पुरुषों का उपमान माना है जो ऊंचा उड़ते हैं पर इधर-उधर विचरते नहीं—

Type of the wise who soar but never roam:
True to the kindred points of Heaven and Home!

तथा यह भी पूछा है कि क्या "दुःख शोक से परिप्लावित इस पृथ्वी से घृणा करके ही वह आकाश-पथ पर चल पड़ा है ?"

इन सारी पंक्तियों से यह साफ-साफ परिलक्षित है कि वह सीधा आकाश में उड़कर गाने वाला पक्षी है, स्वर में उसके माधुर्य है तथा निशाकाल में ही अधिकतर वह अपनी स्वर-सुधा का वर्षण करता है।

हमारे देश में यह चंडूल के नाम से प्रसिद्ध है तथा इसके कई भाई-बन्धु हैं। इनमें दो मुख्य हैं—एक वह, जिसके चोटी होती है ; दूसरा वह, जो कि चोटी से रहित है। वह यही है जिसका जिक्र अंग्रेज कवियों ने अपनी कविताओं में किया है।

प्रकृति से यह आकाश में उड़ कर गाने वाला पक्षी है। यह उड़ता हुआ अंतरिक्ष में खूब ऊपर चला जाता है और वहां से अपनी मधुर तान छेड़ता है। थोड़ी देर बाद नीचे आता है, गाता है, पर पुनः ऊपर चला जाता है और गाना जारी रखता है। अपने मधुर संगीत के कारण अक्सर इसे पिंजर-बद्ध होना पड़ता है, पर यह दिल खोल कर तभी गाता है जब स्वतन्त्र रहता है, बन्दी नहीं। फिर भी इसे 'खांचार पाखी' बनना ही पड़ता है। वैसे यह काफी निडर है, आदमी के निकट आने पर डर कर भाग खड़ा होने वाला पक्षी नहीं। आकार में गौरैया से थोड़ा बड़ा, पर बनावट में उससे अधिक क्षीण-काय है। रंग खाकी है, शरीर पर कुछ काले-पीले चिन्ह बने होते हैं,

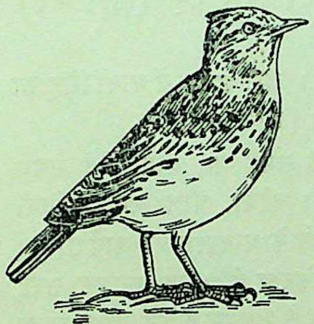

इसका घोंसला प्याले के आकार का होता है, जिसे यह जमीन पर बनाता है।

इसी की एक जाति है "अगिन", जिसके सर पर चोटी नहीं होती। बाकी सब कुछ चंडूल जैसा ही होता है, लेकिन पांख के नीचे एक पट्टी होती है जो उड़ते समय लाल ही लक्षित होती है। यह खुले मैदान की अपेक्षा झाड़ियों को अधिक पसन्द करती है। आवाज में चंडूल जैसी तेजी तो नहीं पर मिठास अवश्य है।

चंडूल की बिरादरी का तीसरा पक्षी ध्योरा, दबक या जुठौली है। इसे भी खुला मैदान अधिक रुचिकर है। सात-सात, आठ-आठ के झुंड में यह रहता है। कद में गौरैया से भी अधिक छोटा, पर चोंच उसके ही समान मोटी होती है। नर का सर भूरा और पीठ हल्के बादामी रंग की होती है। नीचे गाढ़ा कत्थई रंग होता है। गर्दन का आधा हिस्सा भी प्रायः इसी रंग का होता है। ठोढ़ी से आंख तक काली धारी होती है। मादा का रंग बादामी होता है। गाना मीठा होता है पर उसमें बहुविधित्व की कमी होती है। इसे कहीं-कहीं 'भरदूल' पक्षी के नाम से भी पुकारते हैं।

चंडूल को 'भरत' नाम से भी पुकारते हैं। विलायती चंडूल की अपेक्षा हमारे देश के चंडूल कहीं अधिक मीठा गाते हैं। पर उन्हें पिंजरे में पालना आसान नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजंगा और भृङ्गराज

गत दो-तीन दिनों में काफी बारिश हुई । जहां-तहां पानी पड़ने लग गया, पेड़-पौध धुल कर स्वच्छ हो गये, चारों ओर मेघों का काला आवरण व्योम-मंडल पर छा गया। खेत और पगडंडियों पर जल और कीचड़ तो ज्यों के त्यों बने हुए थे, पर आकाश में मेघों का पर्दा फट चुका था और उसके भीतर से निकली हुई सूर्य की ज्योति चतुर्दिक फूल-पत्तों पर, मकानों पर, दूर्वादल की बिछी हुई फर्शों पर, हर जगह बिखर पड़ी थी । और मेरे शयन-कक्ष के ठीक सामने, पारिजात के वृक्ष तथा टेलीफोन के खंभे पर प्रायः दस-बारह काली-काली चिड़ियां जोरों में शोर मचा रही थीं, एक दूसरे पर छापे मार रही थीं, कूदती थीं, दौड़ती थीं, मानों टहनियों पर आंख मिचौनी-सा कोई खेल खेल रही हों ! यही नहीं, वे ज़ोर-ज़ोर से कुछ गा भी रही थीं। मुझे इन्हें पहचानने में देर न लगी—ये भुजैठे या भुजंगे थे जिन्हें हम बहुधा टेलीग्राफ के तारों पर बैठे देखते हैं, खास कर जब हम ट्रेन में सफर करते रहते हैं ।

इन्होंने आज की अपनी प्रातःकालीन क्रीड़ाओं से मुझे इन पर कुछ लिखने को विवश कर दिया। जैसा कि आपने देखा होगा—देखने में ये बिल्कुल काले होते हैं, मानो तार-कोल से रँगे हुए हों, और इनकी पूंछ असाधारण रूप से लम्बी तथा दो सिरों की होती है। पूँछ के परों की संख्या दस होती है। नर और मादा में कोई अन्तर नहीं होता। कद में ये बुलबुल के बराबर होते हैं।

छोटी चिड़ियों में सबसे बहादुर पक्षी है यह भुजंगा। छोटे शरीर में मानों सिंह का हृदय, जो कभी भयभीत नहीं होता, डाल दिया गया हो। (चित्र संख्या : ६)

इसकी वीरता देखनी हो तो इसे घोंसला बनाने के समय या, अंडा सेते समय देखें । उन दिनों इसका मिजाज हमेशा गर्म रहता है । कौआ, चील आदि पक्षियों की बात तो दरकिनार, यदि बन्दर इत्यादि भी इसके घोंसले के आसपास आ जायें तो यह उनकी बुरी तरह खबर लेता है। जान हथेली पर लिये फिरता है । उन पर इस तरह टूट पड़ता है मानों किसी कनेरी पर बाज़ टूटता हो। चोंच से उस पर कठिन प्रहार करता है, कूद-कूद कर ऐसा वार करता है कि अन्त में उसे जान लेकर भागना ही पड़ता है । यही नहीं आदमी तक को उसके मस्तक पर उड़-उड़ कर चोंच से प्रहार करके परेशान कर डालता है । यही कारण है कि कई और पक्षी, खास कर पंडुक और पीलक, भुजंगों के घोंसलों के पास ही अपना घोंसला बनाते हैं और ये बड़ी प्रसन्नता से उनकी जान-माल की भी रक्षा करते हैं। इसीलिए तो कहीं-कहीं ये 'कोतवाल-पक्षी' के नाम से भी पुकारे जाते हैं। निस्सन्देह बड़े वीर हैं ये और किसी भी परिस्थिति में हिम्मत नहीं हारते ।

निर्दोष पक्षियों पर ये हमला नहीं करते, उनसे भाई-चारे का ही व्यवहार रखते हैं; पर कभी-कभी ऐसा जरूर होता है कि ये भूखे होने पर उनका आहार छीन लिया करते हैं । धूर्तता का भी इनमें अभाव नहीं है । जब-तब शिकरे की-सी आवाज करके ये और पक्षियों को सशंकित कर डालते हैं, वे अपना आहार छोड़ कर भाग खड़े होते हैं और ये आनन्द के साथ उसे खा जाते हैं । शायद उनकी मूर्खता पर जी भर हँसते भी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

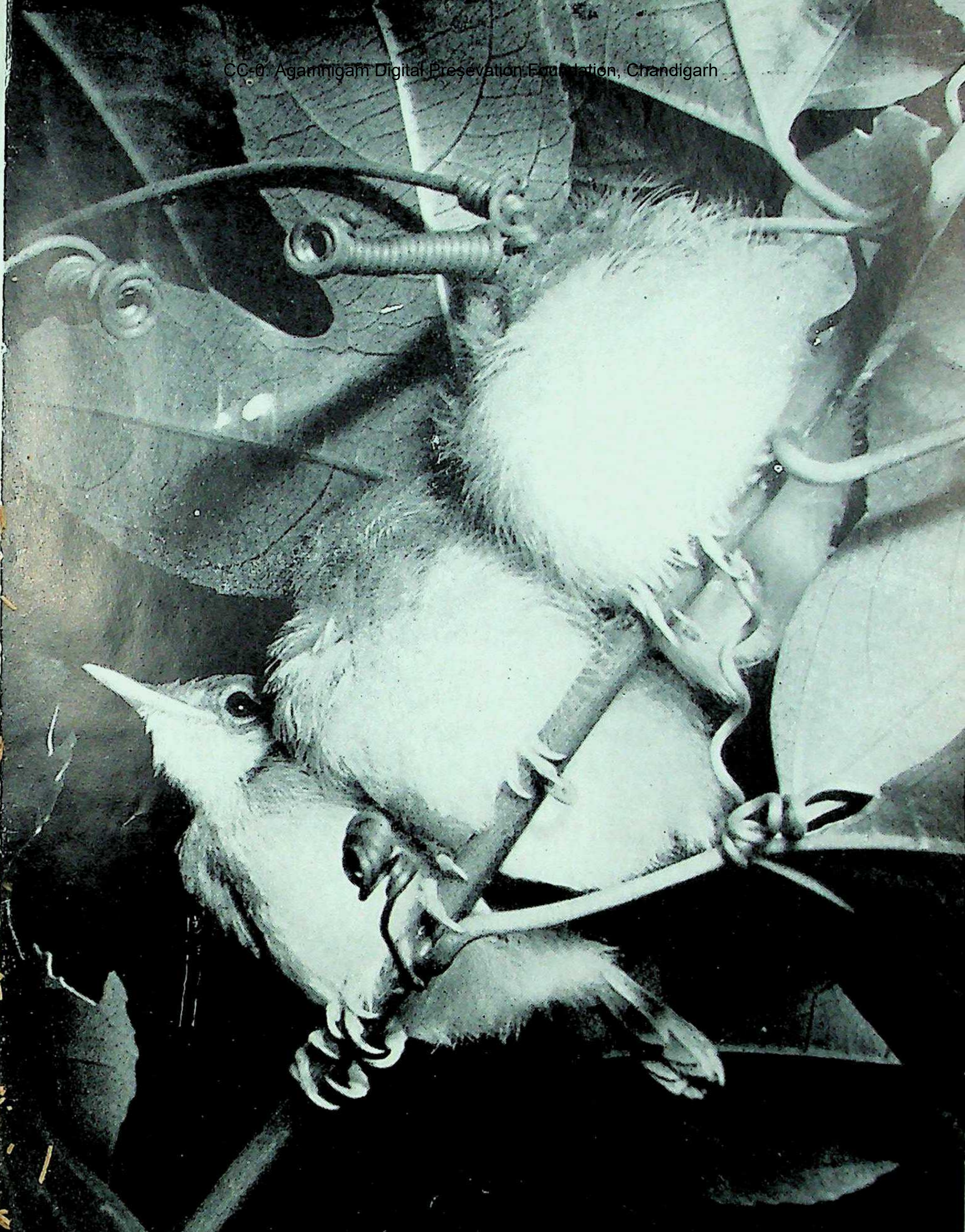

दो सो रहे हैं और एक पहरा दे रहा है चित्र संख्या : १०

चित्र संख्या : ११ अपना अंडा अन्यत्र ले जाते हुए एक पक्षी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : १२ बच्चों को भोजन देते हुए

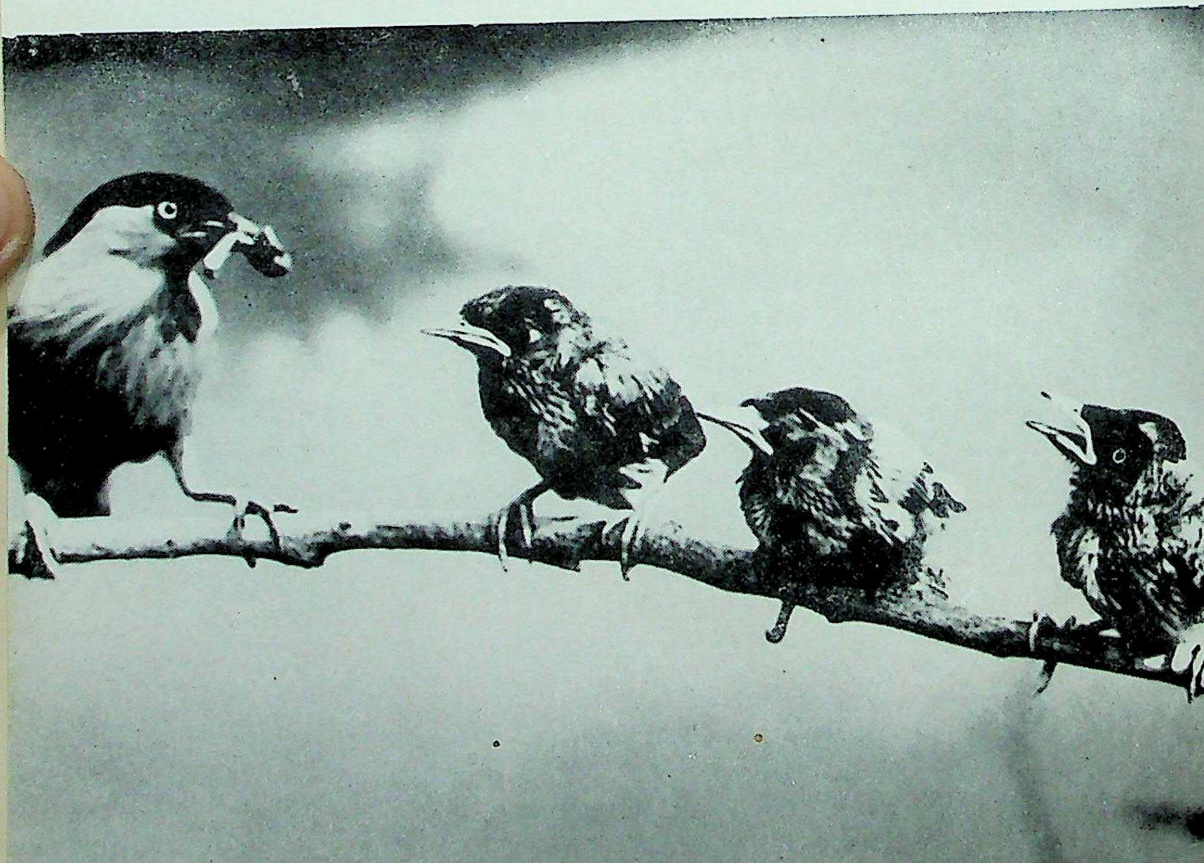

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

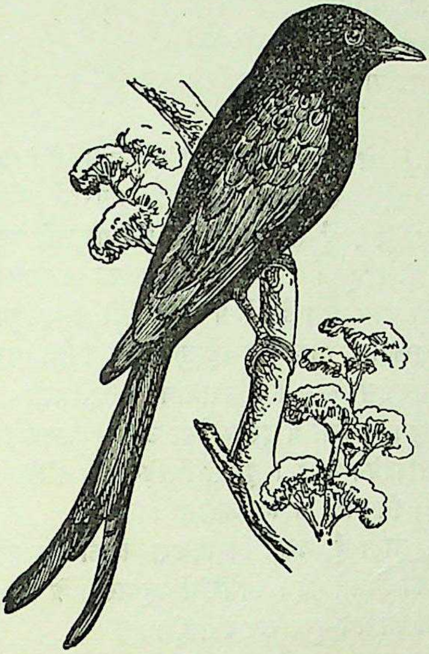

भुजंगों का मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े तथा पतंगे हैं। जब वे हवा में उड़ते होते हैं तभी उन्हें ये पकड़-पकड़ कर चट कर जाते ह। टेलीग्राफ के तारों पर शायद ये उनकी ही प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहते हैं, खासकर गोधूलि के समय, जबकि पतंगे अधिकतर बाहर निकला करते हैं, और फिर उन्हें देखकर बिजली की तरह उन पर टूट पड़ते हैं। उस समय भुजंगे की तेजी देखने ही योग्य होती है। पंख और पूंछ उठ पड़ती है और वे आकाश से जमीन पर बम बरसाने वाले "डाइव बाम्बर" की भांति कीड़े पर सीधे टूटते हैं और उसे चोंच में दबा कर पुनः अपने स्थान पर जा बैठते हैं। वायुयान की तरह इसकी दुम इसके इस कार्य में बड़ी सहायक होती है।

गाय, भैंस आदि पशुओं के पृष्ठ भाग पर बैठना भी भुजंगे को बहुत पसन्द है। बहुधा आप देखेंगे कि चरागाहों में अथवा खेतों में यह उन पर बैठा हुआ धूप में चोंच खोले हांफ रहा है।

घोंसला बनाने में ये अत्यन्त निपुण हैं। घास-फूस का अतिशय सुन्दर, गोल प्याले-जैसा इनका घोंसला होता है, जिसे ये मकड़ी के जाल के तन्तुओं से पेड़ की ऊंची शाख में जकड़ कर बांध देते हैं। पर इनके घोंसलों से अपन आपको दूर रखना ही वांछनीय है, क्योंकि घोंसले के पास किसी के जाते ही ये आगबबूला हो जाते हैं।

मादा के अंडा देने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। अंडों की संख्या चार-चार पांच-पांच तक होती है। रंग भी दो प्रकार के होते हैं—बिल्कुल सफेद अथवा लाल छींटों के साथ। इस देश के हर हिस्से में ये पाये जाते हैं तथा सभी प्रान्तों में इनके भिन्न-भिन्न नाम भी हैं, जैसे बंगाल में फिंगा, दक्षिण में बुचंगा, उत्तर भारत में भुजंगा, भुजैल आदि। ये पांच हजार फुट की ऊंचाई तक के पहाड़ों पर प्राप्य हैं।

प्रकृति की लीला तो देखिये—स्वभाव के ये इतने लड़ाकू, पर बोलने में इतने मधुर-भाषी!

इनकी बोली बड़ी मीठी होती है। पौ फटते ही जब मुर्गा कर्कश स्वर में बांग देने लगता है तथा कौए कांव-कांव करना शुरू करते हैं, तो ये अपनी सुरीली बोली से हमें जगाते हैं, मानों प्रभाती गा रहे हों। सन्त तुलसी का "जागिये कृपा निधान पंछी बन बोले" वाला पद या कि ललित राग में सूरदास का यह पद—

जागिये गोपाल लाल, आनंद-निधि नंद-बाल
जसुमति कहे बार-बार, भोर भयो प्यारे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नैन कमल दल विशाल, प्रीति-वापिका-मराल,
मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे।

प्रभात वेला में गाने के कारण ही शायद गांवों में लोग इन्हें "ठाकुर जी" के नाम से भी पुकारा करते हैं।

भुजंगों की बिरादरी का ही एक पक्षी है, जो कद में इनसे काफी बड़ा होता है। वह है भृंगराज (भृंगराज तेल का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; भृंगराज पौधे से है)। यह भुजंगे से कद में प्रायः दूना होता है तथा इसके सर पर परों की एक कलंगी होती है। पूंछ काफी लम्बी होती है। रंग समूचे बदन का नीलापन लिये हुए काला होता है। कहीं-कहीं सफेद चोंच तथा डैने के पर में सफेदी लिए हुए भृंगराज भी देखे गये हैं जो काले के साथ सफेदी के मिश्रण से बड़े सुन्दर लगते हैं। पर ऐसे शायद इने-गिने ही होते हैं। आम तौर पर इस किस्म के भृंगराज नजर नहीं आते।

भृंगराज गान-विद्या-विशारद पक्षी है। पक्षियों में इसके जैसा उस्ताद शायद ही कोई हो। यही कारण है कि यह इतना लोकप्रिय भी है। दूसरी चिड़ियों की बोलियों की नकल भी यह बड़ी आसानी से और बड़ी निपुणता से कर लेता है।

पिंजरे में यह आसानी से पाला भी जाता है, बशर्ते कि पिंजरा काफी बड़ा हो और इसे काफी संख्या में कीड़े-पतिंगे खाने को मिलते रहें। पिंजरे में यह मस्ती के साथ अपनी सुरीली तान छेड़ता है तथा श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर देता है।

प्रसिद्ध शिकारी जिम कॉर्बेट ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है—

"कई वर्ष हुए बी० एन० डबल्यु० रेलवे के एक स्टेशन मनकापुर का ऐंग्लो-इंडियन स्टेशन मास्टर भृंगराज तथा श्यामा पक्षी पाल-पाल कर बेचा करता था। ट्रेन वहां देर तक ठहरा करती है। अतः यह एक नियम-सा बन गया था कि यात्री ट्रेन छोड़ कर उसके डेरे पर जाते तथा भृंगराज और श्यामा के पिंजरे ले-ले कर लौटते थे। वह पक्षी सहित पिंजरे की कीमत ३०) प्रति पिंजरा की दर से लिया करता था।"

भृंगराज पक्षियों की ही नहीं, बल्कि जानवरों की बोली की भी नकल बड़ी खूबी से करता है। जिम कॉर्बेट ने अपनी उक्त पुस्तक में इसकी चर्चा करते हुए एक रोचक घटना का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

"मेरी उपस्थिति में एक चीते ने एक अल्पवयस्क हरिण की हत्या कर डाली। चीते को कुछ दूर भगा कर मैं मृत हरिण के पास लौटा तथा झाड़ी के एक वृक्ष से उसे बांधा। चूंकि आस-पास कोई सुभीते का वृक्ष न था, मैं अपना कैमरा लेकर जमीन पर ही बैठ गया। शीघ्र ही एक भृंगराज कुछ छोटी चिड़ियों के झुंड के साथ वहां आ पहुंचा। मृत हरिण से तो नहीं, चूंकि उसके लिए यह कोई असाधारण घटना न थी, पर मुझे देखकर वह कुछ चकित-सा हुआ; पर जब उसे यह विश्वास हो गया कि मैं कोई भयंकर वस्तु नहीं हूं तो उड़कर पुनः उन छोटी चिड़ियों के बीच चला गया जो डाल पर बैठी हुई चहक रही थीं। चिड़ियां मेरे बायीं ओर थीं और मैं दायीं ओर से चीते के आने की आशा कर रहा था, जब कि सहसा भृंगराज हरिणों की-सी आतंकपूर्ण बोली बोल उठा जिसे सुनते ही बाकी चिड़ियां, जिनकी संख्या पचास के करीब थी, एक साथ चिल्लाती हुई ऊपर की डालों पर भाग गयीं और फिर ज़ोर-ज़ोर से भय सूचक शब्दों में बोलने लगीं। भृंगराज को देख कर मुझे अब चीते के चलने-फिरने का—अस्तित्व का—पता लगन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा; चीता पक्षियों की बोली से अप्रसन्न हो कर अपनी राह बदल कर अब ठीक मेरे पीछे की ओर मुड़ आया था। झाड़ी छिछली सी थी अतएव वह आसानी से मुझे देख पाया तथा गुर्राता हुआ जंगल की ओर बढ़ चला। साथ-साथ भृंगराज भी। बड़े आनन्द के साथ अब वह विभिन्न उम्र के हरिणों की बोली—चीत्कार—बारी-बारी से बोल रहा था।

थोड़ी देर के बाद भृंगराज से पिण्ड छुड़ा कर चीता पुनः वहां लौटा और जब कि वह बंधे हुए मृत हरिण का बन्धन तोड़ने में लगा हुआ था, मैंने आसानी के साथ अपने कैमरे से उसकी तस्वीरें उतार लीं।"

बुलबुल

आलम को लुभाती हैं पियानो की सदाएं,
बुलबुल के तरानों में अब लय नहीं आती।

जिस पक्षी के संबंध में महाकवि अकबर की यह उक्ति है, मेरे इस छोटे-से बैठकखाने के बरामदे में गत कई सप्ताह से उसके एक जोड़े ने घोंसला बना रखा है। सुबह से शाम तक अधिक समय वे इस बसेरे के इर्द-गिर्द मंडराते रहते हैं। थोड़ी देर के लिए बीच-बीच में बाग के सुदूर कोने पर जाते हैं, पर शीघ्र ही लौट आते तथा घोंसले में जा कर अपने नवजात शिशुओं की कुशल-क्षेम पूछते हैं। मैं बैठा-बैठा इस दृश्य को देखा करता हूं और सोचता हूं–क्या ये ही वे पक्षी हैं, जिनकी तारीफ में सैकड़ों वर्षों से फ़ारस के शायरों ने अपनी कलम तोड़ डाली है और उनकी नकल हिन्दुस्तान के शायरों ने भी की है। जब मेरे दिल में ये विचार उठते हैं, तो मेरी अवस्था कुछ वैसी ही होती है जैसी कि जगद्विख्यात अद्वितीय सुन्दरी हेलेन को देखकर डाक्टर फास्ट की हुई थी और वे चिल्ला उठे थे—

Is this the face that launched a thousand ships
And burnt the topless towers of Ilium?

—क्या यही वह मुखड़ा है, जिसकी प्राप्ति के लिए हजारों जहाज युद्ध के लिए निकल पड़े थे तथा ईलियम शहर की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं को जल कर भस्मीभूत होना पड़ा था?

ये उद्गार उस समय के हैं, जबकि मेफिस्टोफिलिस नामक एक जादूगर ने मृत हेलेन की आत्मा को शरीरधारी रूप में उसके सामने उपस्थित किया था। मेरा हृदय भी बुलबुल को देख कर पूछ उठता है—क्या यही वह पक्षी है, जिसे शेख़ सादी एवं हाफिज जैसे महान् साहित्यकारों का (उन्हें 'बुलबले-शीराज़' कहते हैं) उपमान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था? उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि चकबस्त ने लिखा था—

बुलबुल को गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक,
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक।

तथा फ़ारसी के एक अन्य शायर ने—

ब गुलबुन बुलबुलो कुमरी ब-सरवे बोस्तां नाज़द।

'बुलगुल को गुल मुबारक', शायर की इस उक्ति का निस्सन्देह मेरे बाग की बुलबुलों ने पूरा उपयोग किया है तथा 'गुलबुन' (गुलाबों) पर अपनी पूरी प्रीति दिखाई है, क्यों-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि इसमें रहने वाली बुलबुलें, जिनकी संख्या सौ से कम न होगी, दिन भर डालों पर थिरकती और चहकती हुई निर्भयतापूर्वक फूलों का रसास्वादन करती रहती हैं। बंगाल के प्रसिद्ध कवि नज़रुल इस्लाम ने इस भय से कि बुलबुल का डाल का हिलाना कहीं सोए हुए फूल को जगा न दे, कहा था—"बुलबुलि, तुइ फूल शाखा ते दिस् ने आजि दोल"—अर्थात् बुलबुल, तू फूल की डाल को आज डुला मत दे। कवि को यह भले ही पसन्द न हो, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि फूल अपनी प्रियतमा की इन छेड़खानियों के लिए तरसते रहते हैं।

तो आखिर ये बुलबुलें हैं कौन? बुलबुल कद में गोरैये से कुछ बड़ी एक ऐसी चिड़िया है, जिसकी बनावट सुन्दर तथा अदायें मनमोहक होती हैं। इसके सिर पर मुर्गे-जैसा एक तुर्रा होता है, जो दो प्रकार का है—घना और नुकीला। भारतवर्ष की फुलवारियों, वन-उपवनों में ये बहुतायत से पाई जाती हैं। काली होने पर भी चित्ताकर्षक हैं। इनकी दुम के नीचे का भाग सुर्ख होता है, जो इनकी खूबसूरती को और भी ज्यादा बढ़ाता है। इनका भोजन अधिकतर फूल-फल हैं, पर कभी-कभी ये छोटे-छोटे पतंगों को भी अपना आहार बना डालती हैं। श्री मेसन नाम के एक सज्जन ने पूसा (बिहार) में एक दफा ३६ बुलबुलों की उदरस्थ वस्तुओं की परीक्षा की थी, जिनमें १२९ प्रकार के कीड़े-मकोड़े पाये गये थे, ९६ तो उनमें ऐसे थे जो मनुष्यों के लिए काफी नुकसानदेह माने जाते हैं और विषैले हैं।

धान आदि के खेत में लगे हुए नाज को खाने में भी ये अन्य पक्षियों से किसी कदर कम उस्ताद नहीं होतीं; खेत-का-खेत चट कर जाती हैं। तभी तो 'बरगी,' मराठों की लूटपाट से संतप्त बंगाल के किसी किसान ने रो-रोकर कहा था—

छेले घुमालो, पाड़ा जुड़ालो,
बरगी एलो देशे,
काल बुलबुलि ते धान खेलो,
खाजना देबो किशे ?

—कल बुलबुलें खेत का धान चट कर गयीं, अब सरकारी कर किस प्रकार दूंगा!

बुलबुलें पाली जाती हैं और पालतू बुलबुलें काफ़ी शोख भी होती हैं। इन्हें बंधन में अथवा पिंजरे में रखने की आवश्यकता नहीं रहती; ये पालने वालों के हाथों और कन्धों पर आनन्द से बैठती और चहकती रहती हैं। प्राचीन काल में शौकीन-मिजाज लोग बाज़ अथवा परेवा-कपोत की भांति इन्हें भी हाथों पर बिठा कर घूमा करते थे। बुलबुल लड़ाने की भी परिपाटी थी। राजा-महाराजा, नवाब रईस, अमीर-उमरा, खास तौर पर बुलबुलें लड़ाया करते थे और इनकी लड़ाई में आम जनता वैसी ही दिलचस्पी लिया करती थी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसी कि आजकल फुटवाल और क्रिकेट के मैचों में लिया करती है । लड़ाई के मैदान में भीड़ उमड़ पड़ती थी तथा विजेता बुलबुलों पर लोग कुर्बान जाते थे। अन्य सभी बुलबुलों को पराजित कर जो सर्वश्रेष्ठ, विजेता होती थी वह उस वर्ष की 'चैम्पियन' मानी जाती थी तथा उसके पालक उसके अड्डे—बैठने वाली काठ की लम्बी सीट—पर सोना-चांदी मढ़ाते थे। उसे अगले वर्ष के लिए बड़ी कद्र के साथ रखते थे तथा अन्य बुलबुलों को उड़ा देते थे । अवध के नवाबों को बुलबुलें लड़ाने का खास शौक था । पर अब वह जमाना न रहा : "वे चौकियां बदल गईं, थाना बदल गया !" राजा-महाराजा, नवाब, ताल्लुकेदार, ज़मींदार चले गये, रियासतें न रहीं और न रही बुलबुल पालने की वह पुरानी प्रथा।

बुलबुल की कई उपजातियां हैं : (१) सबसे सार्वलौकिक बुलबुल वह है जो लम्बाई में प्रायः ९ इंच की होती है तथा जिसकी चोटी (तुर्रा) एवं पूंछ बिल्कुल काली होती है । हां, दुम के निचले हिस्से पर, कुछ सफेदी तथा गुलावीपन अवश्य होता है । गले के पास का हिस्सा भी काफी काला होता है। भारतवर्ष के अधिकांश हिस्सों में इसी जाति की बुलबुलें काफी संख्या में पाई जाती हैं।

(२) दूसरी किस्म की बुलबुल, देखने में पहलो किस्म की बुलबुल से अधिक चित्ताकर्षक होती है। इसकी लम्बाई पहली किस्म की बुलबुल से कुछ छोटी होती है। इसकी पीठ भूरे रंग की और नीचे का हिस्सा पूर्ण रूप से सफेद होता है । दुम पर सफेद धब्बे होते हैं। पर इसी जाति की एक दूसरी बुलबुल भी पाई जाती है, खासकर हिन्दुस्तान के पश्चिमी प्रान्तों में, जिसकी छाती पर एक काली रेखा-सी खिंची होती है और पूंछ पर सफेद धब्बे नहीं होते। दोनों के लम्बे, घने, काले तुर्रे होते हैं, गाल पर सुर्ख धब्बे तथा पूंछ के नीचे सुर्खी होती है । इस जाति की बुलबुलें हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों तथा बर्मा में पाई जाती हैं तथा सुन्दरता के लिए विख्यात हैं।

(३) तीसरी किस्म की वह बुलबुल है, जो कद में नं० २ की ही भांति होती है। सिर पर चोटी भी उन्हीं-जैसी होती है, पर रंग बिल्कुल भिन्न होता है । घना तथा बिखरा पंख-समूह, जिसका रंग, शुरू से आखीर तक, सिवा काले सिर के, पीला तथा आंखें भी अन्य बुलबुलों के ठीक विपरीत, पीली होती हैं। ये इस देश के कुछ ही हिस्सों में पाई जाती हैं।

(४) श्वेत गालों वाली बुलबुल, सुन्दरता में सबसे बढ़ी-चढ़ी है। इसके हाव-भाव से यह साफ जाहिर होता है कि इसे अपनी सुन्दरता पर बड़ा नाज़ भी है। कद में प्रायः आठ इंच की, गले पर कालापन, पूंछ के निम्न भाग पर संतरे के रंग का पीला धब्बा, कहीं-कहीं सफेदी भी, और चेहरे के दोनों ओर श्वेत-वर्ण के सुन्दर धब्बे होते हैं । आंखे काली और बड़ी तथा सिर के तुर्रे का हर एक पर भरा-पूरा एवं घुंघराला-सा होता है। यह एक प्रकार से पर्वतीय बुलबुल है, क्योंकि इसका निवास-क्षेत्र मरी की पहाड़ो से लेकर भूटान तक है तथा ६००० फुट की ऊंचाई तक यह पाई जाती है । कश्मीर में लोग इसे बड़े प्यार से पालते हैं तथा चम्बा में इसे पेनजु के नाम से पुकारते हैं ।

(५) पांचवी किस्म की बुलबुल वह है, जिसके कान श्वेत होते हैं तथा पूंछ के नीचे का हिस्सा पीला, बिल्कुल केसरिया रंग का होता है । ये मध्य भारत से लेकर पाकिस्तान तथा फारस तक में पाई जाती हैं। फारस की प्रसिद्ध बुलबुल की इससे अधिक समानता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है पर कद में वह इससे बड़ी होती है। यह सभी बुलबुलों से ज्यादा आसानी के साथ पाली जाती है तथा इसकी बुद्धि भी औरों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण होती है।

(६) छठी श्रेणी में कुछ लोग उस बुलबुल को रखते हैं, जो कि बनावट में बुलबुलों जैसी तो होती है, पर उसके सिर पर चोटी (तुर्रा) नहीं होती। रंग इसका अवश्य ही बहुत सुन्दर है—सुनहरा ललाट, नीला गला, हरा शरीर। यह आसानी से पाली भी जा सकती है। स्वर मधुर, गाने में निपुण, पर अत्यन्त लड़ाकू और कलहप्रिय है। एक ही पिंजरे में दो रख छोड़िए, फिर इनका तमाशा देखिए। दिन-रात लड़ती रहेंगी। कभी-कभी तो ये इतनी ज्यादा लड़ती हैं कि लड़ते-लड़ते प्राण तक दे डालती हैं। जितनी मधुर-भाषिणी, उतनी ही ईर्ष्यालु! यह भी विधि की एक विडम्बना ही है। ये उस विषधर की तरह हैं, जो वाद्य यंत्र के तंत्री-स्वर पर मुग्ध होता है, दुग्धपान करता है, पर अन्त में विष ही उगलता है। छठी श्रेणी की यह बुलबुल पूर्व बंगाल से लेकर बर्मा और वियतनाम तक में पाई जाती है। इसकी एक विशेषता यह है कि यह बड़ी सफलतापूर्वक विभिन्न पक्षियों की आवाजों और गानों की नकल कर सकती है और करती रहती है।

क्या बुलबुल गाती भी है?

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस देश में पायी जाने वाली बुलबुलों की उपर्युक्त छः उपजातियां हैं। पर सबसे सुलभ वह है, जिसकी प्रारम्भ में चर्चा की गई है। हिन्दुस्तान के सभी हिस्सों में इस जाति की बुलबुलें बहुतायत से उपलब्ध हैं। वे खूब थिरकती हैं, चहकती हैं, पर गाती नहीं; फिर भी फारस के शायरों की नकल में हम बुलबुलों के गानों-तरानों का जिक्र करते हैं। यदि फारस के शायरों ने बुलबुलों के गाने की बात कही, तो उन्होंने कोई गलती नहीं की। बात सही है। वहां जिस जाति की बुलबुलें पाई जाती हैं, वे गाने वाली हैं तथा बहार (वसंत) के आने पर मस्ती के आलम में उसी जोशोखरोश के साथ गाती हैं, जिसके साथ भारतवर्ष की कोयल अथवा पपीहा गाया करता है। स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने एक लेख में उर्दू के एक प्रसिद्ध लेखक आज़ाद के फारस के बहार के अनुभव का जिक्र करते हुए उनके एक लेख का अवतरण दिया था, जिससे ज़ाहिर होता है कि उस मुल्क की बुलबुलें केवल चहकती ही नहीं, बल्कि ऊँचे स्वर में गाती भी हैं। अवतरण इस प्रकार है—

"इधर गुलाब खिला, उधर बुलबुल हज़ार-दास्तां उसकी शाख पर बैठी नज़र आई। बुलबुल फूल की टहनी पर, बल्कि घर-घर दरख्तों पर बोलती है और चहचहे करती है। और गुलाब की टहनी पर तो यह आलम होता है कि बोलती है, बोलती है, बोलती है—हद से ज्यादा मस्त होती है, तो फूल पर मुंह रख देती है, और आंख बन्द करके ज़मज़मा करती रह जाती है। तब मालूम होता है कि शायरों ने जो इसके और बहार के गुलोलाला के मजमून बांधे हैं, वे क्या हैं, और कुछ असलियत रखते हैं या नहीं। चांदनी रात में किसी टहनी पर आ बैठती है और इस जोशोखरोश से बोलना शुरू करती है कि रात का काला गुंबद पड़ा गूंजता है, वह बोलती है और अपने ज़मज़मे में तानें लेती है और इस जोर शोर से बोलती है कि बाज़ मौके पर जब चह-चह करके जोश व खरोश करती है, तो यह मालूम होता है कि इसका सीना फट जाएगा।"*

*** कहते हैं कि फ़ारस से कुछ 'हजारदास्तां' बुलबुलें नूरजहां ने मंगवा कर कश्मीर में छुड़वाया था; और इसी वजह से कश्मीर के दो एक इलाक़ों में इस जाति की बुलबुलें पाई जाती हैं।**

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफसोस कि भारत की बुलबुलों में यह हुनर नहीं, पर गुलों से उसे भी वही शौक है, जो कि फ़ारस की बुलबुल को । बाग में हज़ारों चिड़ियां आती-जाती हैं, पर वह अगर जिन्दा मालूम पड़ता है, तो बुलबुल की चहचहाहट से । हर डाल पर चहकना, हर फूल से लिपटना—यह बुलबुल का ही काम है । महाकवि अकबर के शब्दों में—

हुजूमे-बुलबुल हुआ चमन में,
किया जो गुल ने जमाल पैदा ।

बुलबुलों की कद्रदानी का यह प्रमाण-पत्र देकर कवि ने अपनी गुणग्राहकता का जबर्दस्त परिचय दिया है । आपस में वे चाहे जितना भी लड़ें, पर बुलबुलों की सामाजिक प्रवृत्ति वड़ी प्रबल होती है । वे अपनी उम्र और कद की और चिड़ियों से मेल ही नहीं रखतीं, बल्कि उनके साथ खूब खेलती-कूदती भी हैं । हमजोलियों से बड़ा प्यार रखती हैं । बाग और बुलबुल का इसीलिए तो अभिन्न सम्बन्ध है । बिना बुलबुल के बाग की कल्पना करना कवियों के लिए कठिन हो उठता है । यदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'आज इस बाग में बूए-कबाब आती है' मिसरे की पूर्ति 'किसी बुलबुल का दिल जला होगा' से की तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उन्होंने काव्योचित परम्परा का ही अनुसरण किया । आधुनिक कवियों में इक़बाल ने भी तो लिखा था—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा,
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह गुलसितां हमारा ।

खेद है कि गान-विद्या में अपनी असमर्थता के कारण हमारे देश की बुलबुल प्राचीन भारतीय साहित्य में वह स्थान न पा सकी, जो कोकिल अथवा चातक को प्राप्त हुआ । फारस की बुलबुल की तरह यदि वह भी तराने लगाया करती, तो जहां—

यमुना तलफत बीती रैन,
त्रिविध समीर तीर-सम लागत, विष-सम कोकिल बैन,

अथवा 'कहुं बोलत पपिहरा बन की ओर' गाए जाते थे, वहां गीतकार या गायक इन प्यारी बुलबुलों की उपेक्षा न करते, गोपियों के विरह-वर्णन में इनका भी स्थान होता; उद्धव श्याम से जाकर कहते—

श्याम, मरुभूमि भयो ब्रजधाम,
शुक-पिक, चातक दूर सिधारे, नहिं बुलबुल उहि ठाम,

अथवा ब्रजांगनाएं अपने हाथों से बुलबुल को दाने चुगातीं और कहतीं—

कहियो हरि सों बुलबुल जाय,
विरह-ताप मो जरि भइ कारी,
अब छाया सम काय !

पर बेचारी बुलबुल को यह नसीब न हुआ तथा प्राचीन भारतीय साहित्य ने उर्मिला की भांति उसे भी उपेक्षा की ही दृष्टि से देखा । यही नहीं, जहां उर्दू-फारसी के अधिकांश कवियों ने उसको दिल खोल कर दाद दी, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, महाकवि मिल्टन तक ने लिखा—

Sweet bird that shunn'st the noise of folly,
Most musical, most melancholy,
Thee, chantress, oft, the woods among,
I woo, to hear thy evensong.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—ओ मधुकंठी चिड़िया ! जो मूर्खतापूर्ण ध्वनियों से दूर रहती है।

—ओ सर्वाधिक संगीतमयी ! ओ सर्वाधिक करुण ! ओ कल कूजनवती ! बहुधा वनों में तेरा सान्ध्यगीत सुनने के लिए मैं तेरा आह्वान किया करता हूं।

तथा एडविन आरनल्ड ने लिखा—

The Bulbul, which did chase the jewelled butterflies.

—वह बुलबुल जो हीरों सी सुन्दर तितलियों के पीछे दौड़ती थीं !

और कश्मीरी ग्राम-गीत के किसी अज्ञात रचयिता ने कहा—

गाओ, गाओ, हे बुलबुल, आयी बहार, आयी बहार अब।

लेकिन कुछ ऐसे "जाहिदे-खुश्क" इस मुल्क में पैदा हुए, जिन्होंने उसके आन्तरिक माधुर्य और उसके गुणों की ओर दृष्टि न डाल कर केवल उसके पार्थिव शरीर को ही देखा और बड़ी बेरहमी से साथ कहा—

मालूम है मुझे सब बुलबुल तेरी हकीकत,
एक मुश्त उस्तख्वां है, दो पर लगे हुए हैं।

शायद ऐसे ही जनों के—जो बुलबुल की रूह को न देखकर केवल उपयोगितावांद के सिद्धान्त पर उसके शरीर को ही देखते हैं और उसके भीतर बहने वाली सरसता की शाश्वत निर्झरणी की ओर दृष्टिपात नहीं करते—सम्बन्ध में महाकवि क्षेमेन्द्र ने लिखा था—

यस्तु प्रकृत्याश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः
तर्केण दग्धोनल धूमिना वाप्य विरुद्धकर्णः सुकवि प्रबंधैः
न तस्य वक्तृत्व-समुद्भवः स्याच्छिक्षा विशेषैरपि सुप्रयुक्तः
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्शितं पश्यति नार्कमंधः।

ठीक ही कहा है कि जो स्वभाव से ही प्रस्तर के समान हैं, वे बुलबुल की कीमत-कद्र क्या जान ? पर जिस संसार में ईसा और मंसूर जैसे लोग सूली पर चढ़ा दिए गए, वहां यदि बुलबुल के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? कहा भी है—

निष्ठुरता ही तो इस जग का सबसे बड़ा नियम है,
कोमलता, करुणा, सहृदयता इन्हें ढूंढना भ्रम है !

पक्षी-समाज के साथ मानव का व्यवहार एक-सा नहीं रहा है। कहते हैं कि इटली का प्रसिद्ध दार्शनिक चित्रकार जगद्विख्यात लियनार्डो द विंची पक्षियों से इतना प्रेम रखता था कि वह उन्हें बन्दी अवस्था में देख ही न सकता था। उसकी यह आदत थी कि वह पिंजरबद्ध पक्षियों को खरीद-खरीद कर उन्हें बन्धनमुक्त करता रहता था। दूसरी ओर अंग्रेजी का कवि राल्फ हागसन लिखता है—

I saw with open eyes
Singing birds sweet
Sold in the shops
For the people to eat,
Sold in the shops of
Stupidity street.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरैया का एक जोड़ा (एक प्राचीन चित्र)

चित्रकार : उस्ताद मंसूर

चित्र संख्या : १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस्ताद मंसूर द्वारा चित्रित एक पक्षी

चित्र संख्या : १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैंने इन आंखों से देखीं
गानवती चिड़ियां सुन्दर
बिकते बीच बजार, मनुज का
भोजन बनने हित रुचिकर
देखा दूकानों पर बिकते
मूर्ख-मार्ग पर, बीच सदर।

मनुष्य की हृदयहीनता की इस से वढ़ कर दूसरी कौन-सी मिसाल हो सकती है? तभी तो नजरुल इस्लाम ने शोक भरे शब्दों में कहा था—

केमन राखि आंखि-वारि चापिया,
प्राते कोकिला कांदे, निशीथे पापिया!

पर बुलबुल उन पक्षियों में है जिन्हें देख कर हृदय में करुणा के नहीं, उमंगों के भाव जगते हैं।

किसी कवि ने उसे "वन-उपवन की आली" कहा है। इसमें सन्देह नहीं कि 'वन-उपवन की आली' बनने की योग्यता यदि किसी पक्षी में है तो वह बुलबुल में ही; प्रकृति-नटी की मधुशाला की निपुण नर्तकी बनने की भी योग्यता वही रखती है। तभी तो, जिन्दा लोगों की वात तो दरकिनार, कब्र में सोयी हुई आत्माएं तक यदि अपनी मजार पर इन चहकती हुई बुलबुलों को नहीं पातीं, तो इनके लिए तरसती रहती हैं। जेबुन्निसा के इन विषादपूर्ण शब्दों पर ध्यान दें—

बर मजारे मां गरीबां नै चिरागे, नै गुले,
नै परे परवानः सोजद, नै सदाए-बुलबुले!

—मुझ दरिद्र की कब्र दीपक और फूल, दोनों से रहित है। अतः यहां न तो परवानों के पर जलते हैं और न "सदाए-बुलबुल" (बुलबुलों की पुकार) ही सुनायी पड़ती है।

फटिकजल

वर्षाकाल के सन्ध्याकाश में घन घिरते आ रहे हैं। सूर्य के अस्त होने में समय शेष रहने पर भी धीरे-धीरे अंधकार का प्रसार होता जा रहा है। अधिकांश पक्षी घोंसलों में दुबके हैं; पर एक छोटा-सा पक्षी है जो वृक्ष से उड़ कर सीधे आकाश की ओर तेजी से जाता है, फिर उसी गति से पांखें बन्द कर नीचे आता है और फिर ऊर्ध्वगामी होता है। चोंचें उसकी खुली हुई हैं और वह लगातार कुछ बोल रहा है मानों किसी वस्तु की याचना कर रहा हो।

शीघ्र ही उसकी इस व्याकुलता का रहस्योद्घाटन होता है। मेघ बरसते हैं और अपनी खुली चोंचों से वह शीतल जल-विन्दु का पान करता है और अपने हृदय की व्यथा को, प्यास को, बुझा लेता है। यह है वह छोटा-सा पक्षी, जिसे हिन्दी में "शोबिंग" और बंगला में "फटिकजल" कहते हैं। बंगाली कहते हैं कि "फटिकजल" कह-कह कर वह

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेघ से जल की याचना करता है। हिन्दी भाषा-भाषी कहते हैं, यह शोवि-इ-इ-इ-ग कहता है। पर खग की भाषाएं जानने वाले ही बता सकेंगे कि यह वास्तव में क्या कहता ह।

साहित्य में चातक की प्यास प्रसिद्ध है—'चातक रटहिं तृषा अति ओही'—और इसीलिए मेघ-वारि-बूंदों का, वृक्ष की पत्तियों पर पड़े हुए वर्षाजल का वह मुक्त-कंठ से पान करता है। इस पक्षी के सम्बन्ध में यह धारणा बंगाल में बनी हुई है कि

संस्कृत साहित्य का स्वाति-जल-प्यासा चातक यही है, पर बहुतों का मत इसके विपरीत है। उनके विचार से चातक और पपीहा दो नहीं, एक ही पक्षी है। वर्षा-बिन्दु के प्रेमी एक से अधिक पक्षी भी तो हो सकते हैं!

शोविग या फटिकजल एक छोटा-सा पक्षी है—अत्यन्त लजीला, अधिकतर बड़े-बड़े वट, पीपल, नीम आदि वृक्षों की पत्तियों की ओट में बैठा हुआ यह छोटे-छोटे कीड़ों का शिकार करता या सुमधुर स्वर में गान करता रहता है। अधिकतर प्रजनन ऋतु के आरम्भ होते ही नर अनेक हाव-भावों से मादा का चित्त हरने की कोशिश करता है, उसके पास जा कर बद्ध-पंख रीति से बैठता है, मानो प्रणय-याचना कर रहा हो, और फिर उठ कर मधुर स्वरों में गाता है। गरज़ यह कि उसे रिझाने की हर प्रकार की कोशिश करता है। मादा चुपचाप बैठी हुई उसकी प्रणय परीक्षा लेती है और अंत में उसकी प्रणय चेष्टाओं से सन्तुष्ट हो कर उसे प्रेम-भीख देती है।

नर जिन दिनों मादा को सम्मोहित करने में संलग्न रहता है, उन दिनों सुमधुर स्वर में गाता तो है ही, नये वस्त्र भी धारण कर लेता है अर्थात् उसके परों के रंग में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है। प्रजनन ऋतु के समाप्त होते ही वे फिर पहले जैसे हो जाते हैं।

कभी-कभी यह भी देखा गया है कि नर के बदले मादा ही काम-चेष्टा में संलग्न होती है। तरह तरह के हाव-भावों से नर को अपनी ओर आकर्षित कर के वह अपनी इच्छा की पूर्ति करती है। इस पक्षी की यह एक विशेषता है, क्योंकि पक्षियों में प्रकृतितः नर ही मादा को रिझाने की चेष्टा करते हैं, मादा नरको रिझाने की नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि फटिकजल की मादा, अत्यन्त पति-अनुरागिनी है क्योंकि वह हमेशा नर के साथ-साथ ही रहती है, यहां तक कि नर यदि क्षणमात्र को भी उड़ा तो वह भी उसके साथ-साथ ही उड़ पड़ती है। मानों वह—

जिउ बिनु देह, नदी बिनु वारी,
तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी।

के सिद्धान्त पर चलने वाली है।

फटिक पक्षी का रंग-विश्लेषण एक कठिन समस्या है। एक तो यह ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ अपने परों का रंग बदलता है, दूसरे इससे मिलते-जुलते और भी कई पक्षी हैं, जिनसे इसका घनिष्ठ वर्ण-सादृश्य है। फिर भी यदि इसे हम उड़ते वक्त देखें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो इसे पहचानना कठिन नहीं है। सीधे आकाश की ओर उड़ने का इसका तरीका कुछ ऐसा विशिष्ट होता है कि इसे उड़ते देख कर हम जान सकते हैं कि यह अन्य कोई पक्षी न हो कर फटिकजल ही है।

कद में यह गौरैये से भी छोटा होता है। रंग में मादा के शरीर के ऊपर का हिस्सा जैतून के रंग का पीलापन लिए हरा तथा निचला पीला होता है। पांखों पर दो सफेद धारियां होती हैं। प्रजनन ऋतु में नर का ऊपरी हिस्सा बिल्कुल चमकदार काला तथा निचला गाढ़ा पीला होता है। पांखों पर दो सफेद मोटी-मोटी धारियां होती हैं। प्रजनन-काल के समाप्त होते ही इसका वर्ण भी बिल्कुल मादा के सदृश ऊपर जैतूनी हरा, नीचे हल्दी-सा पीला हो जाता है। शिशु पक्षी का रंग मादा जैसा रहता है।

मोटे तौर पर फटिकजल का यही रंग है। पर ऋतु एवं स्थान-भेद से इसके रंग में काफी परिवर्तन हुआ करता है। मसलन, भारतवर्ष के दक्षिणी प्रान्तों में पाये जाने वाले पक्षी का रंग अधिक गाढ़ा होता है, बाकी जगहों में हल्का। इसी तरह परिवर्तित रंग में भी कभी-कभी काफी भिन्नता पायी जाती है।

घोंसला बनाने में यह पूरा दक्ष होता है। जमीन से कम ही ऊंचाई पर मुलायम घास-फूस की सहायता से यह कटोरे के आकार का घोंसला बनाता है जो देखने में सुन्दर तथा साफ़-सुथरा होता है। इसका भीतरी भाग मकड़ जाल की मदद से अच्छी तरह प्लास्टर किया हुआ रहता है।

मई से सितम्बर तक इसके अंडा देने का समय है। अंडों की संख्या दो से चार तक होती है। जिस प्रकार कौआ कोयल से तथा सतभइया पपीहे से छला जाता है, उसी प्रकार यह शाह-बुलबुल से। कभी-कभी शाह बुलबुल अपने अंडे इसके घोंसले में रख आती है और यह बड़े शौक से उन्हें सेता है। अंडों से निकल कर बच्चे यथा समय नौ-दो-ग्यारह हो जाते हैं।

कौआ

मरत प्यास पिंजरा पर्यो, सुआ समय के फेर,
आदर दै-दै बोलियत बायस बलि की बेर।

—बिहारी

रेडियो सप्ताह-समारोह के सिलसिले में १९ फरवरी, १९५६ को आकाशवाणी, दिल्ली के प्रांगण में सुगम संगीत का आयोजन था। मुझे भी बहैसियत एक दर्शक के इसमें शामिल होना पड़ा था। होली, भजन, आदि कई हल्के गाने गाये गये। फिर एक गायिका ने मधुर स्वर में एक लोक-गीत गाया—

जा, उड़ि जा रे कागा, उड़ि जा,
ला, प्रीतम की ला रे खबरिया।
तोरी सोने से चोंच मढ़ाऊंगी,
तोरे पायन में डारूंगी छल्ला।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोहि रुचि रुचि खीर खिलाऊंगी,
तोरे पायन में डारूंगी छल्ला।
जा उड़ि जा रे कागा, उड़ि जा,
ला, प्रीतम की ला रे खबरिया।*

मैं मन्त्रमुग्ध-सा होकर इसे सुनता रहा और सोचता रहा, यह मनुष्य भी कितना निर्मम एवं कृतघ्न प्राणी है कि विरहानल में दग्ध प्रोषितपतिका को प्रियतम के आने की पूर्व-सूचना देकर संजीवन प्रदान करने वाले काक पक्षी के लिए वह दो चार बड़ाई के शब्द भी न निकाल सका जब कि धूर्ताधिराज, "मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे, हृदयेतु हलाहलम्" को सार्थक करने वाली कोकिल की प्रशस्ति में वह न जाने कितने शत-सहस्र शब्द-कुसुमों की माला गूंथ गया!

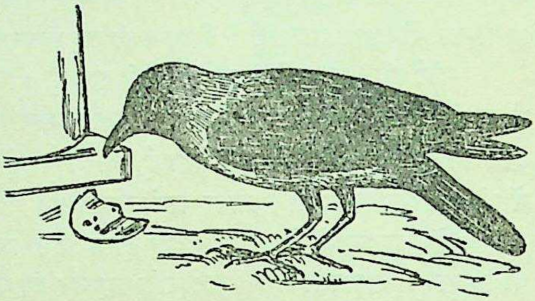

आज ही नहीं, युग-युगों से मानव-न्याय का यह भी एक अद्भुत नमूना है। भक्त-शिरोमणि संत तुलसीदास तक ने तो यहाँ तक कह दिया—

वायस पालिय अति अनुरागा,
होंहि निरामिष कबहुं कि कागा?

कवि ठाकुर ने कहा—

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय।
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन,
दोऊ को इक रंग, काग सब भये अपावन।

और कविवर बिहारीलाल ने फर्माया—

अरे हंस! यहि नगर में जैयो आप बिचारि,
कागन सों जिन प्रीति करि, कोयल दई बिडारि।

प्रियजन का सन्देश वाहक, भविष्यवक्ता काक तो गुणों से रहित, त्याज्य, समझा जाय, परन्तु कपट से दूसरों के घोंसले में अपने अंडे रख कर सिर का भार हटाने वाली कोयल गुणसम्पन्ना, स्तुत्य—कैसी विडम्बना है यह!

ऐसा यह संसार! सत्य का गया जमाना,
रही कपटता और विहँस निज भाव छिपाना।
गुण छलियों का आज मनुज ऊंचे स्वर गाता,
क्योंकि हृदय का छल-प्रपंच वह देख न पाता।

---

*विरह दग्धा एक दूसरी नायिका ने तो यहां तक कह डाला था—
कागा! नैन निकारि लै, पिया पास लै जाय,
पहले दरस दिखाय कै, पीछे लीजो खाय!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रियतम के परदेश रहने पर प्रमदाएं जिसकी चोंच सोने से मढ़ाने की प्रतिज्ञा करती आई हैं उस पक्षी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। वह एक ऐसा पक्षी है जो संसार के हर देश में, शीतोष्ण प्रान्तरों में समानरूप से व्याप्त है तथा जिसे दुनियां के सभी लोग पूरी तरह जानते हैं, पहचानते हैं। वह है वायस, जिसके दो प्रमुख भेद हैं—काग और कौआ।

काग और कौए में रंग का भेद तो है ही, स्वभाव का भी अन्तर है। काग न तो कौए जैसे झुंड बांध कर रहते हैं और न उन की तरह नगर-जीवन से प्रेम ही रखते हैं। इन्हें शहर की अपेक्षा वन अधिक प्रिय है और बस्तियों में ये तभी आते हैं जब कि इन्हें कोई संवाद सुनाना होता है अथवा किसी भावी घटना की पूर्व सूचना देनी होती है।

इनकी कई मुख्य-मुख्य किस्में हैं। एक वह है जो कि पंजाब, सिन्ध, उत्तर प्रदेश, बंबई तथा मध्य प्रदेश में बहुतायत से पाई जाती है, दूसरी गले पर भूरे रंगवाली है जो बलूचिस्तान की ओर प्राप्त है। तिब्बत, भूटान, सिक्किम तथा भारत के कश्मीर आदि पहाड़ी प्रदेशों में पाये जाने वाले कागों में और भी भिन्नता है। आकार एवं रंग, दोनों में ही ये मैदानी कागों से भिन्न हैं। गरज यह कि मनुष्यों की भांति इनके रंग-रूप में भी स्थानान्तर से काफी फर्क आ जाता है। पंखों तथा चोंचों की लम्बाई से ही एक की दूसरे से भिन्नता परिलक्षित होती है, पर मुख्यतः इनकी वह जाति, जो दक्षिण भारत तथा लंका में पाई जाती है, हिमालय में रहनेवाली जाति से, जिसकी छाती के रोयें पूर्णतः श्वेत हैं, अत्यधिक भिन्न है। सिक्किम में ये १३-१४ हजार फुट की ऊंचाई पर भी पाये जाते हैं। अंदमान, लंका और जावा के काग की चोंच औरों की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बी होती है। प्रकृतितः यह दूर की यात्रा पसन्द नहीं करते। पर आवश्यकता आने पर पचासों कोस तक भी चले जाते हैं, हिचकते नहीं। धुन के पक्के हैं और इनकी चेष्टा "काक-चेष्टा" नाम से जगत् प्रसिद्ध है।

कौए कागों से कहीं ज्यादा भूरे होते हैं, आकार में छोटे पर छेड़खानियों में बढ़े-चढ़े। दूसरों के अंडे चुरा कर खा जाना, मेंढक तथा छिपकलियों को चोंचों से मार-मार कर तंग करना, सोने-चांदी के बर्तन अथवा आभूषणों को चोंच से उठा कर ले भागना आदि इनके आये दिन के करिश्मे हैं। बाग और खेतों के कीड़े-मकोड़ों को ये चट कर जाते हैं। खेत में बोये हुए नाज के दानों को भी ये नहीं छोड़ते। वृक्ष के फलों के तो ये शत्रु हैं हीं। पर एक अर्थ में ये कृषकों के लिए उपयोगी भी हैं। खेत में लगे हुए नाज के पौधों तथा दानों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों को भी ये हजम कर जाते हैं और इस प्रकार किसानों को समय-समय पर बड़ी मदद भी पहुंचाते हैं।

कौओं की चोर-प्रकृति जगद्-विख्यात है। दूसरों के घोंसले में जाकर अंडे चुराना इनका रोज़ का काम है। यही वजह है कि यदि भुजंगे इन्हें अपने घोंसले के आस-पास देख लेते हैं तो क्रुद्ध होकर इन पर टूट पड़ते हैं और ये 'रिट्रीट' (पीछे हटने) के सिद्धांत पर अमल करते हुए, वहां से भाग खड़े होते हैं।

पर यदि इनके घोंसले के पास हम बगैर इजाज़त के चले जायें, तो ये आग-बबूला हो उठते हैं, हम पर चंचुओं से आघात तक कर डालते हैं। ऐसी ही मुसीबत में फंसे हुए एक अंग्रेज लेखक की आपबीती सुनिए—

"मैं एक बार एक कौए के घोंसले के पास गया तथा उसके भीतर से उसके एक बच्चे को चुरा लाया। उसके मां-बाप मेरे चारों ओर उड़-उड़ कर, जब तक मैं घोंसले के समीप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा, मुझे गालियां देते रहे । वृक्ष से नीचे उतर कर मैंने समझा कि अब सब ठीक है। पर हाय, जब मैं घर की ओर मुड़ा, खाली सर, खाली पैर. तो पीछे से बड़े अपमानजनक तरीके से मुझ पर आघात हुए। पहले मेरे सर पर एक सख्त चोट, फिर जब मैं भयभीत हो कर घर के बरामदे की ओर भाग चला, बायीं एंड़ी पर उससे भी जोरदार चंचु-प्रहार !

…कई महीने बाद जब मैं विलायत लौटा, उपर्युक्त चंचु-आघात के द्वारा किये गये घाव से तब भी कष्ट पा रहा था।''

काग और कौए दोनों में य प्रवृत्तियां वर्तमान हैं, पर काग में जातीयता का उतना जोर नहीं जितना कि कौओं में। कौओं में पारस्परिक एकता कहीं अधिक है। इसका तमाशा देखना हो तो किसी एक कौए को मार डालिए, फिर देखिये, हजारों कौए वहां एकत्र होकर शोर मचाना शुरू कर देंगे। विपत्ति में पड़े हुए अपने साथी के सहायतार्थ ये कुछ उठा नहीं रखते। साथ ही, यदि इनके बीच का कोई कौआ ऐसा काम कर बैठता है जिससे इनकी जाति के नाम पर धब्बा लगता है तो फौरन इनकी पंचायत बैठ जाती है। सैकड़ों, हजारों कौए इसमें हिस्सा बटाते हैं तथा सर्वसम्मति से उसे समुचित दंड दिया जाता है। ये प्राणदंड तक दे डालते हैं। यदि अपराध गुरुतम हुआ, तो अपनी चोंच की ठोकरों से ये उसे मार डालते हैं।

जातीयता की इस संकीर्ण भावना के कारण ही शायद इनकी और पक्षियों से तनिक भी नहीं पटती। ये जिस किसी भी पक्षी के निवास-स्थल की ओर जाते हैं उसके द्वारा इन्हें तिरस्कार मिलता है और समय-समय पर चोट भी खानी पड़ती है।

काग वनविहारी भी है, ग्रामप्रेमी भी। पर कौए को नगर, गांव, मकानों की छत, आंगन, ये कहीं ज्यादा पसन्द हैं। सुबह हुई नहीं कि इन्होंने शोर मचाना शुरू किया। फिर तो सोना असम्भव-सा हो जाता है, सिवाय चारपाई छोड़ने के और कोई चारा नहीं रहता। तभी तो वासक-शैया पर सोई हुई किसी नवविवाहिता नायिका ने फरियाद की थी——

सोवत निंदिया जगाई हो रामा,
भोरहि भोरे।

कारण भक्तकवि चंडीदास के शब्दों में सुनिए——

प्रभात कालेर काक, कोकिल डाकिल,
देखिया रजनी शेष,
उठिया नागर, तुरित गेल जे,
बांधिते-बांधिते केश।
सइ (सखि) तोरे से बलिये कथा।
से बंधु कालिया, नागल बलिया,
मरमे रहल व्यथा,
रहिया आलिसे, ठेसना बालिशे,
ढुलुढुलु दुटि आंखि।
बसने बसने, बदल हैयाछे,
एखन उठिया देखि।
घरे मोर बादी, सासुड़ी ननदी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिछे करे परिवाद,
इहाते एमन, करिब केमन,
कि हइल परसाद।
चंडीदास कहे, मनेर आहलादे,
सुन हे रसिकजन!
सदा ज्वाला जाय, तबे से ताहार,
मिलये पिरीति धन।

ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग कर ये कौए (और काग) न जाने कौन-सा मन्त्रोच्चार करने लगते हैं।* घर की छतों पर तथा गृह-प्रांगण में ये भांति-भांति के क्रीड़ा-कौतुक भी दिखाते हैं। ऐसे ही एक खिलवाड़ का एक रोचक किस्सा मेरे एक मित्र ने मुझे सुनाया था। वह इस प्रकार है—

एक मौलाना अपने आंगन में बैठे हुए किसी पुस्तक का अवलोकन कर रहे थे। इतने में उनकी दृष्टि छत से लगी हुई एक काठ की सीढ़ी पर पड़ी। उन्होंने देखा कि एक कौआ एक के बाद दूसरे डंडे पर चढ़ता हुआ ऊपर बढ़ रहा है। अन्त में वह इसी प्रकार चढ़ता हुआ छत पर जा पहुंचा। बस, मौलाना ने फौरन सीढ़ी हटा ली और बोले, हज़रत! देखें तो कि अब आप कैसे नीचे उतरते हैं?

इस तरह के एक नहीं, दर्जनों खेल ये खेला करते हैं। अंग्रेजी के एक कवि का संकेत इसी की ओर है—

That for ways that are dark,
And for tricks that are vain,
The house-crow is highly peculiar,
Which the same I am free to maintain.

—घरेलू कौए का विचित्र ढंग होता है उसके विचित्र कौतुक होते हैं, और उसकी अर्थहीन क्रीड़ाएं होती हैं। कम-से-कम मेरा तो यही विचार है।

मानव-जीवन के साथ इनका कुछ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है कि कभी-कभी इनकी अनुपस्थिति हमें खटकने लगती है। घर की छतों, दीवारों एवं प्रांगण में यदि वे नजर न आयें तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे कुछ खो गया हो। मानव और कौए[1] का यह निकट सम्बन्ध इस देश में आज का नहीं, युगों का है। तभी तो प्राचीन साहित्य में इसकी चर्चा एक दो स्थानों पर नहीं, स्थान-स्थान पर की गई है। संस्कृत से ले कर

---

*कालिदास का विचार इसके सम्बन्ध में कुछ और है। कहते हैं, तिमिरहन्ता के द्वारा तिमिरवर्ण होने के कारण कहीं वे भी मार न दिये जायें, इस भय से ये काग पुकार-पुकार कर पौ फटते ही कहने लगते हैं, हम काग हैं, हम काग हैं, तिमिर नहीं—

तिमिरादिस्तमो हन्ति शंका शंकित मानसाः,
वयं काकाः वयं काकाः इति जल्पन्ति वायसा।

१. भारतीय साहित्य में काग और कौआ पर्यायवाची शब्द की तरह व्यवहृत होते रहे हैं, अतः इनमें भिन्नता मानना कठिन ही नहीं, असंभव-सा है। दरअसल इन दोनों के रहन-सहन, प्रवृत्ति आदि में अधिक अन्तर नहीं। एक ही जाति की ये दो उपजातियां हैं। प्रस्तुत लेख में भी इसी परिपाटी का आश्रय लिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी अर्वाचीन भाषाओं में इनका ज़िक्र है, यहां तक कि बुल्लेशाह जैसे पहुंचे हुए सूफ़ी फकीर तक इसे न भुला पाये, बोले—

घूंघट खोल सज्जणा ! हुण शरमां के-हियां रक्खियां वे ?

*　　*　　*　　*

मैं बन्दी दा जेतूं साईं, कदीं तां आवीं फेरा पाईं,
मिहर करीं ते मुख दिखलाईं, मैं काग उड़ांदीं थक्कियां वे ।*
हुण शरमां..............

और राजस्थान की एक प्रोषितपतिका नायिका ने आरज़ू के साथ कहा—

उडज्या रे, काग, गिगन का वासी
खबर तो ल्याव म्हारे राजन की।

काग उड़ा-उड़ा कर प्रियतम के आने का पूर्वाभास पाने की चेष्टा इस देश में शताब्दियों से रही है, अब भी है। यही नहीं, काग के द्वारा भावी विविध शुभाशुभ घटनाओं के जानने की प्रणाली भी इस देश में अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। यथा, कौए यदि आहार बांट-बांट कर खायें तो यह बड़ा शुभ माना जाता है और इसी लिए भक्तकवि चंडीदास की विरहिणी नायिका ने आनन्दोल्लास के साथ कहा था—

आजु परो भाते काके कलोकली
आहारो बांटिया खाय ।

ग्राम्य-कवि 'डाक' के कथनानुसार काक के कई भेद हैं और इनमें ब्राह्मणवर्ण के काक ही शकुन-निर्देश के लिए सर्वश्रेष्ठ हैं ! 'डाक' कहते हैं—

तनु अतिकारी बड़का लोल, पैक काक अति ऊंचे बोल,
ताहि काक के बाभन जान, कहथि 'डाक' जे आन नहि मान।
पिंगल आंखि नील रंग ठोर, सब देह कारी क्षत्री सोर,
पांडु नील रंग चोंचो देह, कहथि 'डाक' जे वैश्य कहिलेह ।
भसमक रंग औ दुबर शरीर, कर-कर बाजय रह नहि थीर,
ताहि 'डाक' कह शूद्र पुकारि, एहि सं आन थिक अन्त्यज धारि ।

—शरीर अत्यन्त काला, चोंच लम्बी, कद बड़ा और आवाज तेज—ये लक्षण जिस काक में दीख पड़ें, वह ब्राह्मण है। पिंगल नेत्र, नीले होंठ और समस्त शरीर काला—इन लक्षणों वाला काक क्षत्रिय है। जिस काक के शरीर और चोंच पांडु और नील वर्ण के हों, वह वैश्य है। राख का रंग, क्षीण शरीर, कर्कश स्वर, प्रकृति का चंचल—इन लक्षणों वाला काक शूद्र है, और उपर्युक्त चार प्रकारों के अतिरिक्त अन्य सभी काक अन्त्यज हैं।

पांचों में मुख बाभन जान, असगुन सगुन तकरे मान,
जो मांस बोकरय आगां आवि, कहथि 'डाक' निश्चय धन पावि ।
आगां लावय माटिक ढेप, भूमि लाभ हो ताही खेप।

***प्यारे, तुम घूंघट खोलो, अब शरमाने में क्या रक्खा है ? तू मालिक है, मैं तेरी चाकर हूं । कृपा कर कभी तो आकर मुंह दिखलाना ! मैं तो काग उड़ाते-उड़ाते थक गई !**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : १५
पालतू तोते

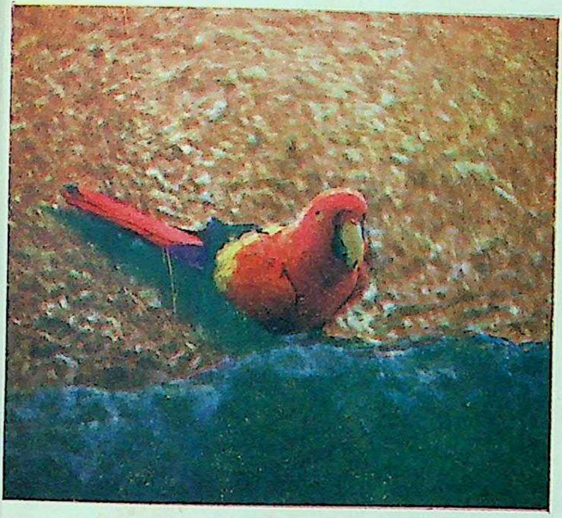

चित्र संख्या : १६
तोता

चित्र संख्या : १७
दर्जिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

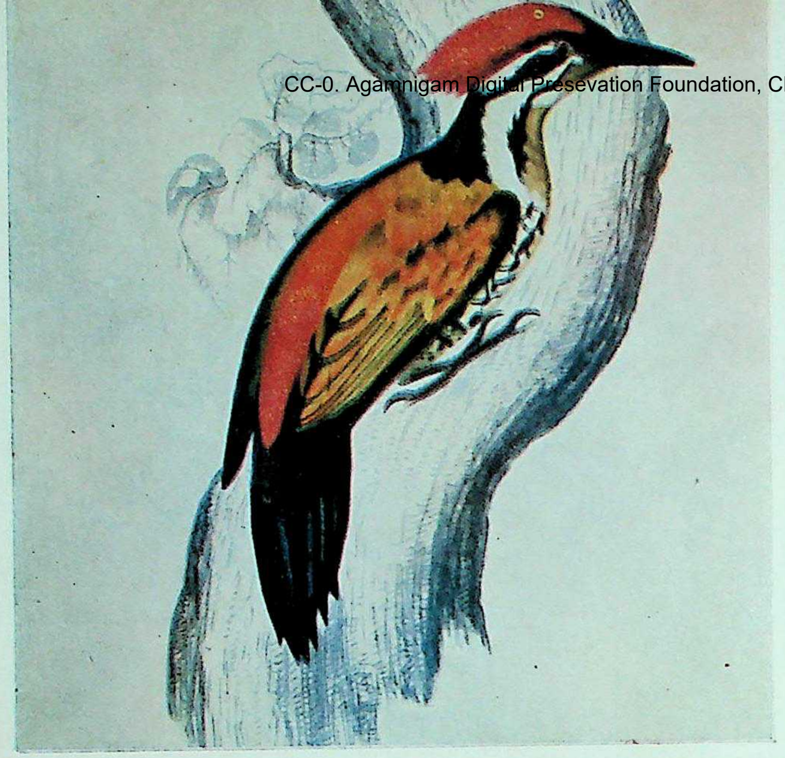

चित्र संख्या : १८
कठफोड़वा

चित्र संख्या : १९
मछमरनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रतन आनि जे राखय अग्र, कहथि 'डाक' ज राज हो सग्र।
काक द्वार में आवय जाय, कहथि 'डाक' जे पाहुन लाय।

—पांच प्रकार के काकों में शकुन-निर्देश करने के लिए ब्राह्मण वर्ण काक की गति-विधि विचारणीय है। सामने आकर यदि काक मांस उगल दे, तो निश्चय ही धन की प्राप्ति हो। यदि काक सामने आकर मिट्टी का ढेला रख दे, तो भूमि, और रत्न रख दे तो राज्य की प्राप्ति हो। जिसके द्वार में काक आया-जाया करे, तो समझ लो कि बाहर से कोई अतिथि आ रहा है।

तात्पर्य यह कि काक या कौआ मानव-समाज का एक अभिन्न अंग रहा है। कोयल, पपीहा, हारिल आदि पक्षियों के गाने की हम चाहे जितनी भी प्रशंसा करें, उनकी प्रशस्ति में पृष्ठ के पृष्ठ लिख डालें,पर वे हम से दूर ही भागते रहे हैं, साथ काग-कौओं ने ही दिया है, इन्होंने नहीं। किसी कवि ने इसे 'जन-जीवन का साथी' कहा है—

जन-जीवन के साथी, कौए!
नहीं कल्पना के, स्वप्नों के,
लोकों में रहनेवाले,
गांव-गांव के, घर-घर के तुम,
पहचाने, चिर-वासी कौए।
जन-जीवन के साथी, कौए!
शुक, पिक, चातक, हारिल के सम,
दूर नहीं हमसे रहते तुम,
करते कठिन, कठोर परिश्रम,
मधुपायी, न बिलासी कौए,
जन-जीवन के साथी, कौए!

"मधुपायी न बिलासी, कौए!"—कौए का यह गुण आज दिन हम जिस समाजवादी समाज का निर्माण करने जा रहे हैं, उसके लिए सर्वथा उपयुक्त है। बिलासी लोगों के दिन चले गये, राजा-महाराजा, अमीर-उमराव, इनके अब दिन नहीं रहे। दिन उनके हैं जो श्रम से अपनी रोटी कमाते हैं। अब हमें अपने शरीर से पसीना बहाना ही पड़ेगा। स्वयं कोकिल-कंठ, चातक-स्वर, कवि-प्रवर सुमित्रानन्दन पंत तक इसे न भुला पाये और प्रेमभरे शब्दों में कविवर ने पूछा—

कहां मढ़ा लाये सोने से अपनी चोंचें,
प्यारे कौए! न्यारे कौए!

साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि यह संसार 'उदासी' (त्यागी) लोगों के लिये भी नहीं है। संसार धर्म पालन करने वालों के लिए है। अफसोस कि हमारे उर्दू के शायरों ने कौए का महत्व न समझा तथा वे शराब, साकी और बुलबुल की गुण-गाथा में ही अपनी कलम तोड़ते रहे, हमारे जीवन-मरण का साथी कौआ उनसे दो शब्द भी न पा सका। काश! अकबर इलाहाबादी ने यह लिखने के बजाय—

हुजूमे-बुलबुल हुआ चमन में,
किया जो गुल ने जमाल पैदा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कमी नहीं कद्रदां की 'अकबर',
करे तो कोई कमाल पैदा!

यह लिखा होता कि--

हुजूमे-कौआ हुआ चमन में,
किया जो भुट्टे ने बाल पैदा,
कमी नहीं कद्रदां की 'अकबर',
करे तो कोई कमाल पैदा।

तो उनका यह सुन्दर कलाम, हमारे आधुनिक समाज की रूप-रेखा में अधिक उपयुक्त बैठता!

मानव समाज से इस पक्षी को कितना प्रेम है, इसका अन्दाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि जिस ग्राम या नगर में मनुष्यों की संख्या ज्यादा है, घनी है, वहां उसी अनुपात से उनकी संख्या भी अधिक है। दृष्टांत के लिए कलकत्ता शहर को ही लीजिए। डेवर नामक एक अंग्रेज पक्षी-प्रेमी लेखक का कहना है कि इस नगर में दस लाख से अधिक कौए निवास करते हैं। कई वर्ष हुए कलकत्ते में बड़े जोरों का तूफान आया। झंझावात के शान्त होने पर देखा गया कि कलकत्ते के मैदान में कई लाख कौए मरे पड़े हैं। यह श्री डेवर के उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

भारतवर्ष में शायद दो ही ऐसे नगर हैं जहां किसी अज्ञात कारण से कौए नहीं पाये जाते, उन्होंने इन स्थानों का बहिष्कार कर रखा है। एक तो उत्तर प्रदेश में चित्रकूट है और दूसरा दक्षिण में कोडाइकनाल।

चित्रकूट के सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि एक बार किसी काग या कौए ने वनवास के दिनों में, सीता के अंग पर चोंच मारी और वह उनके अभिशाप का भागी बना, जिसके परिणामस्वरूप उसे ही नहीं, उसकी सारी जाति को मन्दाकिनी के तट पर स्थित इस पुनीत स्थान से सदा के लिए निर्वासित होना पड़ा। पर कोडाईकनाल में उनके पांव क्यों न जम पाये, इसके सम्बन्ध में न तो इतिहास ही कुछ बताता है, न किंवदन्तियां ही।

और पक्षियों की अपेक्षा कौओं में शायद पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक है, क्योंकि इस समाज में पुरुषों से ज्यादा स्त्रियों की इज्जत है, हर बात में उनकी प्रधानता है। यही नहीं, मेम साहब (मादा) जब घर के घोंसले के भीतर बैठी रहती हैं तो साहब (नर) बाहर बैठ कर पहरा देते हैं। ग्रीष्मकाल के आते ही ये घर बनाने में लग जाते हैं तथा इनके भवन-निर्माण—नीड़ बनाने में, घास-फूस ही नहीं, मनुष्य के घर से चुराई हुई धातु की अनेक चीज़ें, टिन के टुकड़े, सोडावाटर की बोतलों के तार आदि भी प्रयोग में लाये जाते हैं। बम्बई में एक बार किसी काक-दम्पति ने अपने गृह-निर्माण में चश्मे के सोने के कई फ्रेमों का भी इस्तेमाल किया था जिनकी कीमत प्रायः चार सौ रुपये थी। इसी तरह मद्रास में बाजार से चराये हुए टिन के टुकड़ों से एक दूसरे काग-दम्पति ने अपना भवन बनाया था। पाठकों को मेरा यह सुझाव है कि यदि कभी उनकी कोई धातु की बनी चीज गुम हो जाय तो इसके पहले कि वे इसकी खबर पुलिस को दें, आसपास इनके घोंसलों में उसकी तलाश अवश्य कर लें।

घोंसला बनाकर घर बसाने के बाद ये दूसरा कदम आगे बढ़ाते हैं, अर्थात् मादा अंडे देती है। इनकी संख्या तीन से सात तक होती है तथा देखने में ये रंग-बिरंगे होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही समय है जब कि कोयल को उनकी आंख में धूल झोंक कर अपने कार्य-साधन का मौका मिलता है। अंडे वह भी देती है पर वसन्त का समय, दिन-रात गाने का शौक, आम्रमंजरी मदिरा का अहोरात्रि पान, उसे फुरसत कहां कि वह घर में बैठे और अंडे सेये या बच्चों का पालन-पोषण करे ? अतः वह अपने सर की बला दूसरे के सर डाल आती है तथा नाचती-गाती स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरती रहती है। अपने अंडों को चुपके से, कौए के घोंसले में रख आती है। इस काम को वह बड़ी चतुराई से करती है । पहले नर घोंसले के पास जाता है और कौए का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। कौआ उसकी ओर झपटता है । वह भाग खड़ा होता है । कौआ उसका पीछा करता करता जब दूर निकल जाता है तो मादा कोयल, जो पास में ही कहीं चोंच में अंडा लिये बैठी होती है, कौए के घोंसले में आहिस्ता से अंडा डाल आती है और कभी-कभी कौए के अंडे को दूर फेंक आती है। इस तरह उद्देश्य को साध कर एक खास आवाज़ देती है, जिससे नर समझ जाता है कि काम पूरा हो गया है और वह तेज़ी से उड़ता हुआ कौए की आंखों से ओझल हो जाता है।[1] कैसी धूर्तता है यह ! फिर भी हमारे कवियों ने "पिकी प्रवीण" की प्रशंसा में न जाने कितने शब्द कह डाले हैं। वे उसकी मीठी वाणी से छले गये हैं। इस संसार में कौन है जो इस मायाविनी की मधुर बोली पर मुग्ध न हुआ, इसकी कूक पर कुर्बान न हुआ ?

खैर, तो कौए को कोयल की इस करतूत का पता आज तक न चला । वह निश्शंक भाव से अंडे सेता रहा, बच्चे हुए तो कोकिलवंशीय शिशु को भी अपना ही शिशु समझता रहा, लालन-पालन में कतई भेद भाव न रक्खा। यही नहीं, ऐटकिन नामक एक अंग्रेज ने लिखा है कि उसने कौए के घोंसले में शोर मचाते हुए दो बच्चों को देखा जिनमें एक तो उसका अपना था, दूसरा कोयल का, पर उसका व्यवहार दोनों के प्रति केवल एक-सा ही नहीं था बल्कि कोकिल उन दोनों, नर और मादा, का विशेष रूप से प्रेमपात्र बना हुआ था।

कौए की कद्र हम भारतवासी नहीं जानते, सिवाय उनके जो अपने प्रवासी प्रिय-जनों की कुशल-वार्ता पाने के इच्छुक हैं और स्वार्थवश इसकी खुशामदें करते हैं । पर अन्य देशवासी इसके महत्व को पूरी तरह पहचानते हैं । फसल को नष्ट करने वाले कीड़ों को खा-खा कर ये फसल की रक्षा करते हैं, इस उपयोगिता को वे भली भांति समझते हैं । यही कारण है कि जहां हम इन्हें रोड़े मार-मार कर भगाते फिरते हैं वहां जंजीबार में कुछ वर्ष हुए बाहर से कौए मंगवाये गये। मलय प्रायद्वीप में भी लंका से हज़ारों कौए जहाज़ भर कर मंगवाये गये थे।

पर कौए दूसरों से सहायता की याचना भी नहीं करते। अपने पांव पर खड़े होते हैं । अपनी रक्षा आप करते हैं। पक्षी संरक्षण कानून के द्वारा बहुतेरे पक्षियों को सरकारी संरक्षण प्राप्त है, पर इस कानून के फायदे से भी ये वंचित रक्खे गये हैं । यही नहीं, कई बार हमारे हाथों इन्हें घोर मुसीबतों का भी सामना करना पड़ा है जिसका एक दृष्टांत नीचे पढ़ें ।

बात पुरानी है, सन् १८१५ की। नेपाल तथा अंग्रेज़ों के बीच लड़ाई छिड़ी

---

१. कौए की अपेक्षा कोयल की रफ्तार कहीं ज्यादा होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई थी । अंग्रेज़ों की एक पलटन कर्नल ओलाहरन की सेनाध्यक्षता में नेपाल जा रही थी । रास्ते में दरभंगे (विहार राज्य का एक शहर) में उसका पड़ाव पड़ा । दरभंगा के तत्कालीन ज़मींदार—दरभंगा नरेश—ने कर्नल ओलाहरन की खूब आवभगत की, उनके लिए उपहार प्रस्तुत किये । पर कर्नल उन व्यक्तियों में थे जो न तो स्वयं कोई उपहार ग्रहण करते थे, न पलटन के और लोगों को ही ग्रहण करने देते थे । सधन्यवाद उपहारों को लौटाते हुए उन्होंने कहा, "महाराज ! मैंने सुना है कि आपके यहां का कौआ बहुत बढ़िया होता है, यदि आप उसमें से कुछ दे सकें तो मैं सानन्द स्वीकार करूंगा, उपकृत होऊंगा।" महाराज बड़े चकित हुए और बोले "हां, कौआ तो यहां बहुत मिलता है पर यह तो सारे हिन्दुस्तान में पाया जाता है।"

"नहीं महाराज !" कर्नल ने कहा, "मैं तो कम्पनी के सारे इलाकों में गया हूं । कहीं भी यह देखने को न मिला । आप विश्वास करें, मैंने इसकी पूरी छानबीन की है ।"

महाराज ने अपने दरबारियों की ओर देख कर कहा–"बड़ा ताज्जुब है।" वे बोले–"सरकार, ताज्जुब तो अवश्य है पर हुज़ूर का इकबाल कि यहां सब-कुछ पलता है । खैर, यदि कर्नल साहब को इसका शौक है तो हमें कौआ इकट्ठा कर इन्हें अवश्य देना चाहिए।"

कर्नल ने कहा, "यदि आप मुझे थोड़ा भी उपलब्ध करा देंगे तो मैं और मेरे साथी आपके अत्यन्त कृतज्ञ होंगे । नेपाल की कड़ी सर्दी में हमें लम्बी लड़ाई लड़नी है। यह निस्संदेह उसमें हमारे लिए सहायक होगा। हम सभी को कौआ अत्यन्त रुचिकर है।"

महाराज ने कहा—"अवश्य, आप जितना भी चाहेंगे, मैं आपकी सेवा में हाज़िर करूंगा !"

कर्नल बोले—"यदि इसे लूट न माना जाय तो मैं दो तीन थैलियां भर कर ले जाना चाहूंगा ।"

महाराज ने कहा—"मुतलक नहीं, मैं अभी वापिस जाकर इन्हें संग्रहीत करने की आज्ञा देता हूं ।"

महाराज की आज्ञा से दिन भर बन्दूक से कौओं का शिकार होता रहा । शाम को जब कर्नल और उनके साथी खाने पर बैठे हुए थे, चपरासी ने आकर कहा—"महाराज की भेंट ले कर उनके प्रतिनिधि पधारे हैं।"

कर्नल ने कहा, "उन्हें शीघ्र भीतर लाओ ।"

तीन भरे हुए बोरों के साथ महाराज के प्रतिनिधि भीतर आये और महाराज के भेजे हुए उपहार को कर्नल साहब के पेशे-नज़र किया । कर्नल की खुशी का ठिकाना न रहा । उनकी आज्ञा पाकर खानसामे ने बोरे के भीतर हाथ डाला तथा एक कौए को बाहर निकाला । कर्नल ने तब महसूस किया कि उन्होंने कितनी बड़ी भूल की थी । उनके कहने का मतलब "कहवा" (काफ़ी) से था, पर भाषा की अनभिज्ञता के कारण "कहवा" न कहकर "कौआ" कह डाला था जिसके कारण दरभंगे के बेचारे सैकड़ों कौओं को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा । पर इन सारी मुसीबतों के बावजूद कौओं का वंश घटने की बजाय उत्तरोत्तर वृद्धि ही पाता रहा है। ये किसी की खुशामद नहीं करते, लोग ही समय आने पर इनकी खुशामद करते हैं, तरह-तरह की प्रतिज्ञाएं करते हैं, कहते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैठी सगुन मनावति माता,
कब ऐहैं मेरे लाल कुशल घर,
कहहु काग ! फुरि बाता।
* * *
दूध भात की दोनी दैहौं,
सोने चोंच मढ़ैहों। —आदि

श्राद्ध के अवसर पर भी इनकी आवश्यकता अनिवार्य है। कहते हैं कि इन्हें भोजन देने से मृतात्मा को संतोष होता है तथा वैतरणी पार करने में ये उसके सहायक होते हैं। पर मनुष्य को तो देखिए, आवभगत के साथ इन्हें बुलाते हैं, खिलाते हैं पर ज्योंही यज्ञ समाप्त होता है इन्हें मार-मार कर भगा देते हैं। यही नहीं, साफ शब्दों में कहते भी हैं कि—

जब लग काग, सराध पख,
तब लगि तव सनमान !

यह उनकी उदारता है कि इस पर भी वे मनुष्य जाति के प्रति बदले की भावना नहीं रखते, पुनः बुलाने पर दौड़े आते हैं। यही नहीं, शिकारियों तक को अपनी बोली से शिकार की स्थिति का सही पता बता देते हैं।

काकभसुंडि जैसे ज्ञानी को जन्म देने का श्रेय काक जाति को ही प्राप्त है। और फिर कृष्ण-विरह में ब्रजबालाओं के साथ-साथ इन्होंने भी तो अन्न ग्रहण करना त्याग दिया था—

वायस बलिहि न खात। (सूरदास)

तात्पर्य यह कि इनके बीच केवल चोर डाकू ही नहीं, ज्ञानी और भक्त भी होते आये हैं।

लेख में यत्र-तत्र सगुन मनाने का जिक्र आया है। इसकी कई प्रक्रियाएं हैं, पर दो मुख्य हैं :—

१. काग की बोली सुनते ही जमीन पर दृष्टि डालना तथा सर्वप्रथम दृष्टि-पथ पर आने वाली लकड़ी अथवा सूखी घास के टुकड़े को अंगुलियों से मापना और इसके द्वारा शुभाशुभ का, भावी घटना का ज्ञान प्राप्त करना। संख्या के सम अथवा विषम होने पर 'हाँ' और 'न', शुभ या अशुभ होना निर्भर करता है।
२. काक-वाणी सुनते ही भू-तल पर चिन्हांकित करना तथा चिन्हों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कबूतर

कविवर बिहारीलाल ने कबूतर के सम्बन्ध में कहा है—

पट् पाखैं, भखु कांकरै, सपर परेई संग,
सुखी परेवा पुहुमि में, तू ही एक विहंग।

और इसमें सन्देह नहीं कि कबूतर एक सुखी दाम्पत्य-जीवन के प्रतीक हैं।

कपोत का दाम्पत्य-प्रेम जगत् प्रसिद्ध तो है ही, मानव-जाति के लिए आदर्श भी है। मानव पति-पत्नियों में, यदि कपोत का-सा पारस्परिक प्रेम होता तो भारतीय संसद में तलाक का कानून न बनता।

ऐसे तो बहुतेरे पक्षी हैं जिनके नर और मादा साथ-साथ रहा करते हैं, पर इनमें कबूतर ही एक ऐसा विहंग है जिसके नर-मादा आठों पहर एक दूसरे से विलग नहीं होते (चित्र संख्या: ५), बल्कि लोक-लाज की कतई परवाह न कर एक दूसरे के प्रति विलक्षण प्रणय-भाव प्रदर्शित करते रहते हैं। घर की छतों अथवा गृह-प्रांगण में आमतौर पर इनके ये भाव प्रदर्शन—नर का मादा के आसपास नाचना, गाना, घुटकना, थिरकना एवं चोंच से चोंच मिला कर प्यार दिखाना—देखेंगें। यह इनकी ऐसी विशेषता है जो शायद ही और किसी पक्षी में इस परिमाण में पायी जाती हो। संस्कृत के किसी रसिक कवि ने शायद कपोत को कभी ऐसी ही किसी मुद्रा में देख कर कहा था—

कल क्वणित गर्भेण कंठेनाघूर्णितेक्षणः।
पारावतः परावृत्य रिरंसुश्चुम्बति प्रियाम्।

—यह कबूतर मधुरवाणी बोल कर, गर्दन घुमा कर, मदभरी आंखों से प्यार से देखता हुआ अपनी प्रियतमा के साथ रमण करने की इच्छा से उसे चूम रहा है।

बहुधा अपने गले की थैली फुला कर "गुटरगूं" कह-कह कर यह प्रियतमा के चारों ओर नृत्य करता है। प्रकृतितः कपोत कामी तथा प्रेमी होता है। इसका अतिशय पारिवारिक प्रेम कभी-कभी इसके अपार दुःख का कारण भी बन जाता है। तभी तो राजा यदु से एक अवधूत ने कहा था—

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्त्तव्यः क्वापि केनचित्,
कुर्वन्विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः।

और फिर, किस तरह कपोत का एक जोड़ा बहेलिए द्वारा शिशुओं के जालबद्ध होने पर सन्तान-स्नेह के अत्याधिक्य से अंधा हो कर स्वयं उस में जा फंसा था। (श्रीमद्भागवत, ११।७। में यह कथा वर्णित है)।

पर दूसरी ओर, यजुर्वेद में (मन्त्र २४-२३) लिखा है—"मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्"—मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता, स्नेह और परस्पर वरण के लिए कपोत नामक पक्षियों को देखें।

पारस्परिक प्रेम तो उनमें है ही, मानव-समाज के साथ भी उनका घनिष्ठ प्रेम है। ये उन पक्षियों में हैं जो वन की अपेक्षा जनपदों-मानवगृहों को अधिक पसन्द करते हैं तथा बड़ी-बड़ी इमारतों से लेकर छोटे-छोटे घरों, मस्जिद, मन्दिर आदि देवस्थलों में झुंड के झुंड निवास करते हैं। शहरों में शायद ही कोई ऐसी इमारत मिले जिसमें कबूतरों के दो चार

State Museum
LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवार न रहते हों। जैनियों में पक्षियों को खिलाने की परिपाटी है। कबूतर ही एक ऐसा पक्षी है जो बम्बई आदि नगरों की सड़कों पर झुंड बांध कर उनके दिए हुए दानों को चुगता तथा नाच-गा कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करता है।

कबूतर इस देश के सभी प्रान्तों में, सभी शहरों और गांवों में, पाये जाते हैं तथा वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शीत—सभी ऋतुओं में ये एक जैसे ही रहते हैं। समतल देश में तो ये बहुतायत से पाये ही जाते हैं, पहाड़ों तक में इनका आवास है। हिमाच्छादित अमरनाथ की गुफा में मैंने आज से २४ वर्ष पहले कबूतर का एक जोड़ा देखा था जो नीलाभ्रयुक्त भूरे रंग का था। किंवदन्ती है कि ये युग-युगों से वहां निवास करते आये हैं। कहते हैं, किसी समय महादेव ने पार्वती को कुछ कथाएं सुनाई जिन्हें इन दो कबूतरों—कपोत-दम्पति—ने सुन लीं और वे अमर हो गये। तब से आज तक ये इस गुफा में निवास कर रहे हैं। यह कहानी कपोल-कल्पित ही क्यों न हो, पर इसमें शक नहीं कि सदियों से अमरनाथ की यात्रा करने वाले यात्रियों ने इस गुफा में दो कबूतर देखे हैं और उनकी चर्चा की है। मार्के की बात यह है कि किसी ने भी वहां दो से अधिक कबूतर नहीं देखे। बर्फ से ढके हुए इस सुनसान स्थान में, जिसके इर्द-गिर्द मीलों तक कोई आबादी नहीं है, ये कबूतर न जाने किस आकर्षण से निवास करते हैं।

वैसे तो कबूतर की अनेक उपजातियां हैं, और ये अनेक रूप और रंग के होते हैं पर देश भर में बहुतायत से पाया जाने वाला कबूतर वह है जिसके शरीर का रंग स्लेटी गर्दन पर चमकीले हरे पंखों की एक कंठी और उसके नीचे, चतुर्दिक एक चमकीली बैंगनी पट्टी होती है। पीठ तथा डैनों का रंग अत्यधिक गहरा, दुम का शीर्ष काला और उसके दोनों ओर सफेद धारी होती है। आंख की काली पुतली तथा पैरों का गहरा गुलाबीपन इसकी शोभा-वृद्धि करते हैं। नर और मादा में कोई अन्तर नहीं होता है। अन्य अनेक पक्षियों की भांति इसके पैर की चार अंगुलियों में तीन आगे की ओर होती हैं और एक पीछे की ओर। सिर छोटा, शरीर भारी होता है। चोंच नर्म होती है पर डैने बड़े मजबूत होते हैं। ये जब कभी लड़ते हैं तो पावों या पखों के सहारे, चोंचों के नहीं।

दाना चुगने वाले अन्य पक्षियों की भांति इसके शरीर के भीतर भी एक थैली होती है जिसमें धड़ाधड़ नाज के दाने पहुंचा दिए जाते हैं। कबूतर की इस थैली में से एक किस्म का तरल पदार्थ निकलता है जिसे आमतौर पर दूध कहते हैं और जिसे, जब तक कि उसके बच्चे दाना खाने लायक नहीं हो जाते हैं, वह उन्हें पिलाता है। बच्चे बड़े आनन्द से उसकी चोंच में अपनी चोंच डाल देते हैं और थैली के इस तरल पदार्थ से भूख मिटाते हैं।

कबूतर घोंसला नहीं बनाता। मकानों के कार्निस, जो इसे सबसे अधिक प्रिय हैं, अथवा छज्जे आदि पर ही यह रात गुज़ार लेता है। वहीं अंडे देता है और बच्चों का पालन-पोषण भी करता है। यह साल भर अंडे देता है। भोर होते ही यह घुटकना शुरू कर देता है। इस अर्थ में वेद तक ने इसे मानव समाज के लिए आदर्श स्वरूप माना है। यजुर्वेद के २४वें अध्याय के २५वें मन्त्र में कहा है—"अह्ने पारावतानालभते", अर्थात् दिवसारम्भ के लिए कबूतरों को देख; वे भोर में ही उठते हैं, बोलना शुरू करते हैं, वैसे ही मनुष्य भी शीघ्र (ब्राह्ममुहूर्त में) उठे और मंत्रपाठ करे। उन लोगों को जो प्रातः ५ बजे शैया त्यागते और नींद टूटते ही 'बेड-टी'—चाय की आवश्यकता अनुभव करते हैं, शायद कबूतर की यह आदत पसन्द न आए और न वेद की यह उक्ति ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारणतः उपर्युक्त जाति के कबूतर ही सर्वत्र पाए जाते हैं, पर इसके अलावा भी इसकी अनेक किस्में हैं जो पालतू हैं, स्वेच्छाचारी नहीं। इनके रंग भी नाना प्रकार के हैं—काला, हरा, गुलाबी, श्वेत आदि। मुख्य किस्में ये हैं—

१. गिरहबाज
२. लोटन
३. मुक्खी
४. शीराज़ी
५. बग़दादी
६. लक्का

गिरहबाज वे हैं जो उड़ाने पर सुदूर आकाश में उड़ जाते हैं और उड़ते हुए बारम्बार गिरह मारते जाते हैं, फिर घर की ओर लौटते हैं। इसमें इन्हें काफी वक्त लगता है।

बिहारी के इस दोहे में इसी जाति के कबूतर की ओर संकेत है—

ऊंची चितै सराहियत
गिरह कबूतर लेत।
दृग पुलकित, पुलकित बदन,
तनु पुलकित कहि देत।

लोटन हाथों से जमीन पर छोड़ देने से ही लोटने लगते हैं और देर तक लोटते रहते हैं जब तक कि उन्हें हाथ से कोई उठा न ले (चित्र संख्या : ३२)। ये दो प्रकार के हैं—

(१) कागजी, जो सिर पर केवल ठोकर मार देने से ही लोटने लगते हैं।

(२) वे जो कि हाथ से झकझोर कर, हिला कर, जमीन पर रखने से लोटते हैं।

मुक्खी का सिर काला, शरीर सफेद होता है। ये सिर ऊंचा करके चलते हैं तथा देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हैं।

शिराजी और बगदादी, जैसा कि इनके नाम से जाहिर है, शिराज और बगदाद के कबूतर हैं, और देखने में बड़े खूबसूरत होते हैं। आकार में काफी बड़े और लक्षणों से ही लगता है कि अपनी जाति—कपोतवंश के ये सरदार विशिष्ट पक्षी हैं। ये काले, गुलाबी, बैंगनी आदि कई रंगों के होते हैं।

कई लोग लक्का (चित्र संख्या : ३३) के मांस को लकवे के रोगी के लिए अतिशय लाभदायक मानते हैं। लकवे का कोई शिकार हुआ नहीं कि गांव भर के या शहर के लक्का कबूतरों पर आफत आ जाती है। यह अधिकांशतः श्वेत रंग का पाया जाता है जो कि इसका अपना खास रंग है, पर दोगले में रंग-परिवर्तन हो जाता है। इसकी पूंछ उठी हुई, मोर की खड़ी पूंछ से मिलती-जुलती-सी, जापानी रमणी के हाथ के पंखे-जैसी देखने में अत्यन्त सुहावनी होती है।

एक और प्रकार का कबूतर होता है जिसके मुंह में हवा देते ही उसका गला बिल्कुल बैलून जैसा फूल उठता है, पर यह मुश्किल से पाया जाता है।

कबूतर की ये किस्में—गिरहबाज, लोटन, मुक्खी, शीराजी, बगदादी और लक्का—आम तौर पर, हर जगह प्राप्त नहीं हैं, केवल कबूतर के शौकीनों के पास ही मिलेंगी। इस देश में कबूतर पालने का रिवाज मुसलमानों के शासनकाल में अत्यधिक बढ़ा। मुगल बादशाहों में कई ऐसे हुए जिन्हें कबूतर पालने का बड़ा शौक था। अकबर ने तो कपोत-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

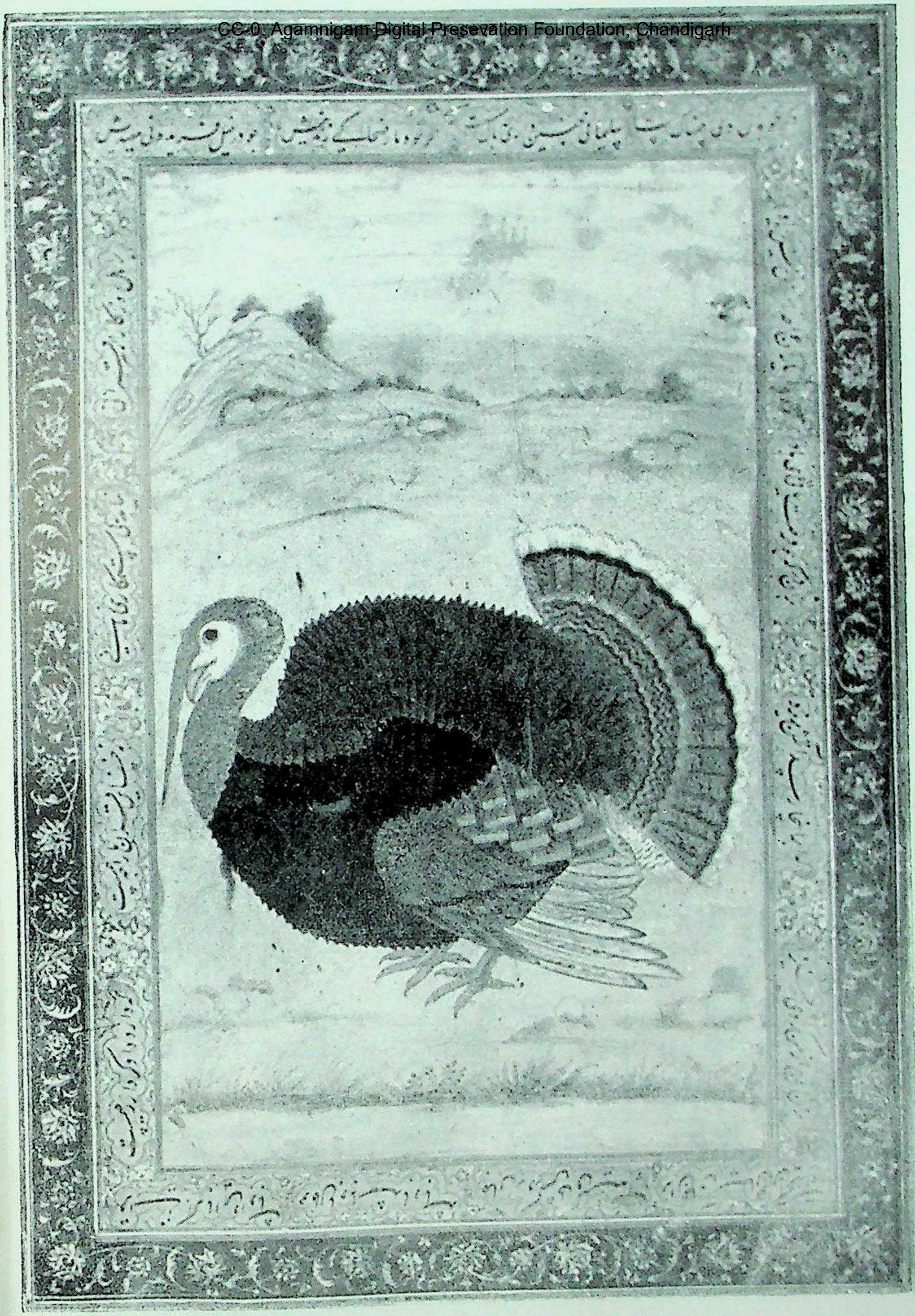

जहांगीर के युग में चित्रित एक पक्षी

चित्र संख्या : २०

(सिंघी संग्रहालय कलकत्ता में सुरक्षित)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बाज द्वारा शिकार का चित्र

(भारतीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित)

चित्र संख्या : २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पालन पर पूरा एक ग्रंथ ही तैयार कराया था । उन्हीं दिनों जान नाम के एक मुसलमान कवि ने भी "कबूतर नामा" नामक एक पुस्तक लिखी थी (जो अप्रकाशित है), जिसके आदि की पंक्तियां इस प्रकार है—

आदि सुमिरि करतार कौं, जाके आदि न अन्त ।
पलक माहि सब जगु रच्यो, नर पसु पंछ अनंत ।।
दीन महंमद सुमिर हौं, जातें सब जगु दीम ।
सकल रसूलनि मधि बन्यौ, ज्यों उड़िगन में सोम ।।
सब पंछिन में "जान" कहि, उत्तम कबूतर आहि ।
नूह नबी कें हेत तें, सब को बाढ़ि चाहि ।।
नबी अबाबकर जहां नाहिन तीजौ और ।
तबहि कबूतर आप कौं, पहुंचायौ तिह ठौर ।।
भलौ कबूतर सबनि में, तातें बाढ़ौ चाव ।
रंग जात औषद कहौं, और उड़ावन चाव ।।
अबहि सुनहु सब करौं बषान ।
समझाऊं नषसिष परिमान ।।

अंग्रेजों की देखादेखी जैसे भारतीय जन कुत्ता पालने लगे—स्पेनियल, ग्रेटडेन, टेरियर, ग्रेहाउन्ड, आलसेशियन आदि की बन आयी—वैसे ही मुसलमान बादशाहों की नकल में देश के धनी-मानी व्यक्तियों से लेकर आम जनता तक कबूतर-पालने का शौक चढ़ गया । देश-विदेश के कबूतर पाले जाने लगे । पर अब यह शौक धीरे-धीरे घटता जा रहा है ।

दर असल कबूतर पालने की प्रथा इस देश में प्राचीनकाल में भी प्रचलित थी जैसा कि महाभारत की इस उक्ति से प्रतीत होता है—"गृहे पारावता धन्याः ।"

कबूतर की कई उपयोगिताएं भी हैं, जिनमें सबसे बड़ी उपयोगिता तो यह है कि ये सदा से सन्देश-वाहक का काम करते आए हैं ! तभी तो विरहिणी उर्मिला ने कहा था—

लेते गए क्यों न तुम्हें कपोत ! वे,
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे,
लाते तुम्हीं हा ! प्रिय-पत्र पोत वे,
दुःखाब्धि में जो बनते सहारे ।

प्राचीनकाल में, कहते हैं, मिस्र की जगत-विख्यात सुन्दरी रानी क्लियोपैट्रा ने अपना प्रणय-पत्र एक कबूतर के द्वारा ही रोम में मार्क एन्टोनी के पास भेजा था तथा बादशाह अकबर ने बीस हजार संवाद-वाहक कबूतर पाल रखे थे ।

आधुनिक समय में, रायटर की संवाद एजेंसी पहले-पहल अपने आवश्यक संवाद कबूतरों की मार्फत ही जहां-तहां भेजा करती थी ।

सिखाये हुए कबूतर लड़ाई के दिनों में दूर-दूर तक पत्र ले जाया करते हैं । उड़ान के ये कबूतर यदि सैंकड़ों मील दूर भी छोड़ दिए जाएं तो वे उड़ कर पुनः अपनी जगह पर, बासे पर, वापिस आ जाते हैं । साधारणतः भी यदि ये आकाश की ओर उड़ा दिए जाएं तो सुदूर आकाश में मीलों तक उड़ते चले जाते हैं और घंटों तक उड़ते रहते हैं, फिर अपने निवास-स्थान पर लौट आते हैं । सबसे अधिक उपयोगी इसी जाति के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कबूतर हैं। ये कई रंग के होते हैं।

पक्षी शास्त्र के विशेषज्ञों ने पंडुक, हारिल, आदि पक्षियों को भी कपोत के ही वंश अथवा श्रेणी में रखा है पर आमतौर पर हम इनका कबूतरों में शुमार नहीं करते। हां, एक पक्षी है जो कबूतर तथा फाखता-पंडुक के मेल से पैदा होता है और देखने में दोनों से ही मिलता है, वह है—कुमरी। कबूतरों की तरह लोग इसे भी पालते हैं। यह अधिकतर दो रंगों में पाया जाता है, सफेद तथा हल्का बादामी। आकार में पंडुक से मिलता-जुलता सा होता है। फारसी तथा उर्दू-साहित्य में कुमरी का जिक्र बहुत आया है, खासकर सर्व (अशोक) वृक्ष के साथ-साथ, यथा—

बगुलबन बुलबुलो कुमरी बसर्वे बोस्तां नजद।

(बेदिल)

* * * *

जिस जगह जलवानुमां रहते थे सर्व-ओ-शमशाद,
मुश्ते पर कुमरी के उस जां नजर आये यक बार।

(सौदा)

हारिल

जिन दिनों मैं स्कूल में पढ़ता था, मुझे शिकार का और शिकारियों के साथ घूमने का बहुत शौक था। मैं स्वयं तो किसी जानवर या पक्षी को नहीं मारता था, किन्तु बन्दूक अथवा रायफल का निशाना ठीक बैठने पर उल्लास से अवश्य ही भर उठता था। यही था मेरा शिकार। उषाकाल से लेकर सन्ध्या तक शिकारी मित्रों के साथ वन-प्रान्तरों में, तराइयों में, पैदल, नाव पर, जल-विहगों की खोज में झीलों के आस-पास, घड़ियाल की तलाश में बागमती, कमला, गंडकी आदि सरिताओं के बीहड़, जनहीन तटों पर मैंने न जाने कितने दिन बिताए होंगे। संवाद मिला कि नदी के अमुक स्थान पर घड़ियाल निकला हुआ है और हम खाना-पीना छोड़-छोड़ कर दौड़े। घोर शीतकाल में पौ फटते ही—या उसके भी पूर्व—ठंढक से थरथराते हुए हम लालसर आदि जल-चिड़ियों के शिकार के लिए मीलों फैली हुई झीलों की ओर चल पड़ते थे। कोहरे में ये पक्षी दूर तक देख नहीं पाते, अतः नौका इनके बिल्कुल समीप ला कर शिकारी इन पर बन्दूक दागते हैं तथा एक-दो नहीं, बल्कि दर्जनों की संख्या में इन्हें मारने में सफल होते हैं।

किन्तु जीवन के उस उषाकाल में, जिस चीज़ की खोज में मैं सबसे ज़्यादा घूमता रहा वह न तो घड़ियाल था और न जल के पक्षी ही। वे हारिल थे (चित्र संख्या : ८) जिनके प्रति न जाने क्यों मेरे मन में एक खास आकर्षण था। अधिकतर विशाल सेमल अथवा बट, पीपल और पाकड़ के वृक्षों पर वे पाए जाते थे, उनके पके हुए छोटे-छोटे फल मानों उन्हें वहां खींच लाया करते हों। घंटों हम ऐसे वृक्षों की तलाश में, गांवों से बाहर, सरिता के पुलिन-प्रान्तरों में विचरते तथा हारिल की मधुर कूजन की प्रतीक्षा में समय बिताया करते थे। इनके शरीर का रंग वृक्ष के पत्तों जैसा हरा होने के कारण उनसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ एसा मिलता-जुलता सा होता है कि सहसा इनका पता पाना कठिन हो जाता है। कुछ काल शांत-भाव से व्यतीत करने पर ही, जब ये अपने को खतरे से बाहर समझकर आनन्द से कूजने लगते हैं, इनके अस्तित्व का पता चलता है । स्वभाव से ही ये भीरु एवं शर्मीलि होते हैं तथा मनुष्य की समीपता का आभास पाते ही चुप हो जाते हैं अथवा उड़ कर अन्यत्र चल देते हैं। ये झुंड बांध कर रहते हैं और उड़ कर दूर नहीं जाते, आसपास के ही किसी दूसरे वृक्ष पर जा बैठते हैं।

वृक्ष ही इनका निवास-स्थल है और क्रीड़ा-क्षेत्र भी। य शायद ही कभी वृक्ष से नीचे उतरते हों । टहनियों को बड़े ज़ोर से अपने चगुंलों के सहारे पकड़ कर सर नीचे, पैर ऊपर करके ये फल खाते हैं तथा इस प्रकार न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर ज़बर्दस्त आघात कर डालते हैं । छोटी टहनियों को चंगुलों से ये कुछ ऐसे ज़ोर से पकड़ते हैं कि उनका कोमल हिस्सा टूट कर इनके चंगुलों में जा फँसता है । इस जनश्रुति का कि हारिल कभी ज़मीन पर नहीं उतरते और यदि कभी पानी पीने के लिए उतरते हैं तो पांवों में लकड़ी का टुकड़ा लेकर, यही आधार प्रतीत होता है । निस्सन्देह हारिल को बृक्ष बड़ा प्यारा है और शायद ही किसी ने उसे ज़मीन पर अथवा किसी मकान की छत पर, या और कहीं, बैठा पाया हो; वृक्ष की टहनी ही मानों उसके जीवन का आधार हो। काश ! जिस प्रकार हारिल ने वृक्ष की टहनी से नेह लगा रखा है उसी प्रकार हम परमात्मा से नेह लगा पाते। भक्त कवियों ने हारिल की इस परम्परा का अपने पदों में पूरा उपयोग किया है। सूरदास ने कहा है, "हरि मेरे हारिल की लकरी" तथा और भी अनेक भक्त-हृदय कवियों ने इस रूपक का व्यवहार किया है—

कस न भयो मन थीर,
तज पीतम को चरण-छांह कस, इत-उत भ्रमत अधीर ।
स्वाति-वारि तजि कबहुंक चातक, दूजो वारि ग्रहै न,
तजि तरु-डार कबौं हारिल लखु, थल निज पांव धरै न ।

हारिल के जमीन पर पांव न रखने की बात सच हो या गलत, पर इसमें सन्देह नहीं कि इस देश में सदियों से यह धारणा बनी रही है और कवियों ने उसकी इस मनोवृत्ति की, उसके इस प्रण-पालन की, भूरि-भूरि प्रशंसा की है, इसे आदर्श माना है ।

हारिल की इस टेक के सम्बन्ध में मैंने वहुत छान-बीन की, अनुसन्धान किया, पर कोई ऐसा न मिला जो यह कह सकता कि उसने इसे ज़मीन पर उतरते देखा है । पानी पीने के लिए भी यह नदी अथवा सरोवर तटवर्ती ऐसे वृक्ष की डाल पर बैठता है जो जल का स्पर्श करता हो या उसके बिल्कुल समीप तक झुकी हुई हो। ऐसी ही टहनी का ज़िक्र डाक्टर इकबाल ने बड़े सुन्दर ढंग पर किया है—

पानी को देखती हो झुक-झुक के गुल की टहनी,
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो।

पर हां, एक सज्जन श्री भिक रोज़नर, जिन्होंने पक्षी-जीवन का काफी अध्ययन किया है, लिखते हैं कि हारिल जमीन पर भी उतरते हैं पर कभी-कभी ही, और उतर कर छोटे-छोटे कीड़ों का भक्षण करते हैं। हिमालय की पहाड़ियों में वे उतर-उतर कर स्ट्राबेरी के खेतों में काफी लूटपाट मचाते हैं। रांची जिले के एक गांव में उन्होंने हारिलों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को नीचे उतर कर खर्रा मिट्टी तक खाते देखा था । वे कहते हैं कि आदिवासी जाल लगा कर इन्हें फँसाते भी हैं, वह भी एक नहीं, बीसों को एक साथ ।

श्री भिक रोज़नर का यह कथन हारिल-सम्बन्धी इस प्राचीन धारणा पर, कि वे जमीन पर पांव नहीं रखते, एक प्रबल आघात है ।

साधारणतः यह धारणा है कि हारिल की दो ही किस्में होती हैं, एक वह जो कि भारतवर्ष को समतल भूमि पर पाई जाती है और दूसरी वह जो कि हिमालय की पहाड़ियों में । पर गौर से देखने से पता चलता है कि समतल क्षेत्रों में पाए जाने वाले हारिलों की एक नहीं, नौ किस्में हैं । इन सब के पर हरे अवश्य होते हैं किन्तु हरेपन में काफी फर्क है—कोई गाढ़ा, कोई हल्का, कोई धानी, कोई वट वृक्ष के पत्तों के रंग का । इनके सर, छाती, डैने, पीठ तथा मल-त्याग के छिद्र पर श्रेणी-भेद से लाल, बैंगनी, स्लेटी, रक्ताभ, बादामी, भूरे आदि रंगों की छाप होती है । पांव सबों के नारंगी लाल होते ह, केवल एक के गाढ़े पीले होते हैं । आंख की पुतली नीली होती है और उसके चारों ओर एक गुलाबी घेरा होता है । चोंच मोटी और मज़बूत होती है, जिसका निचला हिस्सा हरा और आगे का नीलापन लिए सफेद होता है ।

गरज यह कि हारिल एक सुन्दर पक्षी है । यद्यपि यह कोयल अथवा पपीहे की तरह ज़ोर-ज़ोर से बोल कर दुनिया भर में अपनी वाणी के माधुर्य का ढिंढोरा नहीं पीटता, इसका आहिस्ता-आहिस्ता बोलना, कूजना, कानों को बड़ा प्यारा लगता है ।

ऊपर जिन नौ प्रकार के हारिलों की चर्चा की गई है, उनमें सबसे बड़ा वह है जो प्रायः १८ इन्च लम्बा होता है तथा अधिकतर मलाबार के वनों में तथा अल्प संख्या में बंगाल, उड़ीसा, असम तथा बिहार में भी पाया जाता है । छोटा नागपुर तथा असम में पाए जाने वाले हारिलों में बाहुल्य उनका है जिनकी छाती का रंग गाढ़ा नारंगी तथा कद साढ़े ग्यारह इन्च का होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि हारिलों ने अपने क्षेत्र बांट लिए हैं क्योंकि भारतवर्ष के खास-खास क्षेत्रों में खास-खास किस्में पाई जाती है और एक क्षेत्र में एक से अधिक किस्में शायद ही पाई जाती हों । सबसे साधारण जाति का हारिल वह है जो हिन्दुस्तान के प्रायः सभी प्रान्तों से लेकर बर्मा, लंका, चीन, विएत नाम तथा थाइलैण्ड तक में पाया जाता है ।

यह कद में १३ इन्च होता है तथा इसका रंग हरापन लिए हुए पीला तथा राख के रंग का भूरापन, डैनों में कालिमा, परों के किनारे खूब चमकीला पीलापन होता है । कन्धों पर फालसई रंग का छोटा-सा धब्बा होता है । नर और मादा में कोई खास अन्तर नहीं होता । इसके अंडा देने का समय मार्च से लेकर जून तक है । अंडे बिल्कुल सफेद होते हैं ।

आकार में सबसे लम्बा वह हारिल है जो १७-१८ इन्च का होता है तथा रंग में साधारण जाति के हारिल से कुछ भिन्न है, और जो मलाया, फिलिपीन, इण्डोनेशिया तक में पाया गया है । भारतवर्ष में अधिकतर मलाबार के वनों में तथा कुछ और हिस्सों में भी प्राप्य है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ।

अंदमान तथा निकाबार के द्वीपों में एक और ही प्रकार का हारिल पाया गया है जो इस देश में पाई जाने वाली ७ किस्मों से बिल्कुल भिन्न है । कई वर्ष हुए हिमालय की उस तराई के जंगलों में भी, जो उत्तर-बिहार के सन्निकट है, एक खास किस्म का हारिल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिखाई दिया था जिसकी दुम हू-बहू तोते की पूंछ जैसी लम्बी थी। मि० मन्स नामक एक अंग्रेज़ शिकारी ने इसे बन्दूक का निशाना बना कर इसके मृत शरीर को बम्बई की नेचुरल-सोसाइटी के पास भेज दिया था। संसार के और किसी हिस्से में इस जाति के हारिल के अस्तित्व का उल्लेख किसी पुस्तक अथवा पत्रिका में देखने को अब तक नहीं मिला है। आमतौर पर हारिल की पूंछ छोटी होती है, तोते जैसी लम्बी नहीं। सम्भव है यह हारिल तथा तोते के मेल से पैदा हुआ हो।

हिमालय की पहाड़ियों में पाए जाने वाले हारिल को कोकिला नाम से पुकारते हैं। नर के बदन में हरापन औरों की अपेक्षा अधिक होता है, दुम ज्यादा लम्बी होती है और पीठ तथा डैनों पर रक्ताभ, छाती में नारंगी तथा गुलाबी रंगों का आधिक्य होता है। मादा की छाती नारंगी रंग की नहीं होती तथा डैने एवं पीठ रक्तवर्ण के नहीं होते। इसकी जगह जैतून का-सा हरापन होता है। चोंच तथा आंखों के चारों ओर का चमड़ा नीला और पांव लाल होते है। अंग के शेष भाग नर जैसे ही होते हैं। कश्मीर से लेकर हज़ारा तथा भूटान तक ४,००० फुट से ८,००० फुट की ऊंचाई पर, पूर्व में असम के पहाड़ों से लेकर टेनासरीम, वर्मा तक में इस जाति के हारिल उपलब्ध हैं। बद्रीनाथ-केदारनाथ के पंडे बहुधा इन्हें पिंजड़ों में लाते हैं तथा अपने यजमानों के हाथ बेच जाते हैं पर इन्हें यहां की गर्मी बर्दाश्त नहीं होती। मैंने स्वयं आज से प्रायः बीस-पचीस वर्ष पूर्व इन्हें रखने की कई चेष्टाएं कीं, पंडों के द्वारा बारम्बार इन्हें मंगवाया, पर प्रयत्न विफल रहा; मैं इन्हें ज़िन्दा न रख सका।

कोकिले का स्वर अन्य जाति के हारिलों की अपेक्षा अधिक मीठा होता है। ये निपुण गायक होते हैं, पर अफसोस ! इन्हें हमारा देश पसन्द नहीं, हिमालय का शैल-शिखर ही इन्हें प्यारा है, समतल भूमि के प्रान्तर नहीं।

थोड़े में हारिल का यही परिचय है। ऐसे तो इनकी गणना हम कपोतों में ही करते हैं, पर सिवाय इसके कि इनकी बनावट में सादृश्य है, इनके तथा कपोतों के बीच लम्बी खाई है, न तो ये कबूतरों की तरह ढीठ होते हैं न सर्व-भक्षी ही। मानव-आवास से दूर जंगलों अथवा गांव से बाहर के पेड़ों पर रहते हैं। लजीले ऐसे होते हैं कि मनुष्य को देखते ही चुप्पी साध लेते हैं—तथा वट, पीपल आदि के छोटे-छोटे फलों से, जिन्हें एक बार में ही निगल जाते हैं, अपना पेट भरते हैं। श्री रोज़नर भले ही कहें कि ये कीड़े भी चट कर जाते हैं पर किसी और ने आज तक इन्हें फल छोड़ कर कुछ और, यहां तक कि नाज भी, खाते नहीं देखा। संभव है, रोज़नर साहब ने जिस हारिल की चर्चा की है वह पाश्चात्य-सभ्यता के प्रभाव में आया हुआ कोई हारिलवंशीय पक्षी रहा हो, किन्तु आमतौर पर हारिल फलाहारी ही होते हैं। ऐसे तो पिंजरे में रखने वाले इन्हें भात तथा सत्तू भी खिलाते हैं, पर फलाहार त्याग कर ये अधिक दिनों तक जीवन धारण करते नहीं देखे गए हैं। अपनी टेक रखने में, चाहे वह भली हो या बुरी, ये बहादुर हैं; मर जायेगें पर अपनी टेक न छोड़ेगें—

गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय,
हारिल धर पग ना धरं, उड़त-फिरत मरि जाय।

इस अर्थ में हमारे लिए ये अवश्य ही आदर्श-स्वरूप हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फाखता या पंडुक

फाखता उन पक्षियों में हैं जो भारतवर्ष के कोने-कोने में पाये जाते हैं । इस देश में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इस पक्षी को न पहचानता हो । बाग-बगीचों में, सड़कों तथा गांव की पगडंडियों के ऊपर, घर की सहन में—हर जगह नर और मादा पंडुक एक संग दाना चुगते हुए नजर आयेंगे । अंग्रेज़ी के ऐंग्लो इंडियन कवि डिरोज़ियो ने (१८०९) इसके सतत सहवास तथा सुखी दाम्पत्य-जीवन का बड़े सुन्दर ढंग पर उल्लेख किया है—

Through blackest skies the fond dove flies,
Nor fears the shafts of fate ;
Though winter raves, the blast she braves,
For with her flies her mate.
Oh ! their's the hallowed charm that brings
Such solace to the dove,
And that alone's the spell that makes
Her life a life of love.

घोर तम को ओर भी पंडुक उड़ानें भर रहा ह
भाग्य के शत-शत शरों से वह नहीं भयभीत
शीत चीखे, हवाएं हर दम बहें,
वह उड़ रहा है
क्योंकि उसके संग है उसका मनोरम मीत
एक जादू है मिलन का, प्रम का,
पंडुक उसी में मुग्ध है ।

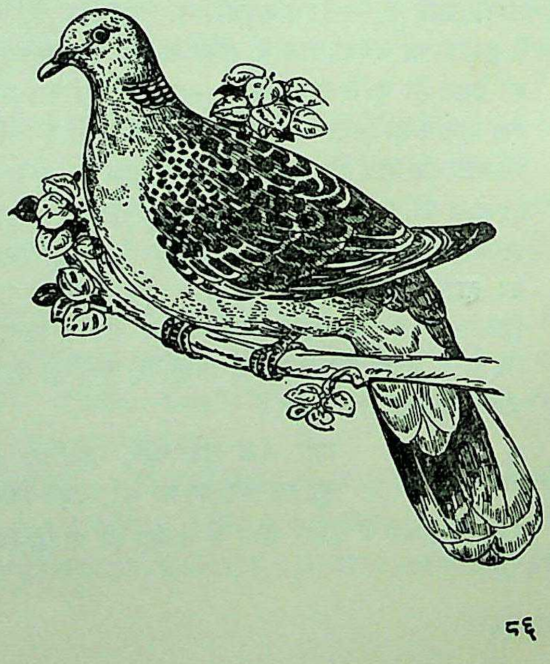

कबूतर और फाखते की बनावट और स्वभाव में अत्यधिक समानता है । कबूतर की ही तरह इसमें दाम्पत्य-प्रेम का आधिक्य है। नर और मादा हमेशा साथ-साथ रहते हैं । नर थिरक-थिरक कर, गला फुला कर, "कू-कू-कू" कह-कह कर मादा के आस-पास नाचता तथा उससे प्रेम की भीख मांगता है । एक को दूसरे का वियोग उसी भांति असह्य है जैसे कि क्रौंच को। एक के मर जाने पर दूसरा उसके पास उड़-उड़ कर आता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा अपने असह्य दुःख का परिचय देता है । मेरे एक बन्धु को फाखता के शिकार का अत्यन्त शौक था । बहुधा बन्दूक लेकर वह बाग-बगीचों की ओर निकल जाते तथा फाखतों का शिकार किया करते थे । कई बार मुझे भी उनके संग जाने का मौका मिला । मैंने देखा, जब कभी एक फाखता बन्दूक की गोली का निशाना बन जाती, दूसरी भी बारम्बार उसके समीप आ-आ कर बैठती तथा गोली का शिकार बनती थी । बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित होता था । पर शिकारियों के हृदय कहां ! उन्हें तो अपने शिकार की थैली उन पक्षियों से भरनी रहती है, जिनका गोश्त स्वादिष्ट होता है । और इसमें शक नहीं कि फाखते का मांस खाने में अत्यन्त ही सुस्वादु होता है । वह मांसभक्षियों को बड़ा रुचिकर है । पर ईसाई फाखते का शिकार नहीं करते । उनके धर्मग्रंथ बाइबिल में लिखा है—"और जीसस[1] बपतिस्मा[2] के बाद सीधे जल से बाहर हुए और तब आकाश—स्वर्ग—के पट खुल गये तथा उन्होंने भगवद्शक्ति को फाखता के रूप में स्वर्ग से उतरते तथा अपने ऊपर बैठते देखा ।"

यह नये टेस्टामेंट (बाइबिल का द्वितीय भाग, जिसका सम्बन्ध ईसामसीह से है) का एक अवतरण है । पुराने टेस्टामेंट (जो ईसा के पूर्व के विभिन्न पैगम्बरों से संबंधित है) में भी, आदि में जहां मनुष्य एवं पृथ्वी की सृष्टि तथा आरम्भिक जल-प्रलय की चर्चा है, फाखते का इस प्रकार जिक्र आया है—

"उन्होंने[3] एक फाखते को बाहर प्रेषित किया ताकि वह देख आये कि पृथ्वी-तल से जल अभी हट पाया है या नहीं । किन्तु फाखते को पांव रखने तक के लिए कहीं ठौर न मिला और वह वापिस लौट आयी, चूंकि सारी पृथ्वी पर जल ही जल था, और उन्होंने हाथ बढ़ा कर उसे अपनी नौका में ले लिया । पुनः सात दिनों तक वह रुके रहे । फिर फाखते को उन्होंने दूसरी बार बाहर भेजा । सन्ध्या काल में वह फाखता लौटी और इस बार उसके मुंह में ऑलिव (जैतून)[4] का एक पत्ता था जिससे नोह को यह पता लग गया कि पृथ्वी-तल पर से जल अब हट गया है। वह सात दिन और रुके, फिर फाखते को एक बार पुनः बाहर भेजा। पर इस बार लौट कर वह वापस न आयी ।"

गरज यह कि ईसाइयों की दृष्टि में फाखता एक पवित्र पक्षी है और वे इसे बड़े आदर की नज़र से देखते हैं, मारते कदापि नहीं। ईसाई-संसार में यह शान्ति और सन्धि का प्रतीक मानी गयी है । और इसमें सन्देह नहीं कि यह देखने से ही एक निर्दोष एवं भावुक पक्षी प्रतीत होता है ।

फाखता के कई भेद हैं और यह हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों में पायी जाती है । कद में मैना-जैसी होती है । बंगाल में इसे घुघ्घु अथवा घुघ्घी नाम से पुकारते हैं, देश के

---

१. ईसा ।
२. ईसाइयों का एक धार्मिक संस्कार, जिसमें जल छिड़का जाता है या स्नान कराया जाता है ।
३. नोह की कथा इस प्रकार है : जल-प्रलय के पूर्व भगवान ने एक नौका तैयार कर के धर्मप्राण नोह को कुछ पशु-पक्षियों के संग उसमें रख छोड़ा ताकि वे बचे रहें और उनसे ही सृष्टि का पुनः आरम्भ हो ।
४. जैतून के पत्ते शान्ति के द्योतक माने गये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाकी हिस्सों में पंडुक अथवा पड़की के नाम से। यह उन चिड़ियों में है जो केवल दाना चुग कर ही जीवन बसर करती हैं। फलों के बाग में रह कर भी यह उन पर आघात नहीं करती। दाने चुगती है और मौज आने पर नाचती है। न ऊधो का देना, न माधो का लेना। न कौओं की तरह चीज़ें चुराती है, न कबूतर की तरह हमारे घरों में घुस कर गंदगी फैलाती है, न कोयल की तरह हम से दूर भागती है और न तोते अथवा बुलबुल की भांति हमारे बाग के फलों, खेत की फसल, को तहस-तहस ही करती है। मानव-आवास के अति निकट रह कर भी यह पद्म-पत्र की भांति ही रहती है।

इसकी कई किस्में हैं, कई उपजातियां हैं, कई नाम हैं—

धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊं,
जौं चितरोख न दूसर ठाऊं।

पर इसे पहचानना कठिन नहीं है क्योंकि यह उन पक्षियों में है जिन्हें हम निरन्तर देखते आये हैं। यह खंजन की तरह अच्छे दिनों में साथ, बुरे में त्याग के सिद्धांत पर चलने वाली चिड़िया नहीं है; यह बारहमासी है, हर हालत में हमारे संग है। इसकी मुख्य किस्में ये हैं—

१. **काल्हक फाखता**—इसे अंग्रेज़ी में 'टर्टल डव' कहते हैं। कद में यह सबसे बड़ी होती है, प्रायः १३ इंच लम्बी। सर, गर्दन तथा ऊपर का भाग ललछौंह भूरा, नीचे का हल्का कत्थई और गर्दन के पिछले हिस्से पर दोनों ओर काली-काली चित्तियां होती हैं। डैनों पर हल्की स्याही का सा रंग तथा कुछ धब्बे-से बने होते हैं। दुम भूरी, कालापन लिये हुए होती है जिसके सिरे पर गाढ़ा कत्थई रंग होता है। आंख का रंग गाढ़ा लाल, पुतलियां सफेद और चोंच भूरी होती है। पांव नीलापन लिए हुए गहरे लाल रंग के होते हैं।

आमतौर पर काल्हक फाखते की यही रूप-रेखा है। पर एक विशिष्ट श्रेणी की फाखता का रंग बिल्कुल ही सफेद होता है, आंखें पीली, पुतलियां लाल तथा चोंच रक्तवर्णी होती है। कभी-कभी एक ऐसी किस्म की फाखता भी पायी जाती है जिसका रंग हल्का पीला, गले पर और पूंछ के नीचे काले की जगह हल्का भूरापन तथा पर की नोक एवं पूंछ पर श्वेत रंग के धब्बे होते हैं। संभवतः यह फालसई तथा श्वेत रंग के पंडुकों का संकर है। पर यही जाति है जो पिंजड़े में अधिक सुगमता से पाली जाती है तथा पिंजड़े में अंडे देती है।

काल्हक की एक और भी जाति है जिसका रंग बाकी सब से भिन्न, गाढ़ा हरा, होता है (चित्र संख्या : ६)। पीठ तथा डैने हरे, नीचे के हिस्से अंगूर की बेल जैसे होते हैं। कपोल तथा भौंहें सफेद होती हैं। नर और मादा के रंग में कोई अन्तर नहीं होता। इसे पन्ना फाखता भी कहते हैं। यह अधिकांशतः हिमालय के पूर्वीय इलाकों में पायी जाती है, और दक्षिण भारत तथा बंगाल, बिहार, उड़ीसा के कुछ हिस्सों में भी। पहाड़ों की तराई में बांस आदि के वनों से परिवेष्टित स्थानों में रहना इसे ज्यादा पसंद है क्योंकि और फाखतों की तरह यह मानव-आवास के अड़ोस-पड़ोस में नहीं बल्कि उससे दूर, पेड़ों की घनी छाया अथवा पर्दे में रहना चाहती है। पहाड़ों पर भी यह पायी जाती है पर ६,००० फुट की ऊंचाई से ऊपर नहीं। असम के चाय-बागानों के इर्द-गिर्द यह काफी संख्या में प्राप्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह बुलबुल
(श्रीमती चन्द्रिका गुन्तल
द्वारा चित्रित)

चित्र संख्या : २२

चित्र संख्या : २३

बुलबुल और उसका परिवार

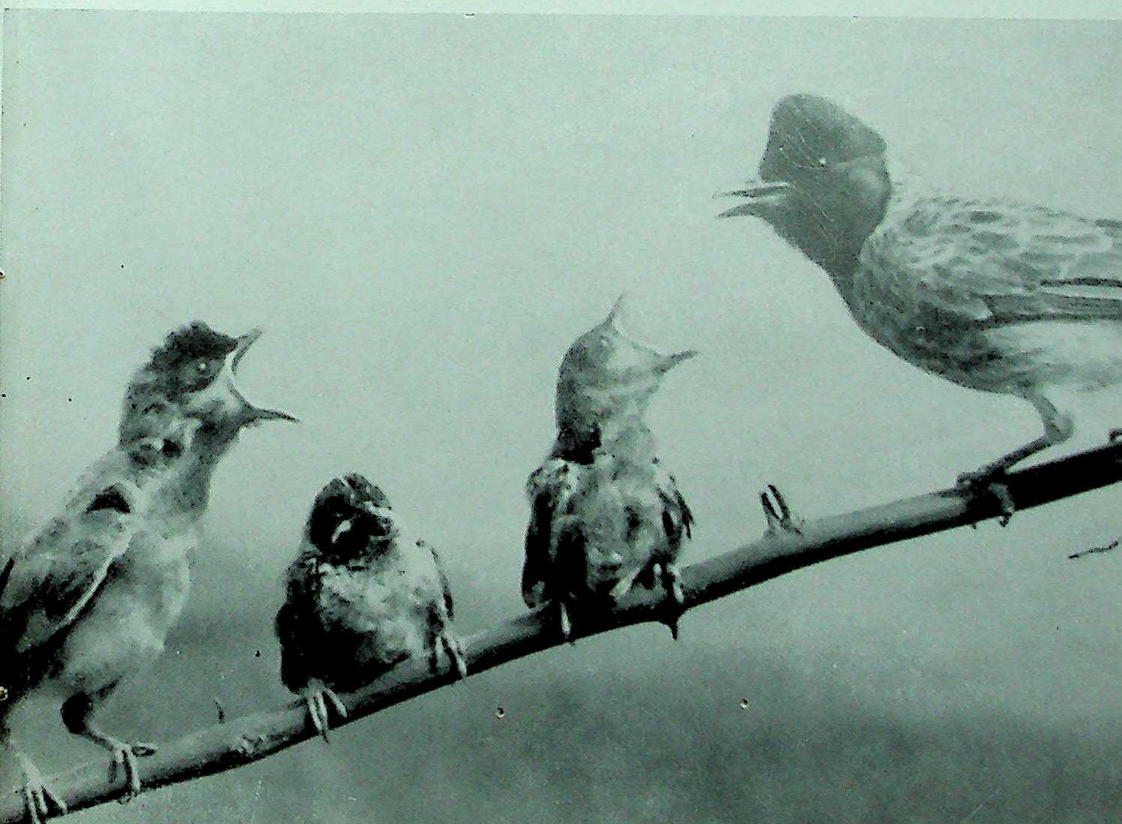

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : २४ कौआ अपने घोंसले पर पहुचते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बट, पीपल आदि वृक्षों के छोटे, सुमधुर फल इसे प्रिय हैं, पर अकसर यह सड़कों अथवा खेतों में दाना चुगती हुई भी नजर आती है । इसकी बोली अन्य फाखतों की भांति ही करुणापूर्ण एवं कर्णप्रिय होती है ।

इसकी पूंछ औरों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है तथा इसमें शर्मीलापन ज्यादा है । खुले स्थान की अपेक्षा झाड़ी, कुंज आदि इसे अधिक प्रिय हैं । उड़ने में यह तेज़ होती है । इसे प्यास अधिक लगती है । नदी अथवा सरोवरों के तट पर इसे आप अधिक सुगमता से देख सकेंगे ।

भारतवर्ष के विभिन्न हिस्सों में, यहां तक कि ११,००० फुट की ऊंचाई पर भी, यह पायी जाती है। पूर्वी साइबेरिया, चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, लंका, नेपाल, सिक्किम, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान आदि में भी यह काफी संख्या में प्राप्त है ।

२. **चितरोखा**—यह कद में काल्हक से कुछ छोटी पर देखने में सुन्दर होती है। यह फाखतों में हमारी सबसे अधिक जानी-पहचानी किस्म की है। हिन्दुस्तान के अधिकांश हिस्सों में यह पायी जाती है और ताईलेंड, विएत नाम, मलय, सुमात्रा, चीन आदि मुल्कों में भी वर्ण-भेद के अनुसार इसके भी कई उपभेद हैं, पर साधारणतः इसका सर तांबे के रंग की झलक के साथ स्लेटी, गर्दन के ऊपरी हिस्से से पीठ तक का भाग श्याम-वर्ण, सफेद बिन्दियों से सुसज्जित, बाद के भूरे हिस्से पर बारीक कत्थई एवं काली चित्तियां और लकीरें खिंची होती हैं । डैने तथा दुम का मध्य भाग भूरे होते हैं । दुम के निचले हिस्से के दोनों किनारे काले एवं सफेद होते हैं । दुम के नीचे का भाग श्वेत, बीच का समस्त निचला हिस्सा कत्थई और गला सफेद होता है । चितरोखों में कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके रंग में ऊपर के रंग से कुछ भिन्नता रहती है, पर वे अधिक नहीं हैं ।

सभी फाखतों की आंखें भूरी होती हैं जिनके चतुर्दिक लालिमा होती है । चारों ओर का चमड़ा भी लाल, चोंच काली, जिसमें चमक नहीं, तथा पैर बैंगनी लिए हुए लाल रंग के होते हैं । पूंछ लम्बी, डैने छोटे होते हैं ।

गर्मी शायद इसे बहुत प्यारी लगती है क्योंकि ग्रीष्मकाल में जब अधिकांश पक्षी पेड़ों की छाया में विश्राम करते रहते हैं, यह कड़ी धूप में बैठी हुई धूप तापती रहती है। पक्षियों में सबसे अधिक निर्भीक है और प्रायः दाना चुगती-चुगती हमारे बरामदे तथा घरों तक में घुस आती है । चुहचुही के साथ-साथ यह भी भोर होते ही शोर करना शुरू कर देती है । अंग्रेज़ी में इसे 'स्पाटेड डव' कहते हैं ।

३. **पेड़की**—सबसे छोटी (कद १० इंच) पर देखने में अतिशय सुन्दर होती है । कत्थई रंग, सर, गला तथा छाती पर हल्का गुलाबीपन। पेट पर सफेदी, दोनों ओर की पूंछ के परों के किनारे सफेद । आंखों की पुतलियां भूरी, चोंच काली तथा पांव इसके गुलाबी होते हैं ।

जंगल की अपेक्षा मानव-निवास का अड़ोस-पड़ोस इसे अधिक प्रिय है। घरों के आंगन में यह बहुधा दाना चुगती हुई नज़र आएगी । घर के किसी शांत हिस्से में घोंसला भी बना डालती है । उड़ने के पहले बड़े ज़ोरों में डैने फड़फड़ाना इसकी एक खास पहचान । इसकी आवाज़ में औरों की अपेक्षा अधिक माधुर्य है । कानों को यह अधिक प्रिय लगती है ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. **राज या रामघुघ्घु**—कद में बहुत छोटी, अन्य फाखतों से भिन्न, तीतर से मिलती-जुलती सी है । नर और मादा में रंग-भेद है । नर का रंग हल्का चाकलेटी, डैने पर हरियाली लिये हुए पीतल का रंग, सर पर भूरी टोपी, कपोल तथा भौंहें श्वेत रंग की होती हैं । आंखें बड़ी-बड़ी, चोंच प्रवाल के रंग की लाल तथा पैर रक्तवर्ण के होते हैं । मादा में पर का कत्थई रंग मंद, सर पर भूरी टोपी का अभाव, कपोल तथा भौंहें श्वेत की जगह भूरी होती हैं । अंडे का रंग एकदम सफेद नहीं, जैसा कि और फाखतों का होता है, बल्कि पीलापन लिए होता है । आकार में छोटी होकर भी यह देखने में अतिशय हृष्टपुष्ट तथा बोलने में अत्यन्त मधुरभाषिणी है । पिंजड़े में अन्य पक्षियों के साथ लड़ने की इसकी प्रबल प्रवृत्ति है । इसके घोंसले अन्य पंडुकों से अधिक सुघड़ एवं साफ-सुथरे होते हैं ।

भारतवर्ष के सभी हिस्सों में यह नहीं मिलती । हिमालय के नीचे के प्रान्तों, बंगाल (रामघुघ्घु नाम बंगला भाषाभाषियों का ही दिया हुआ है), मलाबार के जंगलों तथा गंगा और महानदी के प्रान्तरों में यह उपलब्ध है । मानवनिवास-स्थल से अलग, जंगलों में रहना इसे अधिक पसंद है ।

५. **चोटीदार**—दरअसल यह रहने वाली आस्ट्रेलिया की है, पर भारतवर्ष में भी सुन्दरता के कारण इसे लोकप्रियता प्राप्त है, खास कर पक्षी पालनेवालों के बीच । कद और रूपरेखा में यह बहुत हद तक धवर फाखते से मिलती-जुलती है, पर इसकी पूंछ और पांव बड़े होते हैं तथा सर पर एक सुन्दर-सा तुर्रा होता है । प्रणय-प्रदर्शन के समय नर अपनी पूंछ उठा कर फैला लेता है तथा अपने डैने को विस्तृत कर मादा के पीछे-पीछे दौड़ता है ।

६. **धवर**—कद में चितरोखा के बराबर, पर रंग चित्तेदार न होकर राख का जैसा होता है । सर और गले पर इसके गुलाबी मिश्रित भूरापन होता है । गले के ऊपरी भाग पर काले रंग की एक कंठी भी । देखने में सुन्दर, पर मानव से दूर-दूर ही रहना इसे अधिक रुचिकर है । खेतों तथा छोटे-मोटे जंगलों की झाड़ियों में (घोर वन भी इसे प्रिय नहीं) झुंड बांधकर रहती है जैसा कि अन्य फाखताएं नहीं करतीं या कम करती हैं । इसकी बोली में भी एक प्रकार का कड़ापन है, माधुर्य नहीं । हां, घोंसला बनाने में औरों की अपेक्षा यह अधिक निपुण है और इसके नीड़ अधिक मज़बूत और सुरक्षित होते हैं । ११,००० फुट की ऊंचाई तक यह पायी जाती है ।

७. **ईंटकोहरी या सिरोटी**—कद में सबसे छोटी (९ इंच) होती है पर बोली इसकी सबसे मधुर होती है । इसके नर व मादा का रंग एक दूसरे से भिन्न होता है । ईंट का-सा रंग होने से ही इसे ईंटकोहरी कहते हैं ।

नर के सर का रंग स्लेटी, बाद का हिस्सा ईंट की तरह सुर्ख, डैने के सिर पर कत्थई रंग, गले में काली कंठी होती है । दुम स्लेटी रंग की होती है, किन्तु मध्यभाग में भूरापन होता है । किनारे काले और सफेद होते हैं । नीचे का हिस्सा लाल होता है । केवल दुम के नीचे सफेदी होती है ।

मादा का ऊपरी भाग राख के वर्ण का होता है । डैने पर लाली नहीं होती । गले में नर की ही भांति काली कंठी होती है । भारतवर्ष के तमाम हिस्सों में यह उपलब्ध है, पर

State Museum,
LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहीं-कहीं तो काफी संख्या म देखने को मिलती है और कहीं बिना किसी कारण-विशेष के एक दम ही गायब । गांव से दूर खेत तथा झाड़ियों में दाना चुगना इसे अधिक प्रिय है । अधिकतर नर और मादा एक साथ मिलेंगे पर कभी-कभी इसके झुंड भी नजर आते हैं ।

फाखतों की मुख्य किस्में इतनी ही हैं। इनके रंग, बनावट और कद में स्थानान्तर से कुछ फर्क भी आ जाता है । एक ही किस्म की फाखता उत्तर बिहार में छोटे कद की पर पंजाब में कहीं-कहीं बड़े कद की पायी जाती है। मनुष्यों में जैसे जलवायु के कारण रंगत तथा कद में अन्तर आ जाता है, निस्सन्देह पक्षियों में भी वैसा होता है ।

चाहे कोई फाखता काल्हक हो या चितरोखा अथवा ईंटकोहरी, सभी के स्वभाव और प्रवृत्तियों में, समानता होती है। मसलन, ये सभी साल भर अंडे देती हैं । इनके घोंसले कम या अधिक एक जैसे ही बेडौल होते हैं—दो-चार लकड़ियों के टुकड़ों से बनाये हुए मचान-जैसे, जिसके अन्दर अंडे तथा बच्चे बाहर से साफ नज़र आते रहते हैं । अंडे का रंग अधिकांशतः एक जैसा होता है । छोटे दरख्तों, खासकर बबूल के वृक्षों पर घर बनाना इन्हें समानरूप से रुचिकर है। मोर और कबूतर की तरह प्रेमोल्लास में नाचना भी इन्हें प्रिय है—

नाचहिं पंडुक मोर परेवा,
विफल न जाय काहु कै सेवा।

तोता

एक पुरानी कथा है । बहुत दिन हुए सुन्दरवन के एक कोने में तोतों की एक विराट सभा हुई जिसका सभापतित्व काकातुआ-वंश के एक पक्षिराज ने किया । सभापति जी ने कहा—

मित्रो, एक समय था जब कि इस संसार में खासकर भारतवर्ष में तोतों की बड़ी पूछ हुआ करती थी, मानव-समाज उन्हें बड़ी इज्जत की निगाह से देखा करता था, हमारी कथाओं को पुस्तक रूप में संकलित कर उन्हें पढ़ता था और उनके प्रचार में सहायक होता था। श्रद्धेय हीरामन तोता के प्रति उसने अपने आदर के जो भाव दिखाये, उसकी ख्याति-वृद्धि में जिस प्रकार सहायक बना, उसे कहने की आवश्यकता नहीं। इतिहास के पृष्ठ ही उसे बताते हैं। इसका कारण केवल मानव जाति की उदारता ही नहीं, हमारी अपनी योग्यता भी थी । हम विद्याप्रेमी थे, मेधावी थे, तीक्ष्णबुद्धि थे,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवद्भक्त थे और संसार में स्वभावतः अपना स्थान रखते थे । जिन चीज़ों को मानव कुल के विद्यार्थी हफ्तों, बल्कि महीनों में रट-रट कर कंठस्थ करते थे, उन्हें हम दो-एक दिनों में ही सीख लेते और इस प्रकार अपनी अद्भुत मेधाशक्ति का परिचय देते थे । स्मरण होगा, जब भगवान शंकराचार्य भारतवर्ष के विविध विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर मिथिला पधारे थे ताकि तद्देशीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् पं० श्री मंडन मिश्र को भी पराजित करें, तथा कुवें पर पानी भरती हुई किसी ग्राम बाला से उनके घर का पता पूछा था, तो उसने इन शब्दों में उनके गृह का परिचय दिया था—

जगद्ध्रुवंस्यात् जगदध्रुवंस्यात्
शुकांगना यत्र गिरो गिरन्ति,
द्वारस्थनीड़ान्तरसन्निरुद्धा
जानीहि तं मंडन पंडितौकः ।

अफसोस कि आज वह हमारी स्थिति नहीं । न तो मानव समाज गुणों का पारखी ही रहा, न उसके दिल में पहले जैसी कद्रदानी रही, और न हमारे बीच वे गुणभंडार ही । हर चीज में, हर बात में, परिवर्तन है—

वह मुतरिब और वह साज़, वह गाना बदल गया,
नींदें बदल गयीं, वह फ़िसाना बदल गया !
रंगे रुखे बहार की जीनत हुई नयी,
गुलशन में बुलबुलों का तराना बदल गया !

ध्यान दीजिए—'गुलशन में बुलबुलों का तराना बदल गया।' मानव से यह न हुआ कि इस मिसरे में बुलबुल की जगह वह हमारे तोते का ज़िक्र करता । यहीं नहीं, 'तोताचश्म' जैसे मुहावरे की ईजाद करके हमारे सारे समाज को कलंकित करने की उसने चेष्टा भी की । पर—

निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं जमाने की,
कहीं छिपता है तोता फूल पत्तों में निहां हो कर ?

कहना न होगा कि तमाम उपस्थित तोतों ने कर्णभेदी 'टर्र-टर्र' शब्दों में हर्षध्वनि कर इस भाषण पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी । निस्संदेह प्राचीन काल में इस पक्षी विशेष की जो कद्र थी वह आज नहीं रही । उदाहरण के लिए विशिष्ट कुल की सुन्दरियों के दृष्टिकोण को ही लीजिए । जहां पूर्वकाल में नूरजहां तथा मुमताज महल जैसी बेगमें, जिनके सौंदर्य की शोहरत सारे जहान में फैली हुई थी, दिन-रात अपने हाथों पर तोता लिये फिरती थीं, जो उनके प्राचीन चित्रों से साफ ज़ाहिर है, वहां आज की रूपयौवन-सम्पन्न महिलाएं कुत्ते लिए फिरती हैं ।

सभा समाप्त हुई । निम्नलिखित सह-गान के साथ देश-देश से आये हुए सुग्गों ने कार्यक्रम को पूरा किया और कुछ काल सुन्दरवन में बिता कर स्वागत समिति के द्वारा आयोजित विविध फूलों की दावत खाकर वे अपने-अपने देश को चले गये । गान यों था—

वंश-गौरव को न हम छोड़ें कभी,
नाम-साधन से न मुख मोड़ें कभी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रेष्ठ विहगों से सभी हम, भाइयो।
प्रीति संसृति से न हम जोड़ें कभी।

पूर्वोक्त सभा या महासभा में भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए तोते तो थे ही, वर्मा, मलय, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि के तोते भी सम्मिलित हुए थे । सभापति का स्थान, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, काकातुआ (चित्र संख्या: ८९) न ग्रहण किया था ।

काकातुओं को हम शुद्ध भारतवासी नहीं कह सकते, पर साथ ही इस देश के लोग इस जाति के तोतों से बिल्कुल अपरिचित भी नहीं हैं, क्योंकि एक बड़े अर्से से, सदियों से, ये यहां के लोकप्रिय पालतू पक्षियों में स्थान पाते आये हैं। पर रहने वाले ये मलक्का, फिलिपीन, और खास करके आस्ट्रेलिया के हैं, जहाँ इनकी छोटी-बड़ी अनेक उपजातियां पायी जाती हैं। इनके रंग और इनकी सूरतें तरह-तरह की हैं। आमतौर पर इनकी पूंछ छोटी तथा सर पर तुर्रा या चोटी सफेद, काली, भूरी, लाल किंवा पीले रंग की होती है। नीली आंखें तथा लाल तुर्रे वाले काकातुआ अधिक सुन्दर दीख पड़ते हैं। अपनी बनावट-सजावट से ही ये पक्षी-समाज में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं मानो ये पक्षियों के शहंशाह हों।

भारतवर्ष में इनके पालने की परिपाटी बहुत पुरानी है । अधिकतर लोग इन्हें पिंजड़ों में न रख कर लोहे के मोटे अड्डों पर जंजीर से बांधकर रखते हैं। किसी अज्ञात आगन्तुक के आने पर जोरों से चिल्ला कर गृहस्वामी को ये सचेत कर देते हैं और यदि आने वाले का उद्देश्य चोरी करने का हो तो इसे वे फौरन ताड़ भी जाते हैं मानों अन्तर्यामी हों, तथा तब तक शोर मचाते रहते हैं जब तक कि घर का कोई व्यक्ति वहां आ न जाय। कभी-कभी ये चोंच से आगन्तुक पर प्रहार भी कर डालते हैं।

कलकत्ते में खासतौर पर इनके पालने का रिवाज है। प्राचीन बंगाली परिवारों में शायद ही कोई ऐसा परिवार मिले जिसके घर में ये नज़र न आयें । ये काफी वजनदार होते हैं और इनकी कीमत आकार एवं रूप-रंग के अनुसार पांच-छः सौ रुपये तक भी होती है । यदि हिफाजत के साथ रखे जायं तो ये बहुत दिनों तक जिन्दा रहते हैं । कहते हैं, इनकी उम्र काफी लम्बी—सौ-डेढ़-सौ साल तक की होती है। मनुष्य से ये कहीं अधिक आयु वाले होते हैं। कलकत्ते में एक विशिष्ट सज्जन रहा करते थे । मैं उनसे मिलने बहुधा जाया करता था । पक्षी पालने का उन्हें खास शौक था । पिंजड़े में कोयल, जो वसन्त से लेकर शीतकाल के आरम्भ तक गला फाड़-फाड़ कर गाती तथा सारे मुहल्ले को प्रतिध्वनित कर रखती थी, लाल मुनिये, हरे तोते आदि तरह-तरह के पक्षी रक्खे थे; साथ-साथ एक बड़े आकार का, अति सुन्दर रंगों वाला काकातुआ भी, जो मकान की सीढ़ियों के पास अपने अड्डे पर बैठा हुआ चारों ओर नज़र दौड़ाया करता था। आने वालों की पूर्व-सूचना वह अपनी आवाज से दे देता था तथा उसकी आवाज सुनते ही वे समझ जाते थे कि कोई आया है । शुरू-शुरू में मुझे देखकर भी वह ऐसा ही करता था पर पीछे चल कर मुझे पहचान गया था, अतः चुप रहता था। अफसोस, आज ५-६ साल हुए, उनका देहान्त हो गया, पर पिंजड़े की कोयल और वह काकातुआ आज भी मौजूद हैं । मैं अब भी वहां जाया करता हूं, पर न तो वह कोयल ही उस जोशोखरोश के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ गाती है और न उस काकातुआ में ही उत्साह की वह पुरानी भावना रह गयी है । वह नतमस्तक, सुस्त बैठा रहता है ! पक्षियों में स्नेह का भाव कितना प्रबल है, इसका दृष्टांत यह काकातुआ है ।

पालतू हो जाने पर बहुत से लोग काकातुआ को बन्धन-मुक्त करके भी रखते हैं । वह अड़ोस-पड़ोस, बाग-बगीचों में घूमता है और फिर अपने अड्ड़े पर लौट आता है ।

काकातुआ की एक छोटी किस्म भी है जिसे हम काकातुई के नाम से पुकार सकते हैं । कद में छोटा पर देखने में यह भी बड़ा सुन्दर रंग-बिरंगा तोता है । काकातुआ और काकातुई दोनों ही आस्ट्रेलिया के सर्वश्रेष्ठ पक्षी हैं और शाम के वक्त वे वहां किसानों के दरवाज़ों पर दल-के-दल उसी तरह दाने चुगने को आ पहुंचते हैं जैसे कि हमारे देश में पालतू कबूतर । खेतों में हल के पीछे-पीछे भी ये चला करते हैं । ऐसे तो सभी वृक्षों पर रहते हैं, पर युकलिप्टस् का वृक्ष इन्हें सबसे अधिक पसन्द है। जिन्होंने इनके मांस को अधिक खाया है, उनका कहना है कि इनके मांस से भी युकलिप्टस् की तीव्र खुशबू आती है ।

काकातुआ इस देश का पक्षी नहीं है पर इसके पालने का इस मुल्क में कुछ इतना ज्यादा रिवाज रहा है, कि हम इसके साथ वही आत्मीयता अनुभव करते हैं जो हरे तोतों के साथ । यह अपने तुर्रे को अधिकांशतः गिरा कर रखता है पर जब उठाता है तो ऐसा लगता है मानो किसी जापानी महिला के हाथ में विभिन्न रंगों में रंगा हुआ व्यजन हो अथवा किसी लोकपाल का मुकुट हो !

ऊपर जिस सभा का उल्लेख किया जा चुका है उसमें अधिक संख्या उन तोतों की थी, जिन्हें हम रोज दिन में अपने बाग-बगीचों के वृक्षों पर दल बांध कर बैठे हुए अथवा खेतों में लगी हुई फसलों—बाजरा, भुट्टा आदि की बालियों पर आघात करते हुए देखते हैं या कि आकाश में उड़ते हुए, अर्थात् हरे रंग के देशी सुग्गों की । दूर से देखने से ये सभी एक समान ही नजर आते हैं। पर इनकी दर्जनों किस्में हैं। किन्तु दो प्रकार के तोते उत्तर भारत में अधिक पाये जाते हैं; एक वे जिनके शरीर का रंग हरा, दुम के पर पीले-हरे, चोंच लाल, ठोड़ी पर काला धब्बा होता है। नर के एक कंठी होती है जिसका रंग ऊपर गुलाबी, नीचे लाल होता है; आंख से लेकर नाक तक एक काली धारी भी होती है । मादा की कंठी का रंग हल्का हरा होता है । आंखें सफेद होती हैं । लम्बाई में ये प्रायः १६ इंच होते हैं, १० इंच की पूंछ और छः इंच का बदन । दूसरे वे जिन्हें लालटुइंया या लालसिरा भी कहते हैं। फर्क इतना है कि इसकी चोंच लाल नहीं, नारंगी रंग की होती है और गर्दन बैंगनी रंग की। आंखें श्वेत भी होती हैं और गुलाबी भी, तथा पांव का रंग भूरा न होकर गुलाबी लिये होता है। आमतौर पर ये दो प्रकार के तोते भारतवर्ष से लेकर लंका आदि देशों में तथा पीरू तक में पाये जाते हैं। आज से हज़ारों वर्ष पूर्व ये रोम तथा यूनान तक में लोकप्रिय हो चुके हैं। रोम के प्रसिद्ध कवि ओभिड ने जिस तोते पर मरसिया लिखा था, उसके रूप-वर्णन से साफ ज़ाहिर है कि वह उपर्युक्त जाति का ही कोई तोता था। कहते हैं, सिकन्दर जब भारत से लौटा तो अपने साथ अनेक तोते लेता गया और तभी से यूनान में और फिर रोम में तोता पालने की प्रथा चल पड़ी। फिर तो समुद्र हो कर जो कोई भी जहाज कालान्तर में, पूर्व से पश्चिम को गया, सैंकड़ों तोते लेता गया। यूरोपीय देशों में तोता पालना भी एक फैशन-सा हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक तीसरे प्रकार का तोता, जो समस्त भारत तथा लंका, बर्मा, अंदमान आदि में पाया जाता है, वह है जिसकी समानता पूर्वोक्त किस्मों के तोतों से तो है, परन्तु जो कद में उनसे बड़ा होता है तथा जिसकी पांखों पर गहरे लाल रंग का एक धब्बा-सा होता है । बंगाल में इसे 'चन्दना' नाम से पुकारते हैं ।

एक और तोता हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में मिलता है जिसका बदन छोटा, मैना के आकार का, पर पूंछ काफी लम्बी होती है । शरीर हरा, पर सर का रंग नीलापन लिये लाल होता है । पूंछ के मध्य भाग के पर नीले होते हैं जिनके अग्रभाग पर सफेदी होती है डैनों पर लाल धब्बे होते हैं । चोंच लाल न होकर नारंगी रंग की होती है । बर्मा में भी इस प्रकार के तोते पाये जाते हैं पर उनके परों में नीलापन नहीं होता, वे बिल्कुल धानी होते हैं ।

इस किस्म के तोतों तथा औरों में फर्क यह है कि जहां उनकी आवाज में टर्रापन है, माधुर्य का अभाव है, वहाँ इनके कूजन में एक प्रकार की मधुरिमा है जो कानों को बड़ी प्यारी लगती है । मार्च से लेकर मई तक इनके अंडे देने का समय है । बाकी तोते, जिन का ऊपर उल्लेख हो चुका है, उत्तर भारत में मार्च-अप्रैल में और दक्षिण भारत म जनवरी-फरवरी में अंडे देते हैं । अंडों का रंग बिल्कुल श्वेत होता है । तोते घास-फूस के घोंसले नहीं बनाते । मादा दीवार अथवा वृक्षों के सूराखों में अंडे देती है । बना-बनाया सूराख यदि नहीं मिला तो खुद चोंच की सहायता से नर-मादा सूराख बना डालते हैं जिसे पूरा करने में कभी-कभी इन्हें महीनों लग जाते हैं । सूराख का दरवाजा प्रायः दो इंच चौड़ा होता है, भीतर ४-५ इंच । यहीं लकड़ी की कुछ चिप्पियां बिछा कर मादा चार-चार छः-छः अंडे तक दे डालती है ।

जैसा कि मैं पहले कह आया हूं, तोतों के एक-दो नहीं दर्जनों भेद हैं (चित्र संख्या : १५, १६ और ३४) और आमतौर पर इनका रंग हरा होता है चाहे उनमें शरीर के जिस-तिस स्थान में लाल का मिश्रण हो या पीले अथवा नीले रंग का या और किसी का। भारतवर्ष के कोने-कोने में, हिमालय की ४-५ हजार फुट की ऊंचाई तक, ये पाये जाते हैं। बर्मा, लंका, मलय, ताइलैंड, विएत नाम, चीन आदि देशों में भी पाये जाते हैं । तोतों की प्रकृति में, चाहे वे किसी भी उप-जाति के हों, एक गहरी समानता है । उड़ने में और पक्षियों की अपेक्षा ये ज्यादा तेज होते हैं, वनवासी हैं, कोयल, पपीहा आदि की तरह अलग खिचड़ी न पका कर झुंडों में रहते हैं, अर्थात् सामाजिक प्रकृति के हैं, कपोत की भांति इनका भी दाम्पत्य-प्रेम गहरा एवं माधुर्यपूर्ण है, नर व मादा चोंच मिला कर एक दूसरे के प्रति प्यार-प्रदर्शन करते हैं ।

अधिकतर प्राचीन वृक्षों के कोटर ही तोतों के निवासस्थल हैं । यदि आप किसी नदी-तटवर्ती विशाल वट, पीपल अथवा सेमल वृक्ष पर गौर से निगाह डालें तो वहां अपने-अपने कोटरों में बैठे हुए अनेक शुक-दम्पतियों को वायु-सेवन करते पायेंगे । शायद इन्हीं की ओर देख कर महर्षि वाल्मीकि ने मा गंगा से यह इच्छा प्रकट की थी कि—

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तर्गते गंगे विहंगो वरं ।

—मां, गंगे ! तुम्हारे तटवर्ती वृक्ष के किसी कोटर में मैं पक्षी होऊं। कालिदास ने भी अभिज्ञान शाकुन्तल में लिखा था—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोतों के सम्बन्ध में यह एक प्राचीन धारणा है कि सेमल वृक्ष के घोंसलों में पले हुए तोतों में अधिक वाक्-चातुर्य होता है । पता नहीं, इसमें कहां तक सचाई है।

निस्सन्देह सबसे अधिक इन्हें वन एवं वृक्षों के कोटर अत्यधिक प्रिय हैं—

वासः काञ्चनपंजरे नृपकराम्भोजैस्तनूमार्जनं
भक्ष्यं स्वादुरसालदाड़िमफलं पेयं सुधाभं पयः
पाठः संसदि रामनाम सततं धीरस्य कीरस्य मे
हा ! हा ! हन्त ! तथापि जन्म विटपिक्रोड़ं मनो धावति ।

—सोने के घर में मेरा निवास है और ये बड़े-बड़े राजा-महाराजा स्वयं अपने हाथों से मेरा अभिषेक करते हैं; आम, अनार आदि फल खाने को, अमृत, मधुर जल पीने को देते हैं ; सभा में राम-नाम का पाठ भी चलता रहता है । पर इन सारी सुख-सुविधाओं के रहते भी मेरा मन अपने जन्म-स्थान वृक्ष की गोद की ओर ही भागता रहता है ।

कथन सत्य है, पाले हुए परेवा को यदि आप पचासों कोस की दूरी पर भी छोड़ आयें तो वह उड़कर अपने निवास-स्थल पर लौट आयेगा । पर तोता, बरसों तक पाले जाने पर भी पिंजड़े से छूटते ही वन-वृक्ष की ओर ही दौड़ता है, पीछे लौटकर भी नहीं देखता। इसीलिए क्षण भर में ही नजर बदलने वाले अकृतज्ञ जनों को 'तोता चश्म' कहते हैं। पर मातृभूमि का प्रेम सर्वोपरि है, तोते की यह प्रवृत्ति क्या इस बात की ही परिचायक नहीं है ? भगवान कृष्ण का हृदय भी तो कह उठा था—

मणिकांचन की बनी द्वारिका,
गोकुल की छबि नाहीं !

कलकत्ते के चिड़िया-बाजार में अथवा न्यू मार्केट के इर्द-गिर्द यदि आपको कभी जाने का संयोग प्राप्त हुआ हो तो आपने रंग-बिरंगे मध्यम कद के कुछ पक्षी बिकते देखे होंगे । ये आस्ट्रेलिया के तोते हैं, जिनके कई भेद हैं । आकार में ये उपर्युक्त तोतों से छोटे होते हैं, पिंजड़ों में काफी दिनों तक ठहरते हैं, अंडे देते हैं, रूप-रेखा, रंग बड़े सुहावने होते हैं तथा इनका चहकना भी कर्ण-प्रिय है, कर्ण-कटु नहीं । इनमें सबसे प्रसिद्ध वे हैं जिन्हें आस्ट्रेलिया-निवासी "बुदगेरिगर" नाम से पुकारते हैं। ये पिंजड़ों में बड़ी अच्छी तरह रहते हैं तथा गौरयों की तरह आसानी से सन्तानोत्पत्ति भी करते हैं, उनकी ही तरह इनकी वंश-वृद्धि होती है । आज प्रायः पचास वर्षों से ये यूरोप के विभिन्न देशों में बड़े शौक से पाले जाते रहे ह । ये बोलना भी आसानी से सीख लेते हैं । इटली में औरतें इन्हें पिंजड़ों में रखती हैं और भविष्यवाणी करना सिखाती हैं । फिर यूरोप के अन्यान्य शहरों में इन्हें ले जाती हैं तथा इनके द्वारा काफी पैसे पैदा करती हैं। लोग इनसे अपने भविष्य-सम्बन्धी प्रश्न पूछते हैं और ये जिप्सियों की तरह उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं । जैसे यदि आपने प्रश्न किया कि मेरी आयु कितनी है, तो पिंजड़े के अन्दर से तोता कह उठेगा, ७० वर्ष। लोग इसकी बातें सुनकर स्वभावतः बड़े चकित होते हैं ।

कलकत्ते के बाजारों में ही एक और प्रकार के बहुत छोटे कद के तोते बिकते मिलेंगे जो सुग्गों की सबसे छोटी उपजाति है । ये फल खाते हैं, साथ-साथ फूलों के पराग एवं मधु का भी पान करते हैं, जो बड़े तोते नहीं करते । इनके रंग विविध प्रकार के तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : २६
धनेश

चित्र संख्या : २५ उल्लू

चित्र संख्या : २७ काला तीतर

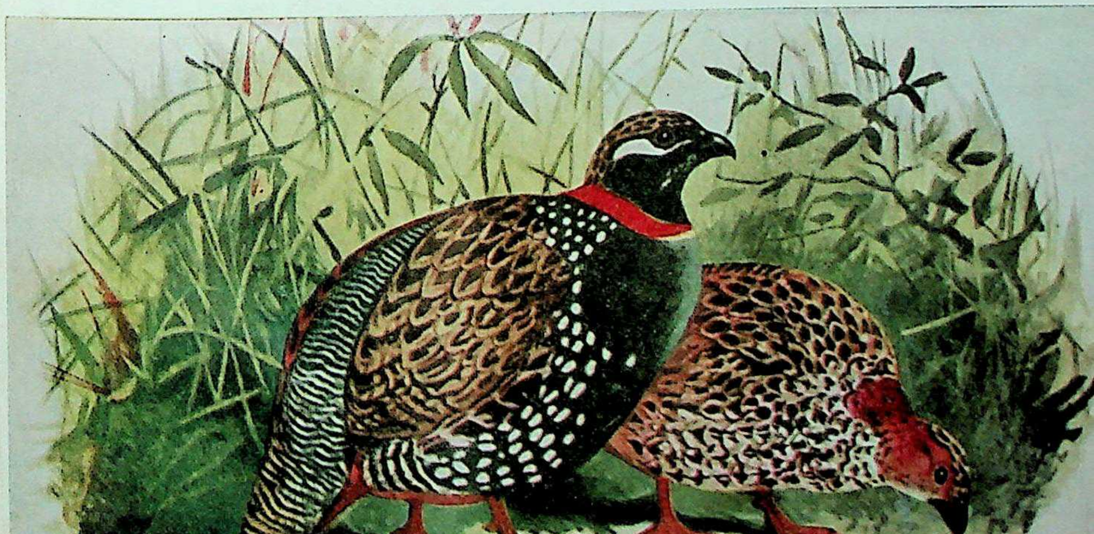

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : २८ भटतीतर

चित्र संख्या : २९ सोहन चिड़िया

चित्र संख्या : ३० चकोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनावट बड़ी सुन्दर होती है । इस देश में भी होते हैं, बाहर से भी आते हैं, खास कर आस्ट्रेलिया तथा मलय प्रायद्वीप से । सिंगापुर से आने वाले जहाजों में ये सैंकड़ों की तादाद में आते हैं और कलकत्ते के बाजार में बिकते हैं । एक प्रकार के मूर्छा रोग से ये आनन-फानन शरीर त्याग देते हैं । अतएव इन्हें बड़ी सावधानी से रखना होता है । वृक्षों के झुरमुट में ये इस प्रकार छिपे होते हैं कि छोटा कद और हरा रंग होने के कारण इनका पता तब तक नहीं मिलता जब तक कि ये एक स्वर से चीं-चीं चूं-चूं करना नहीं शुरू कर देते । रात में वृक्ष की डालों से ये पांव ऊपर सिर नीचे करके लटके होते हैं ।

ताड़ और खजूर के वृक्षों पर ये बहुत टूटते हैं, प्रातः होते ही चुपके से वहां पहुंच कर घड़ों से ताड़ी चुरा-चुरा कर पी जाना उनका आये दिन का काम है । जी भर कर ताड़ी पी कर ये नशे में बेहोश बहुधा वृक्ष की डालियों अथवा जमीन पर पड़े पाये जाते हैं ।

लेख के आदि में जिस शुक-सभा की चर्चा की गयी है उसमें हिस्सा बटाने वाले तोतों की संख्या बहुत बड़ी थी । देश-देश के तोते वहां एकत्रित थे । कहते हैं संसार में कुल प्रायः १६० किस्म के तोते पाये जाते हैं । इनके अलावा भी कुछ किस्में थीं जो खेद है कि धीरे-धीरे विलीन होती गयीं । उदाहरण के लिए फिलिप द्वीपीय तोते को लीजिए । इस वंश का अंतिम तोता सन् १८५१ में नजर आया था । फिर वह न दिखाई दिया ।

भारतवर्ष में तोता पालने की परिपाटी युगों से चली आ रही है । पुराणों में इसकी चर्चा है । एक जमाना था जब कि शायद ही कोई ऐसा घर मिलता जिसमें तोते का पिंजड़ा न टंगा हुआ हो । आज भी धर्मप्राण हिन्दुओं के घर में इसकी पूछ पूर्ववत् ही बनी हुई है ।

तोते फल और अन्न पर ही बसर करते हैं, कीड़े-पतंगों को कभी छूते तक नहीं। वैष्णवी आहार है इनका, और शायद इसलिए भी हिन्दू मात्र में इनका इतना आदर है ।

तोते की यह विशेषता है कि वह मनुष्य की बोली बड़ी आसानी से सीख लेता है । उसकी आवाज हू-बहू मनुष्य-जैसी होती है। पिंजरबद्ध सुग्गों को बहुधा पालने वाले लाल मिर्चें खिलाया करते हैं और वे बड़े चाव से इन्हें खाते हैं । कहते हैं, इससे उनकी आवाज तेज़ और साफ़ होती है ।

अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि बायरन ने इटली के सम्बन्ध में लिखा था—

इटली! इटली! इतनी छवि क्यों
धारण की तुमने, हा हंत ।[1]

तोते के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है । पर जहां तोते का उपर्युक्त गुण उसके बन्दी-जीवन का कारण बनता रहा है वहां उसकी सुन्दरता कवियों के भव्य भावों को उभारती भी रही है और न जाने कितनी सुन्दर काव्य-पंक्तियों की सृष्टि का हेतु बनी है । उदाहरणार्थ आकाश से सूर्य-रश्मियों में चमकने वाले हरे पंख

---

१. इटली को अपने अनुपम सौन्दर्य के कारण बारम्बार बाहरी लुटेरों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा था, अतएव उसकी यह सुन्दरता उसके लिए घातक वर ही सिद्ध हुई ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के तोते उतर रहे हैं, इसकी चर्चा, आदि पुराण के निर्माता गुणभद्र ने कितने सुन्दर ढंग से की है—

यत्र शालिवनोपान्ते खातपतन्तीं शुकावलीम्,
शालिगोप्योऽनुमन्यन्ते दधतीं तोरणश्रियम्।

—धान के खेतों के पास आकाश-मार्ग से उतरती हुई शुक-पंक्तियां, जो तोरण की शोभा पा रही थीं, कृषक बालाओं के द्वारा सम्मानित हुईं।

और फिर—

शुकाऽच्छुकच्छदच्छायैरुचिरांगीस्तनांशुकैः
छोत्कुर्वतीः कलक्वाणं सोऽपश्यच्छालि गोपिकाः।

—उसने उन गोपबालाओं को देखा जिनके अंगों का लावण्य पांख से पांख सटा कर उड्डीयमान तोतों की छाया से सुशोभित स्तनवस्त्रों से निखर रहा था तथा जो मधुर ध्वनियों से उनका वारण कर रहीं थीं।

शुकों की इन पंक्तियों को देख कर महाकवि कालिदास का भी हृदय सोच उठा था—

मुखैरसौ विद्रुमभंगलोहितै
शिखाः पिशंगीः कलमस्य बिभ्रती,
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला
धनुश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति।

—मूँगे के समान लौहवर्ण चोंचों से धान की पकी हुई पीली बालों को धारण करते हुए, शिरीष के समान कोमल अंगवाले शुकों की पंक्तियां इन्द्रधनुष की शोभा पा रही हैं।

तोते की स्वामि-भक्ति का भी एक उदाहरण मुझे पिछले दिनों देखने को मिला। भारतीय संसद् के मेरे एक साथी हैं, बंगाली सज्जन। उनका एक तोता है। वह उनके कलकत्ते के घर में, और दिल्ली के भी घर में जबकि वह यहां संसद् की बैठक के सिलसिले में रहा करते हैं, खुला हुआ ही, बन्धन-मुक्त अवस्था में रहा करता है, घर के कमरों में, अड़ोस-पड़ोस में, वृक्षों पर, स्वेच्छा से विचरता है। बाकी समय उनके पांवों के पास अथवा उनके कन्धे पर बैठा रहता है। उनकी अनुपस्थिति में घर में किसी आगन्तुक के आने पर ज़ोरों में बोलने लगता है। यदि वह बीमार होते हैं तो उनकी चारपाई के पास ही सारा समय गुज़ारता है। उनके बाहर से लौटते ही उनके पास आकर चिल्ला-चिल्ला कर खुशी जाहिर करता है। सुबह होते ही उनके पांवों पर ठोकर दे-दे कर उन्हें जगाने लगता है। गरज यह है कि उसके सारे आचरण परिवार के किसी व्यक्ति जैसे ही होते हैं। किसी के आते ही वह उनसे पूछने लगता है—इनि के ? इनि के ? (ये कौन हैं ? ये कौन हैं ?) दिन रात में केवल दो बार ही भोजन करता है, वह भी अपने ही बर्तन में। गर्म चाय पीने का उसे खास शौक है।

यही नहीं, निम्नोक्त उक्ति का वह अपवाद भी है, खुला रह कर भी कभी वन की ओर नहीं भागता—

द्राक्षां प्रदेहि मधु वा वदने निधेहि,
देहे विधेहि किमुवा करलालनानि,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति-स्वभाव चपलः पुनरेष कीरः
तथैव यास्यति कृशोदरि मुक्तबन्धः।

—तोते को तुम चाहे दाख खिलाओ, मधु पिलाओ, हाथ से सहलाओ, किन्तु स्वभाव से चंचल यह मुक्तबन्धन होते ही वन की ओर भागेगा ।

तोते तरह-तरह के खेल भी सीख लेते हैं और भांति-भांति के करिश्मे दिखलाते हैं । ऐसे ही एक तोते का ज़िक्र किपलिंग (अंग्रेज़ी भाषा के प्रसिद्ध लेखक और कवि) ने अपनी एक पुस्तक में करते हुए लिखा है कि दिल्ली की सड़कों पर उसने एक बार एक तोता देखा जो कि कसरत तथा फौजी कवायद में पूरा दक्ष था । कभी टार्च जलाता, कभी एक छोटी-सी बन्दूक ले कर चलाने का अभिनय करता, कभी मृतवत् लेट जाता, फिर जी उठता—इस तरह अनेक तमाशे दिखाया करता था ।

तोते को यदि आप चिढ़ायें तो वह आगबबूला हो जाता है तथा ज़ोरों से काट बैठता है । इसका काटना काफ़ी तकलीफदेह होता है । पांव से ही यह हाथ का काम लेता है । आपने अक्सर इसे पांवों से फल पकड़ कर, नोंच-नोंच कर, खाते देखा होगा ।

भारतीय जन-जीवन के साथ इस पक्षी का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । पक्षियों में ज्ञानी या पंडित कहाने का सौभाग्य इस देश में तोते को ही प्राप्त है ।

ज्ञान गरिमा के साथ-साथ वयोवृद्ध होने के कारण इनके पास अनुभवों का भारी भंडार भी है; कहते हैं, ये ६०–७० साल तक आसानी से जिन्दा रह सकते हैं । इसलिए मानव-समाज ने इन्हें पंडित की उपाधि देकर कोई ग़लती नहीं की है, उचित ही किया है ।

प्राचीन काल में यह परिपाटी थी, जो अब समाप्तप्राय हो चली है, कि वरवधू का प्रथम मिलन, विवाहोपरान्त, जिस वासकगृह (कोहबर) में हुआ करता था उसे घर की औरतें भांति-भांति से सजाती तथा दीवार पर तरह-तरह के चित्रांकन किया करती थीं । इन भीति-चित्रों में प्रमुख स्थान सुग्गों का होता था । यही नहीं, माताएं वधू के साथ जो कपड़ों के बने खिलौने भेजा करती थीं, वे ज्यादातर तोते हुआ करते थे । तोते की लोक-प्रियता का प्रमाण हमे सन् सत्तावन के गदर के समय भी मिलता है । कहते हैं, गदर के बाद जब अंग्रेज़ों के उत्पीड़न से त्रस्त दिल्ली के नागरिक शहर छोड़-छोड़ कर भागने लगे तब भी तोते का पिंजड़ा ले जाना वे न भूले । काज़ी फ़ज़्ल हुसैन खां नामक एक शायर ने उन्ही दिनों शहर छोड़नेवालों के सम्बन्ध में लिखा था—

न सर पर टोपी है उनके न पांवों में जूती,
बगल में तोते का पिंजड़ा-नबी जी भेजोजी।

इसे कहते हैं—तोता-प्रेम !

तोते के संपर्क से मानव-समाज सदा से लाभान्वित होता आया है । एक ज़माना था जब तोतों के मुख से रामनाम सुन कर हम अपने चित्त को शान्ति प्रदान करते थे, तभी तो अम्बपाली ने विकल होकर कहा था—

हे तरु-तरु के फल-भोक्ता, हे
वन-उपवन के वासी कीर !
सुनने को प्रभु नाम हुई मैं
तुझसे आतुर, विकल, अधीर ।

* * *

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रमणशील तुम, हे विहंगवर,
हे पंडित, हे ज्ञान-गभीर !
मेरे अति अशान्त इस मन को
कर दो, कर दो, शान्त, सुधीर ।

पर अफ़सोस कि अब हम उसके इस सदुपयोग से क्रमशः वंचित होते जा रहे हैं। किन्तु भगवद्स्मरण कराने वाले पक्षी के प्रति किसी ने ठीक ही कहा है,—

द्विजकुलपते, मेधासिन्धो, सुभाषितकोविद,
त्वयिगृहमुपयाते जातं बहुपकृतं मम;
यदिह नियतं बालावृद्धाः स्त्रियः परिचारिका,
शुक भगवतो नामप्रीता गृणन्ति मुहुर्मुहुः ।

अर्थात् हे बुद्धिसागर, द्विजकुलपति सुभाषित कोविद, शुक ! मेरे इस घर में तेरे आ जाने से मेरा बड़ा उपकार हुआ है क्योंकि तेरे बहाने घर के सब लोग रामनाम तो लेने लगे हैं ।

पर इसका परिणाम बेचारे तोते के लिए बुरा ही हुआ । आज़ादी खोनी पड़ी। किसी सहृदय व्यक्ति ने तभी तो कहा—

अखिलेषु विहंगेषु हत स्वच्छन्द चारिषु
शुक ! पञ्जरबन्धस्ते मधुराणां गिरोफलम् ।

मैना

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।

—मेघदूत

शुक और सारिका उन भारतीय पक्षियों में हैं जिनकी इस देश के कथा-साहित्य में बड़ी चर्चा है । ये दोनों ही वाचाल, अत्यन्त वाक्पटु पक्षी हैं । एक समय था जबकि साधारण जनता से लेकर लोकपाल तक में इनकी बड़ी कद्र थी ।

तोता और मैना दोनों ही बड़ी आसानी से दूसरों की बोली सीख लिया करते हैं । जब ये पर्दे की ओट से मनुष्य की बोली बोलते हैं तो यह समझना कि यह मनुष्य नहीं बल्कि कोई और बोल रहा है, कठिन ही नहीं, असम्भव है । पर मैना में एक विशेषता है जो तोते में नहीं है । वह विभिन्न पक्षियों की बोली और गाने आप-से-आप सीख लेती है । अभी पिछले दिनों मुझे शिमला जाने का मौका मिला । वहां जिस उद्यान-भवन में मैं ठहरा था उसके करीब ही एक विशालकाय चीड़ के वृक्ष पर प्रतिदिन सुबह-शाम एक पहाड़ी मैना बैठी हुई विविध पक्षियों के गाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके ही स्वर में गाया करती थी । पहाड़ी मैना का यह एक खास गुण है और इसमें शक नहीं कि यदि इसे यत्नपूर्वक प्रसिद्ध गायिकाओं के गीत सिखाये जायें तो यह बड़ी खूबी से उनके ही स्वर में उनके लोकप्रिय गीत भी गा सकती है ।

अफसोस ! देशी मैना, जो हमारे बाग-बगीचों में, नगर-नगर में, गांव-गांव में, उड़ती फिरती है, इस महती गुण-गरिमा को न प्राप्त कर सकी । कैसा आश्चर्य है कि जिसका रात-दिन का सम्बन्ध गांवों और शहरों से है वह तो जंगली बनी रहे और जिसका पहाड़ों के जंगल में निवास है, वह सुसंस्कृत हो तथा बोलने और गाने दोनों में उसकी इतनी तमीजदारी, इतनी बारीकी हो ! इसे विधि की विडम्बना न कहें तो और क्या कहें ?

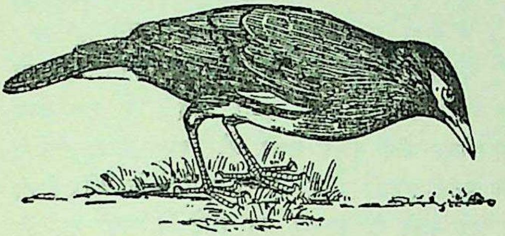

पर, जैसा कि एक कहावत है 'न अच्छे गीत गाऊंगी, न राजा के घर जाऊंगी', पहाड़ी मैना को अपने संगीत-गुण के कारण बहुधा अपना स्वातंत्र्य खोना पड़ता है, पिंजरबद्ध बनना पड़ता है । ऐसी ही एक मैना पर सहानुभूति के आंसू गिराते हुए अमीर अली मीर ने कहा था—

मैना, तू वनवासिनी, पड़ी पींजड़े आन !

इस मैना को अपनी लोकप्रियता की गहरी कीमत चुकानी पड़ती है । किन्तु देशी मैना इसके ठीक विपरीत, आज़ाद बनी फिरती है । सौन्दर्य की तरह संगीत-गुण भी कभी-कभी संकट का कारण बन जाता है, इसका यह भी एक दृष्टान्त है ।

मैना इस देश के प्रसिद्ध-परिचित पक्षियों में है तथा इसकी बहुतेरी उपजातियां हैं । मुख्य ये हैं—

१. **देशी मैना** : यह हमारी सबसे अधिक जानी-पहचानी मैना है जो प्रायः सारे देश में पाई जाती है, सिवाय उत्तर कश्मीर तथा बलूचिस्तान के जो अब पाकिस्तान में शामिल है । ८,००० फुट की ऊंचाई तक यह देखने में आई है । दक्षिण अफ्रीका, मारिशस, न्यूज़ीलैन्ड आदि देशों में भी यह यहां से यह सोचकर ले जाई गई कि फसल को नष्ट करने वाले कीड़ों को मार डाला करेगी । इसका वहां खूब वंश-विस्तार भी हुआ । पर अब वहां के निवासी अपने इस काम पर पश्चात्ताप कर रहे हैं क्योंकि कीड़े तो फसल को नुकसान ही पहुंचाते थे, मैना का बढ़ता हुआ वंश तो उसका संहार ही करने पर तुला हुआ है । मनुष्य सोचता कुछ है, होता कुछ और है ।

फसल ही नहीं, उन देशों के बहुतेरे सुन्दर-सुन्दर पक्षियों के बच्चे तथा अंडों के लिए भी ये खतरनाक हो रही हैं; इनके उत्पात के कारण, कहते हैं, लोगों को नाक में दम है ।

कौआ और मैना—ये दो ऐसी चिड़ियाँ हैं जिनसे भारत का कोना-कोना परिचित है । इस देश में ऐसा कोई गांव और घर नहीं जहां इनके चरण न पहुंचते हों । पर, जैसाकि एक अंग्रेज पक्षी-प्रेमी का कहना है, जहां कौए का हृदय सदा पाप-भार से दबा रहता है—चोरी और डकैती जैसे कुकृत्यों की स्मृति से—वहां मैना यह सोच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर कि हमने ऐसे कोई दुष्कर्म नहीं किये, हमारी अन्तरात्मा साफ है, सदैव आत्म-विश्वास एवं साहस से परिपूर्ण रहती हैं—कौओं की तरह वह हमेशा सशंक नहीं बनी रहतीं ।

मेरे कमरे के ठीक सामने बुलबुल के एक जोड़े ने घोंसला बना रखा ह जिसमें दो नवजात शिशु चीं-चीं चूं-चूं किया करते हैं । बुलबुलें आसपास बैठी हुई उनकी निगरानी करती हैं । एक शाम की बात है । मैं खड़ा इन बुलबुलों का चहकना सुन रहा था । इतने में 'पर्यटन् विविधान् लोकान्', घूमता-घूमता एक कौआ वहां आ निकला । बस उसे देखते ही बुलबुलें उस पर टूट पड़ीं तथा उसे दूर भगा आईं । मैं इस दृश्य को देखकर अवाक् रह गया । कहां कौआ जैसा मुचंड पक्षी और कहां बुलबुल जैसी छोटी चिड़िया जिसके पास सिवा एक मुठ्ठी हड्डी और दो छोटे पंखों के और है ही क्या ? फिर भी कौआ आत्मबल की कमी के कारण इस छोटे से पक्षी का भी मुकाबला न कर सका ।

शान्तिकाल में ये मैनाएं अलग-अलग खिचड़ी भले ही पकायें, किसी बाहरी दुश्मन के दिखते ही ये एक हो जाती हैं—जैसा कि दुर्योधन ने एक बार कहा था : पारस्परिक झगड़ों में पांडव पांच, हम सौ हैं, पर किसी तीसरे के खिलाफ हम एक सौ पांच हैं । यही हाल इन मैनों का भी है । जहां किसी दुश्मन को इन्होंने देखा—सर्प, नेवला, बाज़ या शिकरे को—ये इकट्ठा होकर जोरों से आवाज करना शुरू कर देती हैं और इस कदर आवाज करती हैं कि सुननेवाला फौरन समझ जाता है कि अमुक जगह पर पूर्वोक्त जीव-जन्तुओं में से कोई घुस आया है । मैनों के शोर करने के कारण न जाने कितने सर्पों का पता लगा है और उन्हें मनुष्य के हाथों प्राण देने पड़े हैं ।

मैना के नर और मादा में काफी पारस्परिक प्रेम होता है तथा बहुधा वे चोंच से एक दूसरे के पर संवारते हुए नज़र आते हैं ।

दिनभर ये अलग-जोड़ों में हमारे मकान की छतों पर, गृह-प्रांगण में अथवा बाग-बगीचों में विचरतीं फिरती हैं—पर सन्ध्या होते ही ये गिरोह बांधकर एक साथ हो जाती हैं और किसी तरु-शाखा पर या टेलीग्राफ के तारों पर कतार बांध कर बैठी हुई देर तक—जब तक कि घने अन्धकार से पृथ्वी ढंक न जाय—शोर करती रहती हैं, मानों कोरस में गा रही हों ! फिर सब की सब एक ही डाल पर एक साथ रात गुजारती हैं । कभी-कभी आधी रात में अथवा रात के पिछले पहर में जोरों से एका-एक शोर भी कर बैठती हैं । घोर रात्रि में ये इस प्रकार क्यों शोर कर उठती हैं इसका पता आज तक कोई न पा सका ।

भोजन के मामले में ये सर्वभक्षी हैं । दाना चुगती हैं, कीड़े-मकोड़े खाती हैं और मौका मिलने पर मरी हुई छिपकलियों तथा मृत पक्षी को भी अपना आहार बना डालती हैं । शायद इस तामसिक आहार के ही कारण ये कभी-कभी आपस में खूब लड़ती भी हैं । एक दूसरे पर ज़ोरदार आक्रमण करती हैं । दूर जाने की ज़रूरत नहीं, आपके गृह-प्रांगण में ही यदि आप चाहें तो यह अपना दंगल दिखा देंगी । दिन में प्रायः कई बार इनकी झपटें हुआ करतीं हैं—अधिकतर नरों के बीच, मादा के लिए । प्राचीनकाल में जैसे किसी अविवाहिता सुन्दरी के लिए अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकपाल आपस में लड़ पड़ते थे--प्रसिद्ध सुन्दरी हेलेन के लिए तो ट्रॉय का-सा महायुद्ध उठ खड़ा हुआ तथा इलियम के समान सुन्दर नगरी को भस्मीभूत होना पड़ा था--वैसे ही मादा के पाणिग्रहणार्थ इनके बीच भी कभी-कभी घोर संघर्ष उठ खड़ा होता है । नर चंगुल और चोंचों के सहारे एक दूसरे पर भीषण आघात करते हैं । बाग-बगीचों तथा गृह-प्रांगण, एवं अड़ोस-पड़ोस की शान्ति कुछ काल के लिए भंग सी हो जाती है । कितना अच्छा होता कि हम इन्हें भी 'पंचशील'--सहअस्तित्व—के सुन्दर सिद्धांत सिखा पाते !

उपर्युक्त बातों से यह साफ़ ज़ाहिर है कि इनमें मादा की संख्या कम और नर की अधिक है । कारण अज्ञात है ।

जिस समय खेतों में हल चलते रहते हैं, ये हलों के पीछे-पीछे चला करती हैं तथा ज़मीन से मिट्टी के साथ-साथ बाहर निकले हुए कीड़े-मकोड़ों को पेट भर खाती रहती हैं ।

इनके अंडे देने का समय जून से अगस्त तक है । साधारणतः चार-पांच अंडे एक साथ देती हैं । ये मकान की छतों पर अथवा मकानों, वृक्षों और कुंओं के सूराखों में घोंसले बनाती हैं, जिनके निर्माण में तरह-तरह की चीज़ों—घास-फूस, काठ के छोटे-छोटे टुकड़े, रुई के टुकड़े, चिथड़े, सर्प की केंचुल आदि—का इस्तेमाल करती हैं । ये घोंसले देखने में असुन्दर और बेडौल होते हैं ।

पता नहीं, हमारे घरों से इनको इतना प्यार क्यों है । दिन भर हमारी छतों पर, दीवारों पर, प्रांगण में ये घूमती तो रहती ही हैं, कभी-कभी शयन-कक्ष अथवा स्नानागारों में भी अपने घोंसले बना डालती हैं और इस प्रकार हमें असुविधा में डाल देती हैं । ऐसी ही एक घटना पिछले वर्ष दिल्ली में हुई ।

मेरे एक संसद्सदस्य मित्र हैं जो जैन मतावलम्बी हैं । वे एक मास के लिए दिल्ली से बाहर, कलकत्ता चले गये पर बदकिस्मती से अपने 'बाथरूम' का रोशनदान खुला छोड़ गये । लौटने पर उन्होंने देखा, घर में एक देशी मैना घोंसला बना कर अंडे से रही है और वह भी एक ऐसी जगह पर कि पानी के हौज की जंजीर खिंचते ही सारा घोंसला नीचे आ गिरे । मेरे मित्र कट्टर जैनी थे : किसी हिंसात्मक कार्य में किस तरह पड़ें ! घोंसला गिरा नहीं कि अंडे फूटे—हज़रत बड़े हैसबैस में पड़े । पर अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि जब तक अंडे-बच्चों की समस्या हल न हो जाय, वह 'बाथरूम' का इस्तेमाल न करेंगे और इस तरह पूरे एक महीने तक वह इसके व्यवहार से वंचित रहे—तब तक जब तक कि अंडों से बाहर निकलकर बच्चे उड़ने लायक न हो गये और एक दिन स्वयं वहां से विदा न ले गये ।

कनिंघम ने लिखा है—

"हमारे घरों में मैना बेखटके अपनी जगह बना लेती है और 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' को चरितार्थ करते हुए वह जब, जहां, जितने समय तक इच्छा होती है, जम जाती है ।"

पर ऊपर की घटना से स्पष्ट है कि ये कभी-कभी हमारे साथ सम्पर्क स्थापित

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते, घनिष्ठता बढ़ाने में, सीमा का उल्लंघन भी कर बैठती हैं और इस तरह हमें काफ़ी तकलीफ़ भी पहुंचाती हैं ।

मना की मुख्य किस्में इस प्रकार हैं :—

१. **किलँहटा मैना :** साधारण, देशी मैना को 'किलँहटा' मैना भी कहते हैं । मैनों में यह सबसे बड़ी—प्रायः ११ इंच की—होती है । नर और मादा के रूप में कोई अन्तर नहीं—खैरा रंग; सर, गर्दन, दुम, सीना काला; पेट और डैनों के कुछ भाग, पूंछ का सिरा एवं निचला हिस्सा सफ़ेद, आंख की पुतली ललछौंह भूरी; चोंच की जड़ से नेत्रों के नीचे तक का गोश्त तथा पैर पीले; यही इस मैना की रूप-रेखा है । यह हमारे अति-परिचित पक्षियों में है ।

२. **दरिया मैना :** इसे गंगा मैना, किलनहियां, चही आदि नामों से भी पुकारते हैं । कद में यह देशी मैना से छोटी पर रंग-रूप में प्रायः उसके ही समान होती है । सर और गर्दन काले तथा शरीर का बाकी हिस्सा भूरा होता है । चोंच नारंगी रंग की एवं नेत्र के चारों ओर का चमड़ा लाल होता है ।

नदियों के कगार में घोंसला बनाने के कारण ही इसका नाम दरिया मैना पड़ा है । एक साथ बहुत सी मैनाएं घोंसला बनाती हैं और साथ-साथ उपनिवेश बनाकर रहती हैं । घोंसला बनाने का समय अप्रैल से जुलाई तक है । इसकी आदतें बहुत कुछ देशी मैना की सी हैं । नर और मादा का रूप-रंग, स्वभाव आदि एक से ही होते हैं । हिन्दुस्तान के बाहर यह मैना नहीं के बराबर पाई जाती है ।

३. **गुलाबी मैना :** देखने में इसकी सुन्दरता अद्वितीय है । सर, वक्षस्थल तथा डैने बिलकुल काले, शरीर का शेष भाग सुन्दर गुलाबी होता है । गर्मियों में ये न जाने कहां से झुंड-की-झुंड इस देश में आ जाती हैं, जाड़ों में कहीं अन्यत्र चली जाती हैं । फसल को इनसे काफी नुकसान पहुंचता है ।

४. **तेलिया मैना :** गुलाबी के ठीक विपरीत ये जाड़ों में झुंड-की-झुंड आती हैं, गर्मियों में किसी दूर देश में चली जाती हैं, जहां घोंसले बनाती हैं, अंडे देती हैं और फिर सर्दियों में जल-वायु-परिवर्तन के लिए हमारे देश में आ पहुंचती हैं । इन्हें तिलोरी भी कहते हैं । इनका रंग काला और खूब चमकीला होता है, शरीर पर जहां-तहां बादामी चित्तियां सौन्दर्य-वृद्धि करती हैं । फूल का रस इन्हें अतिशय प्रिय है—महुए के फूलों का खासतौर पर ।

५. **अबलखा मैना :** अबलख रंग, शरीर काला, गाल श्वेत, चोंच नारंगी रंग की । पैर और दुम पर सफ़ेदी, चोंच का सिरा भी सफ़ेद । कद किलनहियां के बराबर; नर और मादा में कोई अन्तर नहीं ।

अन्य मैनाओं में तथा इसमें एक ज़बर्दस्त फर्क यह है कि यह उनकी तरह घरों में या सूराखों में घोंसले न बनाकर पेड़ों पर बनाती है । फूलों का रस, तथा वृक्षों के फल भी इसे उतने ही प्यारे हैं जितने कि कीड़े-मकौड़े । यह भी झुंडों में रहने वाली मैना है । वर्षाकाल में वृक्षों पर एक साथ इनके दर्जनों घोंसले आपको नज़र आयेंगे । एक साथ रहने के कारण ये निर्भीक-सी रहती हैं ।

६. **पहाड़ी मैना :** यही वह मैना है जिसे हम यथार्थरूप से वनवासिनी कह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कबूतरों का जोड़ा

चित्र संख्या : ३१

State Museum,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोटन कबूतर पंख फैलाकर जमीन पर लोटते हुए

चित्र संख्या : ३२

चित्र संख्या : ३३

लक्का कबूतर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते हैं क्योंकि यह गांवों और शहरों में न रहकर जंगलों में—वृक्षों पर रहती है। फल ही इसका आहार है। देशी मैना की तरह ज़मीन पर फुदक-फुदक कर चलना इसे नहीं आता। दुम और डैने तथा चोंच और पैर भी छोटे पर काफी मज़बूत होते हैं। इसके परों का रंग काला होता है। किन्हीं-किन्हीं पर सफ़ेदी भी होती है। चोंच नारंगी, आंखें काली, पैर और सिर की त्वचा पीले रंग की होती है। नाक पर के बाल खड़े होते हैं। पहाड़ी या जंगली मैना की एक उपजाति है जिसमें एक विचित्रता यह है कि जहां बर्मा तथा उत्तर भारत में पाई जाने वाली इस मैना की आंखें चमकदार पीली होती हैं, वहां दक्षिण भारत में प्राप्य मैना की आंखें कान्तिहीन नीली होती हैं। दरअसल मैना जाति-मात्र में ही यह देखा गया है कि एक ही किस्म या जाति की मैनाओं में जहां तक आंख का सम्बन्ध है, अनेक वर्ण-भेद पाये जाते हैं।

पहाड़ी मैना को फूलों के रस-पान का उतना ही शौक है जितना कि फुलचुही और शकरखोरा को। अतः पराग-संक्रमण में यह भी काफी सहायक होती है। पहाड़ी मैना पहाड़ों पर तो पाई जाती है, बर्मा, ताइलैंड, मलय तथा मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों आदि में भी यह प्राप्य है। यही वह मैना है जिसे अपनी सुमधुर बोली के लिए पिंजड़ों में बन्द होना पड़ता है। अमीर खुसरो की इन पंक्तियों में शायद इसी की ओर इशारा है—

आठ पहर मेरे ढिग रहे,
मीठी प्यारी बातें कहे।
स्याम बरन औ राते नैना,
ऐ सखि, साजन? ना सखि, मैना।

गिरोह बांधकर उड़ते समय यह परों से वैसी ही आवाज़ करती है जैसी कि हारिल।

७. **पवई मैना :** इसका बदन गहरे बादामी रंग का होता है। डैनों का कुछ हिस्सा काला होता है और दुम के नीचे का हिस्सा सफ़ेद। माथ का रंग काला होता है। ऊपर एक काली चोटी भी होती है।

इसकी आंख की पुतली में हरापन लिए हुए सफेदी होती है। चोंच का अग्रभाग पीला, बीच का हरा और जड़ नीली रहती है। पैर चटक पीले रंग के होते हैं।

इसके अंडा देने का समय मई से अगस्त तक है। तरु-कोटर अथवा मकान की सूराखों में यह घोंसला बनाकर अंडे देती है।

पवई का गला सुरीला होता है—गाने में यह प्रवीण है, और इसीलिए बहुधा इसे भी पिंजरबद्ध होना पड़ता है।

साधारण मैना की भांति यह भी सर्वभक्षी है तथा गिरोह बनाकर दरख्तों पर खूब शोर भी मचाती है। घर के आंगन की अपेक्षा खेत और पगडंडियां इसे ज्यादा पसन्द हैं। कद में सबसे छोटी है। नर और मादा इसकी एक-सां ही होती हैं। औरों की अपेक्षा इसकी दुम अधिक लम्बी है। इस जाति की मैना को बंगाल में 'मुंगेर पवई' के नाम से पुकारते हैं। सम्भव है, किसी जमाने में इसके पूर्वज मुंगेर (बिहार के एक जिले) से ही बंगाल को गये हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलकत्ते में 'अंडमन पवई' नाम की भी एक मैना बिकती हुई नज़र आती है जिसका रंग सफेद होता है । पीठ पर हल्का भूरापन तथा चोंच काली होती है । कद में और पवइयों से यह कुछ बड़ी होती है । गला सुरीला होता है ।

मैना पक्षी की ये खास उपजातियां हैं । इनके अलावा भी और कई किस्में हैं, पर इस देश में अधिकांशतः पायी जाने वाली किस्में यही हैं ।

पिछले दिनों एक रेलवे स्टेशन के प्लैटफार्म पर यात्रियों की भीड़ की कतई परवाह न कर, दाना चुंगते हुए, मुझे चार ऐसे मैना दीख पड़े जो ऊपर जिन उपजातियों का उल्लेख है, उनसे बिलकुल भिन्न थे । यही नहीं, शोखी में भी औरों से कहीं बढ़े-चढ़े मालूम पड़ते थे । इसी तरह मैना की और भी कई किस्में हैं जिन्हें श्रेणी-बद्ध करना कठिन है ।

मैना की बहुत कुछ आदतें कौए से मिलती हैं, पर इसका दिल कौए-जैसा काला नहीं होता—महाकवि शेक्सपियर के शब्दों में—

I am not black in my heart, though yellow in my legs!

'मैं दिल से काली नहीं
पांव मेरे भले ही पीले हों ।'

—यह सही तौर पर कह सकती हैं ।

कस्तूरा

कस्तूरा उस जाति की एक चिड़िया है जिसे गर्मी बिलकुल पसन्द नहीं है और शायद इसीलिये ग्रीष्म ऋतु में यह पहाड़ों से नीचे उतरती नहीं, बल्कि आठ-दस हजार फुट की ऊंचाई पर ही अधिकतर रहती है। जाड़ों में यह पहाड़ों से उतर कर हमारे देश में आती है तथा अपने सुरीले गले से हमें आनन्द प्रदान करती है । पहाड़ी नदियों के किनारे विचरती हुई यह कीड़े-मकोड़े तथा घोंघे इत्यादि छोटे जीव-जन्तुओं से अपना पेट भरती रहती है । घोंसला भी नदी, झील या झरनों के अड़ोस-पड़ोस में बनाती है ।

इसके गाने का समय उषा-काल है । जब हम बिस्तर पर अर्ध-निद्रावस्था में पड़े रहते हैं, धीरे-धीरे तम का जाल फटता है तथा उसके भीतर से उषा-काल का झिल-मिल प्रकाश झांकने लगता है, ऋषि गण निद्रा त्याग कर कुटी से बाहर निकलते और कहते हैं—

'वन्दे देवीं जगद्वन्द्यां, उषमपि वन्दे भगवतीम्'

'हे संसार की वन्दनीया देवि उषे, भगवति ! मैं तेरी वन्दना करता हूं ।'—तो उसी ज्योति की वर्षा के पवित्र समय में कस्तूरा भी सरिता-तट के किसी वृक्ष की डाल से अपने सुमधुर स्वर में गा उठती है । और उसकी ध्वनि उस शान्त वातावरण में दूर-दूर तक पर्वतों के बीच गूंज उठती है। तभी हम समझ जाते हैं कि अब सूर्योदय होने में विलम्ब नहीं है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

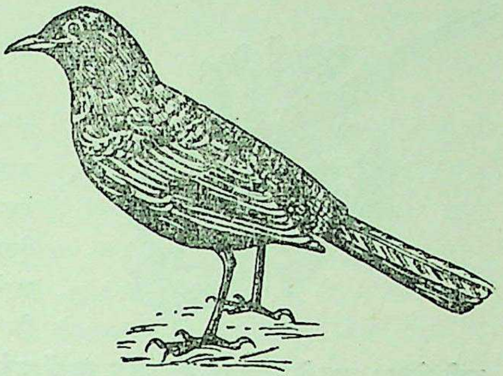

कद में यह एक फुट से बड़ी होती है, बनावट में सुघड़। रंग इसका नीला-वायलेट के फूल की तरह का होता है। रंग में चमक होती है। चोंच पीली तथा पैर काले होते हैं। नर और मादा में कोई अन्तर नहीं होता। दक्षिण भारत में एक छोटे कद की कस्तूरा भी पाई जाती है जिसकी चोंच पीली नहीं, काली होती है।

एक और पक्षी है जिसके वदन का रंग काला होता है, चोंच नारंगी लाल तथा पांव नारंगी कत्थई वर्ण के होते हैं। इसे भी कस्तूरा की ही एक किस्म मानते हैं। पर इसमें मतान्तर है। यह हिमालय से लेकर मणिपुर तक में पाई जाती है। इसकी आवाज भी वड़ी सुरीली है।

कस्तूरा की यह खास आदत है कि वह बारम्बार अपनी पूंछ को फैलाती रहती है।

पता नहीं इस जाति की चिड़ियों का नाम कस्तूरा क्यों पड़ा। क्या पर्वत पर विचरने वाले कृष्णसार की नाभि से टपकती हुई कस्तूरी का भक्षण करने के कारण ?

शकरखोरा

ओ मधु चाखन-हार, विहंग !
चंचल-चित्त मधुर अति वाणी
सुघड़ सलोना अंग।
किन परियों का, कौन देश से
आए तजकर संग ?
किस पुष्पा के आकर्षण में,
लाया खींच अनंग ?
ओ मधु चाखन-हार, विहंग !

उस छोटे से पक्षी को देखकर, जो हमारी पुष्प वाटिका में फूल बेलों के मधुर अधरों का अपनी चोंच से पान करता हुआ अक्सर विचरता रहता है, ये प्रश्न मन में आप से आप उठते हैं। यही है वह शकरखोरा जो फूल के रस से ही अपनी वासना तृप्त करता है—और शायद उदरपूर्ति भी। जिस तरह बसन्त काल में भौंरे फूलों पर मंडराते रहते हैं उसी भांति शकरखोरे भी।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

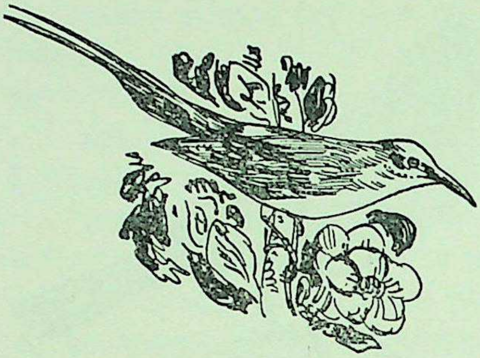

कद में यह बड़े भौंरे से थोड़ा ही बड़ा होता है । रंग-भेद से इसकी कई किस्में हैं पर दो मुख्य हैं जो इस देश में पाई जाती हैं——एक वह जिसका रंग हल्का बैंगनी होता है, दूसरी गाढ़े बैंगनी रंग की । पर इसके बैंगनी रंग में कुछ ऐसा चमकीलापन है कि प्रकाश-भेद से इसके कई रंग मालूम पड़ते रहते हैं, जैसे कि छांह में काला, धूप में कभी हरा, कभी नीला । ऋतु के अनुसार भी इसके रंग में फर्क आता रहता है ।

नर का रंग वसन्त काल में अधिक चित्ताकर्षक रहता है, सन्तानोत्पत्ति के बाद जाड़ों में बदल कर मादा जैसा हो जाता है, खूबसूरती कम हो जाती है । वसन्त से लेकर वर्षा काल तक इसे मादा को आकर्षित करने, फूल-बाला का दिल लुभाने की आवश्यकता रहती है, शायद इसीलिए यह ज्यादा भड़कीली पोशाक पहने रहता है । फिर जब जोड़ा बांध लेता है, घर में बाल-बच्चे हो जाते हैं, तो सादगी अपना लेता है ।

इसकी चोंच लम्बी और नुकीली होती है, किंचित मुड़ी हुई-सी । इसके द्वारा वह फूलों में छेद करके रस-पान किया करता है । यह मधुपायी भी है और मधुभाषी भी । इसकी बोली कानों को बड़ी प्यारी लगती है ।

फूलों में रस आया नहीं कि शकरखोरे आ पहुंचे । वसन्त के आते ही जब सेमल वृक्ष पर पुष्प-मधु के प्याले ढलने लगते हैं तो वहां मधुपायी पक्षियों का मेला-सा लग जाता है । ऐसे स्वर्ण संयोग को शकरखोरे कब छोड़ने वाले हैं ? वे सबसे पहले वहां आ जाते हैं और सन्ध्याकाल तक मधु मदिरा के प्याले ढालते रहते हैं, जी भर पीते हैं, फिर भी नहीं अघाते, सुबह होते ही दूसरे दिन पुनः वहां आ पहुंचते हैं । हफ्तों तक उनका यह सिलसिला जारी रहता है । सेमल का यह वृक्ष ही मानों उनका मदिरालय है ।

मधुमक्खियों की तरह शकरखोरे भी फूल का पराग स्त्री-केशर तक पहुंचाते रहते हैं और इस प्रकार नए फूल और बीज की सृष्टि में सहायक होकर वंश-विस्तार के कारण बनते हैं । यह इनकी सर्वश्रेष्ठ उपयोगिता है ।

शकरखोरे की यह खास आदत है कि यह उड़ता हुआ भी फूलों का रस पी लेता है । मुंह का स्वाद बदलने के लिए जब-तब छोटे-छोटे कीड़ों को भी खाता रहता है ।

घोंसला यह फरवरी से लेकर अगस्त तक बनाता है । यह घोंसला डाल या टहनी से लटकता हुआ तथा मकड़ी के जाल से सुगठित होता है । इसके भीतर नाना प्रकार की वस्तुएं रखी रहती हैं, यहाँ तक कि स्टाम्प भी पाए गए हैं । स्वभाव से मधुपायी और विलासी होने के कारण इसे मुलायम सेज की जरूरत पड़ ही जाती है, अतएव यह अपने घोंसले के भीतर सेमल की रुई भी बिछाए रहता है जिसपर मियां-बीबी उस समय भी आनन्द से सोते हैं जबकि बाहर बादल गरजते होते हैं, बिजली कौंधती है, बूँदें पड़ती रहती हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी मादा प्रजनन-क्रिया में बड़ी सिद्धहस्त है—साल में एक नहीं, तीन-तीन चार-चार बार अंडे देती है । इसके अंडों के प्रबल शत्रु हैं–सांप, कौए, गिलहरियां । फिर भी इनकी संख्या घटती नहीं है और आज भी पुष्प वाटिकाओं में ये दर्जनों की संख्या में विचरते रहते हैं ।

शकरखोरा वंश की ही एक छोटी सी चिड़िया है फूलचुही जो कद में अत्यधिक छोटी पर चुलबुलाहट में काफी बढ़ी-चढ़ी है । इसे फूलों से बड़ा प्रेम है । उनका रस तो पीती ही है, छोटे-छोटे फूलों को भी यह अधरों के रास्ते अपने भीतर छुपा रखती है । देखने में इसका ऊपरी हिस्सा, गर्दन से पीठ तक, कंजई होता है जिसमें हरे रंग की झलक आती है; नीचे का हिस्सा पीलापन लिए हुए सफेद होता है । दुम और डैने भूरे रंग के होते हैं । चोंच स्लेटी रंग की होती है जिसमें पीलापन रहता है । पैर भी स्लेटी रंग के होते हैं जिनमें पीलेपन की भी झलक आती रहती है ।

फुदकी या दर्जिन

बया यदि अपना घोंसला बुन-बुन कर तैयार करता है तो फुदकी (फुदक फुदक कर चलने से ही यह फुदकी कहलाती है) सी-सी कर । निस्सन्देह यह भी एक कलाविद् पक्षी है । इसकी कारीगरी भी सराहनीय है ।

कद में यह गौरैये से भी छोटी है, पर उन चिड़ियों में है जो हमारे बाग-बगीचों में, मकान के बरामदे तक में, फुदकती फिरती हैं । यही नहीं, बोलती भी रहती है और दिन भर बोलती रहती है । ग्रीष्म काल की कड़ी दुपहरी हो या कि जाड़ों की सन्ध्या, इसकी बोली तथा कीड़ों का शिकार बन्द नहीं होता । बोलते-बोलते जब जोश में आती है, तो अपनी दुम ऊंची कर लेती है । इसके ऊपर के हिस्से में पीलापन लिए हुए हरापन होता है, नीचे के हिस्से में सफेदी, सर का ऊपरी हिस्सा बादामी तथा गर्दन में एक काली कंठी होती है । इसकी आंखों की पुतलियां सुर्खी मायल पीली, पैर पीलापन लिए हुए भूरे होते हैं । चोंच नुकीली होती है (चित्र संख्या : १७) ।

अब देखिए, घोंसला यह किस कारीगरी से बनाती है । पहले मकड़ी का जाल, सेमल की रुई आदि इकट्ठा कर के उसका तागा तैयार करती है, फिर पेड़ की कुछ पत्तियों में चोंच से छेद कर डालती है और तब चोंच के सहारे उपर्युक्त तागे से इन पत्तियों को सी देती है । बस, एक सुन्दर सा गोलाकार घोंसला सी-सा कर तैयार हो जाता है और यह आनन्द के साथ उसमें बैठकर मई, जून, जुलाई के महीनों में २, ३, ४ अंडे तक दे डालती है । पता नहीं, किस नारी-शिल्प-कला-भवन में शिक्षा प्राप्त करके इसने ऐसा सुन्दर घोंसला बनाना सीखा है (चित्र संख्या : ३५) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके घोंसले अधिकतर आम या अमरूद के वृक्षों पर बने होते हैं । कभी कभी जमीन से कुछ ही दूर पर, बैंगन आदि के पौधे पर भी बनते हैं । घोंसले का मुंह ऊपर, नीचे अथवा बगल में, कहीं भी होता है । घोंसला नर नहीं, मादा बनाती है ।

जोड़ा बांधने के दिनों में नर की दुम के बिचले दोनों परों की लम्बाई बढ़ जाती है, बाद में पुनः ये पर छोटे हो जाते हैं ।

बंगाल में इसे 'टुनटुनी' के नाम से पुकारते हैं । इस देश के हर प्रांत में यह पायी जाती है ।

बया

यजुर्वेद, अध्याय २४ का २४वां मंत्र है—'सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्', अर्थात् सौम्यभाव के लिए 'लवा' नाम के पक्षी को देखे, कारीगरी के लिए बया को । और इसमें शक नहीं, कि बया की नीड़-निर्माण-कला को देखकर हम चकित रह जाते हैं । छोटी सी चिड़िया और उसमें इतना कला-नैपुण्य !

बया अपने घोंसले को जुलाहे की तरह ताना-बाना देकर, बुन-बुन कर बनाती है और इसीलिए अंग्रेजी में इसे जुलाहा पक्षी के नाम से पुकारते हैं । देखने में यह ७७ प्रतिशत गौरैये की तरह की होती है और हम इसे देखें या न देखें, पहचानें या न पहचानें, पर इसके घोंसले को पहचानने में हमें देर नहीं लगती । गांव के बाहर, खेतों में खड़े हुए ताड़ के लम्बे दरख्तों पर या किसी जलाशय के करीब बबूल के वृक्षों पर यदि आपको दर्जनों तूम्बों की शकल-सूरत और आकार के घोंसले नजर आएं तो समझ लीजिए कि यही उसके घोंसले हैं जिन्हें वह बड़ी मेहनत के साथ अप्रैल-मई के समाप्त होते ही बनाने में संलग्न हो जाती है । घोंसले को देखने से ही पता चलेगा कि इस छोटी सी चिड़िया में कितना हुनर है (चित्र संख्या : ३६) । पता नहीं 'हुनर ब हुनर मन्दाने अवध' नामक पुस्तक के लेखक ने अपने ग्रन्थ में अवधी बया के इस हुनर का कहीं जिक्र किया है या नहीं ।

बया के घोंसले ताड़ के पत्ते की नोक से अथवा बबूल की ऊंची डाल से बंधे हुए लटकते रहते हैं और इस पर बैठा हुआ यह पक्षी कभी तो धरती की ओर और कभी आकाश को देखता है और नीचे की हरियाली तथा आकाश के उमड़ते हुए काले-काले मेघों को देखकर आनन्दोल्लास में गाता है। इसके घोंसले बनाने की विधि इस प्रकार है—

सबसे पहले बया अपनी चोंच से सरपत, केला, कांस आदि की सींकों को चीरती है, इनके कई टुकड़े करती है और फिर इन टुकड़ों के रेशों को ताड़ के पत्ते या बबूल की टहनी के सिरे से जोड़ देती है । डोर की लम्बाई पांच से बारह इन्च तक की होती है । इसी डोर से नीचे की ओर लटकता हुआ इसका घोंसला होता है । यह नीचे की ओर गोल और ऊपर पतला होता है । इसका प्रवेश द्वार नीचे की तरफ होता है । घोंसले के दो भाग होते हैं—एक वह, जिससे होकर बया बाहर से प्रवेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करती है, दूसरा वह जिसमें किंचित ऊपर जाकर वह फिर नीचे की ओर उतरती है। गरज यह कि घोंसले में एक तो कोठरी होती है जिसमें मादा अण्डे देती है, और दूसरी सुरंग होती है। इसकी बनावट ऐसी होती है कि कोई भी दूसरा पक्षी आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता है, पर बया, जो कि इसकी रूपरेखा से पूर्णतः परिचित रहती है, उड़ती हुई भीतर प्रवेश कर जाती है। घोंसला हल्का होने की वजह से हवा में झूलता रहता है। इसका हल्कापन कम करने के उद्देश्य से, ताकि यह जोरों में न झूल कर मन्द-मन्द झूलता रहे, बया मिट्टी लाकर प्रसव-ग्रह में डाल देती है। पेड़ों पर उड़ते हुए जुगनू कभी-कभी आप-से-आप इसमें आ घुसते हैं और रात्रि में गृह को प्रकाशित करते रहते हैं, और घर के लघु प्रदीप से लगते हैं।

वर्षाकाल के आरम्भ होते ही बया घोंसला बनाना शुरू कर देती है। एक ही वृक्ष पर एक-साथ अनेकों बनाती है। सबसे पहले नर घोंसला बनाने के काम में लगता है। वह अकेले घर का बाहरी ढांचा तैयार कर लेता है। तब मादा उपस्थित होती है और अन्दर जाकर गौर से घोंसले का निरीक्षण करती है। नर उत्सुकतापूर्वक उसके निर्णय की प्रतीक्षा करता है। मादा को यदि घोंसला पसन्द आ गया तो वह उसके प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है, और गृह-निर्माण में हाथ बटाने लगती है; वह भीतर बैठी हुई अपनी रुचि के अनुसार नीड़ का भीतरी हिस्सा सरपत आदि के तारों से बुन-बुन कर तैयार करती है। दोनों के संयुक्त परिश्रम से जब वह पूरी तरह तैयार हो जाता है तो वे जोड़ा बांधते हैं। मादा अंडे देती है, जिनकी संख्या दो से चार तक हुआ करती है, और उन्हें सेने में संलग्न हो जाती है।

इधर नर दूसरा घोंसला बनाने में लग जाता है और इससे आकर्षित होकर जब कोई दूसरी मादा आकर उपस्थित होती है और उसका प्रणय-प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो वह उसके संग भी दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस तरह वह प्रजनन-ऋतु में आठ-आठ दस-दस मादाओं के संग जोड़ा बांधता है। आम तौर पर नर बया में ही बहुपत्नीत्व प्रवृत्ति पाई जाती है, पर कहीं कहीं मादा में भी बहुपतीत्व प्रवृत्ति पाई गई है। नर को अपने हाव-भावों से रिझाने का भी। बया में नरों की संख्या अधिक है, मादा की कम। अतएव अक्सर चार-चार छः-छः नर एक मादा को रिझाने की चेष्टा में संलग्न पाए जाते हैं।

बहुधा ऐसा भी होता है कि बया नया घोंसला न बनाकर अंडा देने का समय आते-आते पुराने की ही फिर से मरम्मत कर लेती है और उसे फिर से आबाद करती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बया के घोंसले बड़ी निपुणता से बने होते हैं, ऐसे कि इनके भीतर आंधी-तूफान तक का कोई असर नहीं पहुंचता, अतएव ये कई वर्षों तक आसानी से टिकते हैं।

अपने पुराने घोंसले को प्रसव-काल आने के पूर्व फिर से आबाद करने की प्रवृत्ति मैंने बुलबुलों में भी पाई है। मैं जिस कमरे में बैठा हुआ इन पंक्तियों को लिख रहा हूं उसके बरामदे में गत कई वर्षों से बुलबुलों ने एक घोंसला बना रक्खा है जिसमें वर्षाकाल आते ही नर और मादा आ पहुंचते हैं तथा अंडे देकर बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। फिर बच्चों के पंख होते ही उन्हें साथ लेकर

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे किसी दूर देश को चल देते हैं। फिर ये वर्ष भर नज़र नहीं आते, घोंसला शून्य पड़ा रहता है। प्रजननकाल के आते ही वे पुनः इसमें आ पहुंचते हैं। कई वर्षों से यह सिलसिला चल रहा है।

बया एक दूसरे प्रकार का घोंसला भी बनाती है जो झूला जैसा होता है। इसमें अंडा देने का कोई प्रबन्ध नहीं रहता, अन्दर बैठकर वह केवल झूला झूलती है और कहां क्या हो रहा है, इसे देखती रहती है। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो 'कबीर' की इस उक्ति को वह चरितार्थ कर रही हो—

राम झरोखा बैठि कै, सब का मुजरा लेय,
जैसी जाकी चाकरी वैसो वाको देय।

बया कभी अकेले घोंसला नहीं बनाती, झुंड-के-झुंड एक साथ, एक ही वृक्ष पर बनाती हैं और इसमें शक नहीं कि यह प्रकृति से ही बुनने वाला एक जुलाहा-पक्षी है। यदि आप उसे पिंजड़े में रक्खें और कुछ घास-फूस के टुकड़े दे दें तो वह वहीं घोंसला बुनना शुरू कर देती है और तराने भी लगाती है, मानो कबीरदास के शब्दों में कहती हो—

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

नर और मादा दोनों आकार-प्रकार में गौरैये की तरह के होते हैं। पर नर में एक विलक्षणता है। वर्षाकाल के आते ही जब उसे मादा को अपनी ओर आकर्षित करना होता है—उसका रंग बदल जाता है। आंख से लेकर सीने के ऊपर तक का भाग स्याही लिए हुए गहरा भूरा हो जाता है, शीर्ष-भाग और वक्षस्थल पीले हो जाते हैं, पेट में सफेदी आ जाती है, ठोढ़ी स्याह सी दीखने लगती है। चोंच इसकी खूब मोटी होती है, वह वैसी ही रहती है।

बया की ही एक जाति है जो इस देश में मारिशस द्वीप से आकर कलकत्ते के बाजारों में बिका करती है। इसे मैडागास्कर का बया कहते हैं। जोड़ा बांधने के समय इसका प्रायः समूचा बदन गहरा लाल हो जाता है, डैने तथा दुम में कत्थईपन रह जाता है। चेहरे के दोनों ओर काली धारियां भी होती हैं।

जोड़ा बांध लेने के बाद इनका रंग फिर पहले जैसा हो जाता है—गौरैये जैसा, छोटी काली और सफ़ेद धारियों से युक्त कत्थई भूरा। बया के मुँह का आकार सुन्दर नहीं होता तथा मुँह पर एक प्रकार की उदासी-सी छाई रहती है, अतएव उदास मुँह वालों के लिए 'मुँह चोचा सा' एक कहावत बन गई है (चोचा बया का ही एक नाम है।)

बया की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण होती है। पाली हुई बया तरह तरह के खेल सीख लेती है, जैसे कि पानी भरना, बन्दूक चलाना, मालिक के मुंह से दाने ले आना, इत्यादि।

मालिक को यह अच्छी तरह पहचानती भी है। फ्रैंकलिन नामक एक अंग्रेज पक्षी-प्रेमी ने लिखा है कि उन्होंने कई बया पक्षी पाल रक्खे थे। एक बार इनमें से दो उड़ कर कहीं चली गईं और डेढ़ दिनों तक गायब रहीं। दूसरे दिन जब घर के पास की ही सड़क से वह गुज़र रहे थे, दोनों पक्षियों को उन्होंने सर के ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

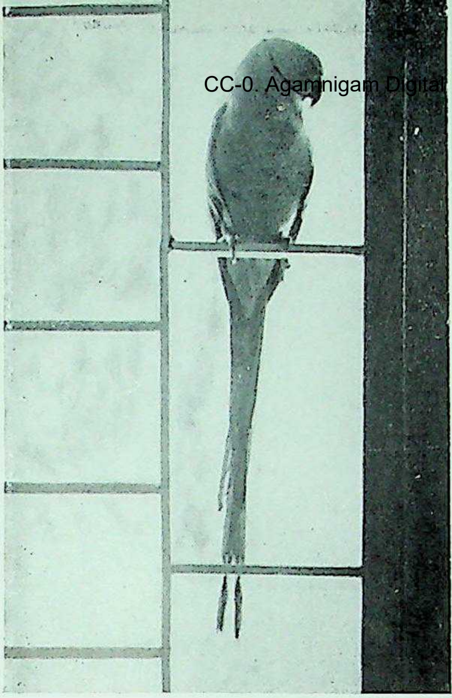

तोता

चित्र संख्या : ३४

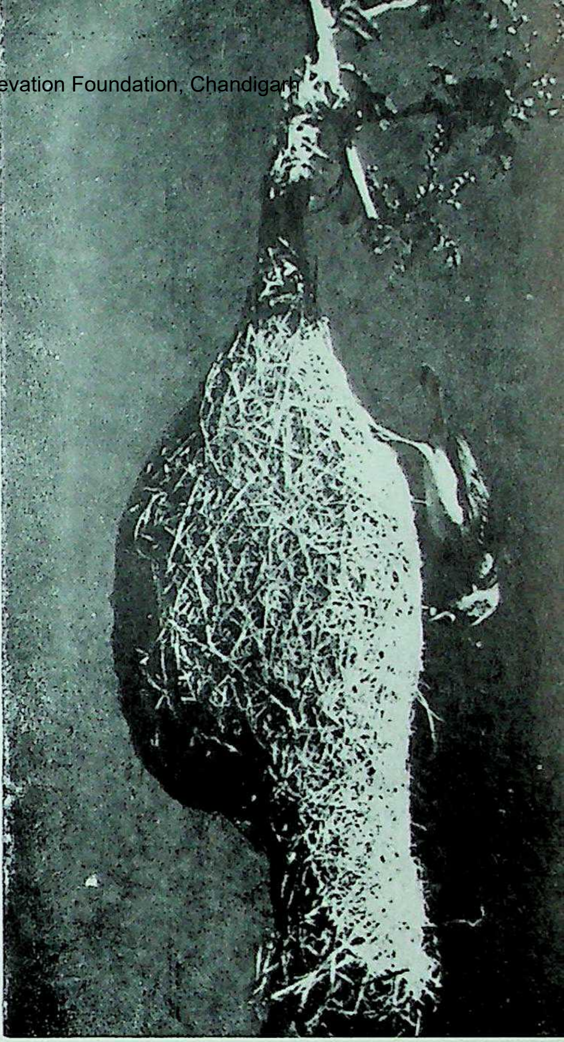

चित्र संख्या : ३६

बया का घोंसला→

चित्र संख्या : ३५

दर्जी पक्षी अपने घोंसले पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

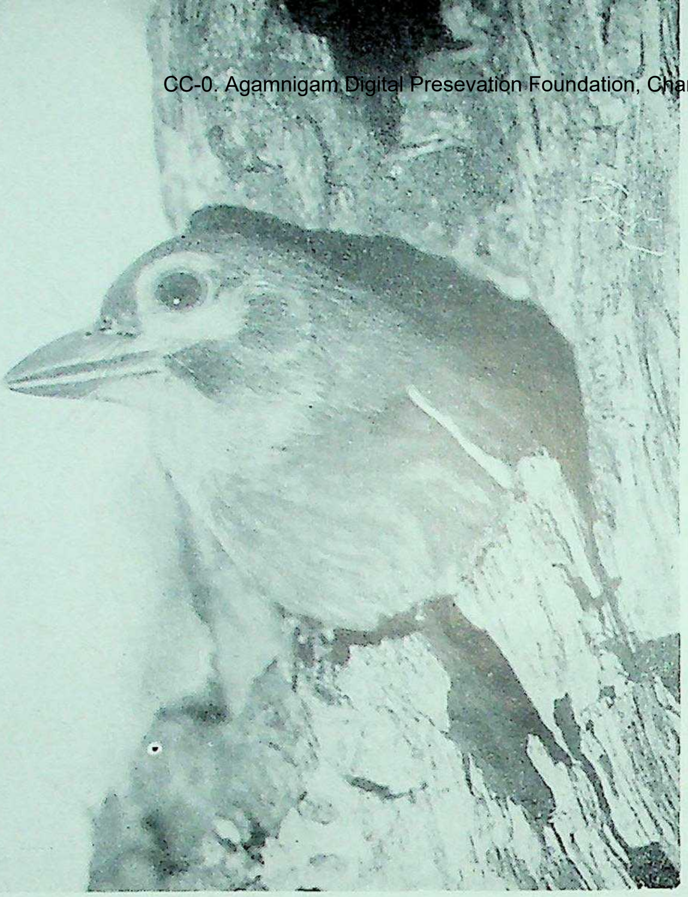

छोटा वसन्ता

चित्र संख्या : ३७

हुदहुद

चित्र संख्या : ३८

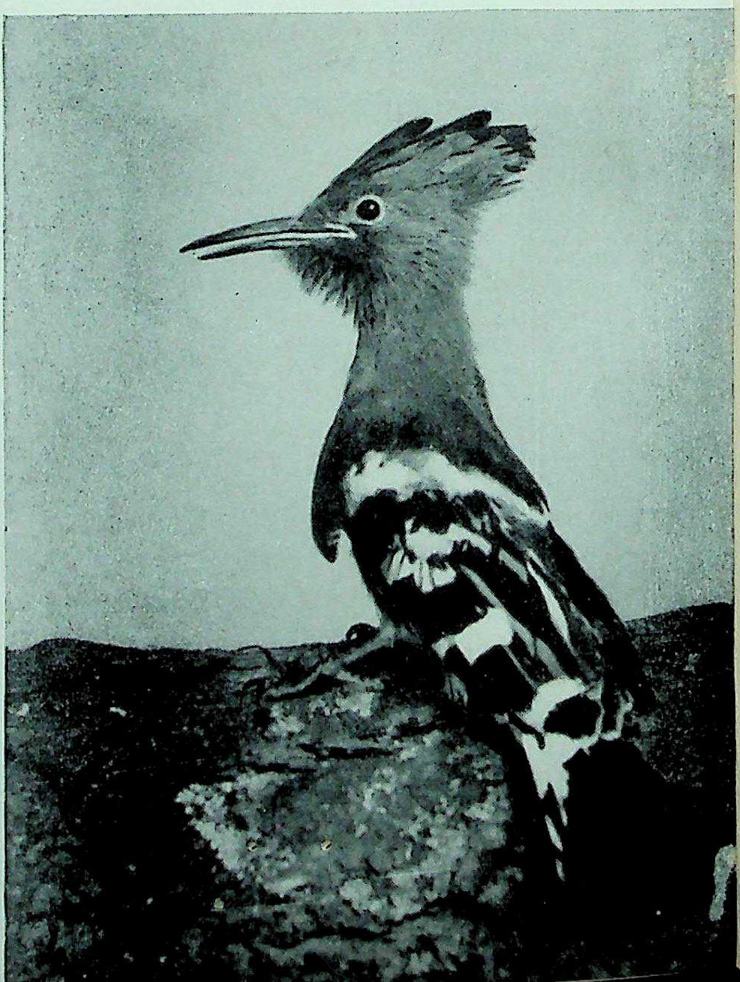

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उड़ते पाया । बुलाते ही वे उनके पास आ गयीं और मिस्टर फ्रेंकलिन बड़ी आसानी के साथ उन्हें पकड़ कर अपने घर लेते आए ।

बया की भी कई किस्में हैं । इनके रंग में भिन्नता है, पर इनकी आदतें एक जैसी ही हैं । इनमें एक प्रकार की बया होती है जिसकी चोंच बहुत बड़ी होती है । कद भी छोटी मैना के समान, औरों से काफी बड़ा होता है । यह अधिकतर हिमालय की तराइयों में पाई जाती हैं । कलकत्ते के आस-पास भी देखी गई हैं ।

स्वभावतः बया शोर मचाने वाला पक्षी है । जब कभी इनकी संख्या दो-तीन से अधिक हुई, शोर मचना शुरू हुआ, लड़ाई-झगड़े छिड़ गए । फिर तो वहां रहना मुश्किल हो जाता है । खास कर जब ये घोंसले दरख्तों पर न बनाकर किसी उद्यान-भवन के बरामदों में आकर बना लेती हैं और झगड़ने लगती हैं तो वहां रहना मुश्किल हो जाता है । कलह से इस पक्षी को स्वभावतः बड़ी मोहब्बत है ।

पक्षियों में बया अपने घोंसले के लिए मशहूर है और इसमें शक नहीं कि इसके निर्माण में वह जिस कुशलता का, जिस कारीगरी का, जिस हुनर का परिचय देती है, वह प्रशंसनीय तो है ही, विस्मयोत्पादक भी है । तभी तो अमीर खुसरो इसकी कारीगरी देखकर दंग रह गए थे और आश्चर्य के साथ बोल उठे थे—

अचरज बंगला एक बनाया
ऊपर नींव, तले पर छाया।

और तुर्रा यह कि 'ऊपर नींव, तले पर छाया' होने पर भी यह 'बंगला' ऐसा मजबूत होता है कि बड़े-बड़े तूफान भी इसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते । इसके अद्‌भुत कला-कौशल का नमूना है यह घोंसला ।

●

बसंता

ग्रीष्म काल की दोपहरी में जब सारा संसार छांह ढूंढता फिरता है, सूर्य के ताप से ऐसा लगता है मानो सारी पृथ्वी जलकर भस्म हो जायेगी, पशु-पक्षी तक शांत भाव से किसी घनी छाया में दिन बिताते रहते हैं, चारों ओर सन्नाटा छा जाता है, कहीं किसी की आवाज़ तक सुनाई नहीं पड़ती, बिहारी के शब्दों में जब,—

कहलाने एकत बसत, अहि-मयूर, मृग-बाघ,
जगत जगत तपोवन सों कियौ दीरघ दाघ निदाघ।

और जब बेनी कवि के शब्दों में—

तवा सो तपत धरा मंडल अखंडल औ
मारतंड मंडल दवा[1] सो होत भोर तें ।

वैसे समय में भी किसी बरगद, पीपल या आम के पेड़ पर एक पक्षी कुटुर-कुटुर सा कुछ करता रहता है । जगती सून-सान सी, शान्त पड़ी हुई है, पर यह अपनी धुन में अनवरत रूप से लगा हुआ है ।

---

१. दावा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही पक्षी है वह बसंता (चित्र संख्या : ३७) जिसके सम्बन्ध में ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं। इस देश में यह कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे कि पुदरुप, कुतुरका आदि। देखने में इसके नर और मादा का रूप-रंग एक जैसा ही होता है—लम्बाई दस इंच की, आकार मैना जैसा, बदन का ऊपरी हिस्सा हरे रंग का, दुम भी, जिसके ऊपर पतली पीली लकीरें पड़ी होती हैं। गर्दन, सिर, सीना और डैने भूरे रंग के; सिर के पास कुछ पीलापन भी, चोंच मोटी और प्याजी तथा पैर हल्के बादामी रंग के होते हैं। यह बड़ा बसन्ता है।

छोटे बसन्ते का कद गौरैया जैसा होता है। डैने, पूंछ और शरीर के परों का रंग पीलापन लिए हरा, ललाट तथा गर्दन का रंग लाल होता है। ठोढ़ी, गले और आंखों के समीप पीलापन, चोंच काली, पैर इसके लाल होते हैं। पैर की अंगुलियां दो आगे की ओर, दो पीछे की ओर होती हैं।

बसन्ते गर्मियों में तो खूब बोलते हैं, दिन भर बोलते रहते हैं, पर जाड़ों में मौन हो जाते हैं। पुनः वसन्त के आते ही बोलना शुरू कर देते हैं। वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में इनकी आवाज़ अधिक बुलन्द रहती है, बरसात आते ही मन्द पड़ने लगती है और जाड़ों में तो बिल्कुल ही क्षीण, शक्ति हीन, हो जाती है। अतएव ये बोलना बन्द कर देते हैं।

'शरद, शिशिर, हेमन्त मो, भये बसन्ता मौन।'

कहावत प्रसिद्ध है।

जाड़ों में मानो ये मौन व्रत धारण कर लेते हैं। बाकी दिनों में बसन्ता (छोटा) अविच्छिन्न रूप में टग-टंग, टग-टंग करता रहता है, मानो हथौड़े से तांबे को पीट रहा हो। अपने इस शब्द के कारण ही अंग्रेजी भाषा में इसने 'कापरस्मिथ' (ठठेरा) नाम प्राप्त किया है। ग्रीष्म काल की दुपहरी में भी जब लोग विश्राम करते रहते हैं, यह पक्षी-श्रमिक अपने काम में जुटा रहता है।

कीड़े खाकर भी ये दोनों—बड़े और छोटे बसन्ते—वस्तुतः फलाहारी पक्षी हैं। अधिकांशतः वट, पीपल आदि के फलों पर ये जीवन-निर्वाह करते हैं। मौका मिलने पर हमारे बाग-बगीचों के फलों को भी चट कर जाते हैं।

कठफोड़े की तरह बसन्ता भी अपनी चोंच से काठ में सूराख कर डालता है पर जरूरत पड़ने पर ही, उसकी तरह अनावश्यक ढंग पर जहां-तहां काठों में छेद नहीं करता फिरता। हां, अंडा देने का समय—अप्रैल, मई, जून—आने पर पेड़ की डाल में सूराख अवश्य करता है और उसी में सुरंग के पीछे एक कमरा बनाता है, जिसमें मादा अंडे देती है जिनका रंग सफेद होता है। संख्या में ये तीन या चार होते हैं। बड़े और छोटे दोनों ही बसन्तों के अंडा देने का यही नियम है।

पेड़ में सूराख करके जो घोंसला बनाया जाता है वह कभी-कभी बरसों तक इनका आवास-स्थान बना रहता है। अंडे दिए, बच्चे हुए, बच्चे बड़े होकर चले गए, फिर भी बसन्ता-दम्पति उसी में निवास करते हैं, आनन्द के साथ, चैन की नींद सोते रहते हैं।

इनका नाम बसन्ता क्यों पड़ा, यह कहना बड़ा मुश्किल है। तर्क-शास्त्र के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पण्डित कहेंगे कि व्यक्ति वाचक संज्ञा किसी वस्तु के विशेष गुण को प्रकट नहीं करती, पर क्या यह सम्भव नहीं कि वसन्त के आने पर ही इनकी जबान में ताकत आने तथा बसन्ती रंग होने के कारण इनका नाम बसन्ता पड़ा ?

महोख

सुबह होते ही बस्तियों में जैसे मुर्गे बोलते हैं वैसे ही बाग-बगीचे-बंसवाड़ी, अमराइयों में महोख बोलना शुरू कर देते हैं, मानो सोने वालों को जगाते हुए कहते हों—

जागो, जागो हुआ सवेरा
त्यागो सेज, विहंग बसेरा ।

पहले एक महोख बोलता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा, और इस तरह भिन्न भिन्न वृक्षों से कई महोख बोल उठते हैं । तभी हम समझ जाते हैं कि अब सवेरा हो गया, व्योमांचल में मार्तण्ड का स्वर्ण-रथ उतरने ही वाला है ।

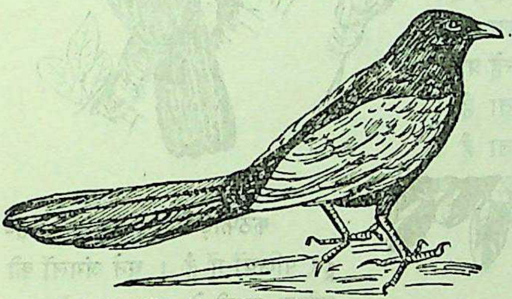

महोख लम्बी दुमवाला एक पक्षी है जिसके डैने गहरे खैरे रंग के होते हैं, शरीर का रंग काला होता है, चोंच काली तथा टेढ़ी होती है, आंखें लाल तथा पैर काले होते हैं ।

जून से सितम्बर तक इसके अंडा देने का वक्त है । घोंसला यह झाड़ियों में अथवा वृक्ष पर बनाता है । घोंसला बड़ा होता है—गुम्बज की आकृति का । फिर भी मादा की पूंछ अंडा सेते समय बाहर ही निकली रहती है । नर मादा को पूंछ फैला कर, नाच-नाच कर रिझाता है, फिर जोड़ा बांधता है ।

बोलते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हुट-हुट या कोक-कोक कह रहा हो । पेड़ पर गिलहरियों की तरह चढ़कर शिकार ढूंढता रहता है, कीड़े-मकोड़े खाता है, कभी-कभी छिपकली, छोटे सांप आदि भी भक्षण करता है ।

शायद प्रभात वेला के, जबकि भक्त अपनी निद्रा छोड़ कर भगवद्-भजन में लगते हैं, आगमन की सूचना देने वाला होने के कारण ही सन्त-महात्माओं का ध्यान यह अपनी ओर आकर्षित करता रहा है तुलसीदास की अमरवाणी तक में इसने स्थान पाया है—

कूजत पिक मानहुं गज माते,
ढेंक महोख ऊंट बिसराते ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठफोड़वा

अपने मकान के ऊपर रेडियो के तार वाले ऊंचे बांस पर आपने अक्सर एक पक्षी को देखा होगा जो बे-जरूरत उस पर ठोकर देता रहता है, मानो उसे तोड़ कर उसके दो हिस्से करने की कोशिश कर रहा हो। पर उसका ऐसा कोई उद्देश्य नहीं, केवल अपनी आदत से वह लाचार है और कहा भी है, 'यथा नामः तथा गुणः' कठ-फोड़वा होकर यह काठ न फोड़े, यह कैसे हो सकता है? काठ को देखा नहीं कि इसकी प्रवृत्ति उसे फोड़ने की होती है, और इसलिए यह पेड़ों पर बिना आवश्यकता के छेद करता फिरता है। यही नहीं, पेड़ पर छोटे-छोटे कीड़ों की तलाश में दिन भर चक्कर लगाता है और उन्हें प्राप्त कर उनसे अपनी उदर पूर्ति करता है। अधिकतर यह पेड़ों से चिपका रहता है।

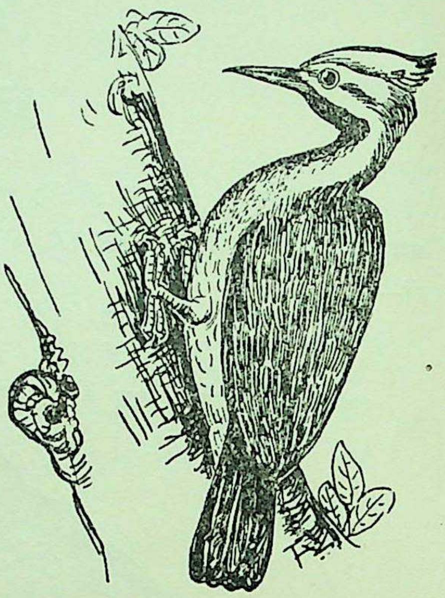

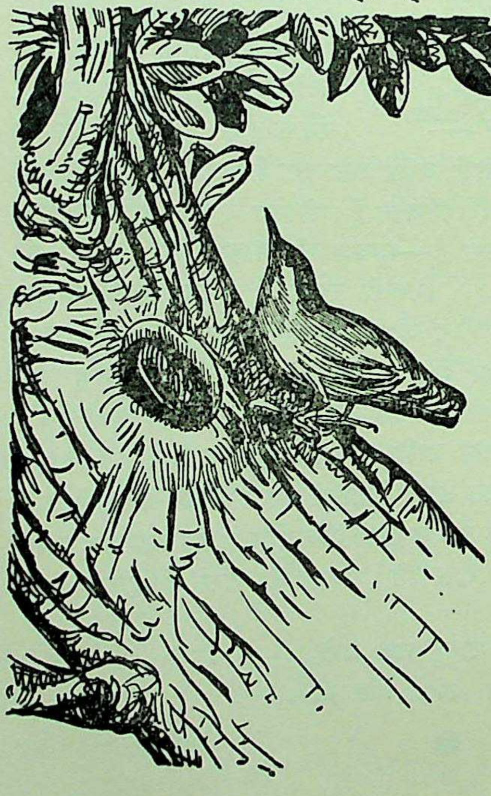

कठफोड़वा इस देश के मशहूर पक्षियों में है। घने जंगलों की अपेक्षा बस्ती के आस-पास के वृक्ष इसे ज्यादा पसन्द हैं जहां इसे कीड़े-मकोड़े अधिक संख्या में प्राप्त होते रहते हैं। इसकी भी कई श्रेणियां-उपजातियां हैं पर हमारे देश में बहुतायत से पाया जाने वाला वह है जिसका आकार ग्यारह इंच के करीब होता है। नर का सिर और चोटी लाल तथा गरदन काली होती है। नेत्र के नीचे से डैने तक एक सफेद धारी बनी होती है। पेट और छाती का रंग चितकबरा, दुम और इसके नीचे के हिस्से का रंग काला तथा पीठ का सुनहला होता है। मादा की छाती ज्यादा सफेद होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फरवरी से जुलाई के बीच किसी मोटे पेड़ के तने में सूराख करके उसी में मादा अंडे देती है।

इसकी एक छोटी सी जाति भी है जो कद में गौरैया जैसी होती है—'कठफोड़िया'। इस जाति के पक्षी जब-तब झुंड में चलते हुए भी पाए गए हैं।

इसके नर का ऊपरी हिस्सा स्लेटी मायल नीला, निचला कत्थई होता है। मादा के नीचे का रंग कत्थई की जगह बादामी होता है (चित्र संख्या : १८)। यह स्वयं काठ में छेद न करके वृक्ष के किसी कोटर में अंडे देती है, जिसके मुंह को, एक छोटा सूराख छोड़कर, चिकनी मिट्टी से बन्द कर देती है, ताकि कौए जैसे चोरों से उसका घर सुरक्षित बना रहे।

कठफोड़वा जब पेड़ में सूराख करता रहता है, उस पर चोंच से चोट पर चोट देता रहता है, तो इसकी आवाज दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। कार्य-साधन में कई रोज़ लग जाते हैं, पर जब घोंसला तैयार हो जाता है तो देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। आम के वृक्ष इसे इस काम के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

●

अबाबील

अक्सर शाम को जब सूर्यास्त के बाद भी प्रकाश बना रहता है, आपने आकाश में छोटी-छोटी चिड़ियों के झुंड को, सैंकड़ों की संख्या में, गोलाकार उड़ते मंडराते देखा होगा, मानो टिड्डियों का दल हो। ये उड़ते-उड़ते एक प्रकार का कलरव भी करती रहती हैं। यही हैं वे अबाबील जिन्हें अंग्रेजी में स्वालो पक्षी कहते हैं तथा जिनके सम्बन्ध में कीट्स ने लिखा था—

And gathering Swallows twitter in the skies,

—और झुण्ड बांधती हुई अबाबीलें आकाश में चहचहाती हैं।

उजले दिन की अपेक्षा सन्ध्या के झिलमिल प्रकाश में किसी प्राचीन मकान, मन्दिर, मस्जिद के ऊपर जहां वे अपने घोंसले बनाती हैं, उड़ना इन्हें अधिक पसंद है। ये वृक्षों पर नहीं बल्कि इन्हीं मकानों में अपने घोंसले बनाती हैं। इनके मुंह से एक प्रकार का तरल पदार्थ, जिसे हम लार कह सकते हैं, निकलता है। इसी के सहारे ये मिट्टी के भीटे में चोंच मार कर प्राप्त की हुई मिट्टी को घास-फूस के संग मकान की छत अथवा दीवार से चिपका देती हैं और इस तरह प्याले की शकल का अपना नीड़ तैयार कर लेती हैं। स्वाभाविक है कि निर्जन मकान इन्हें

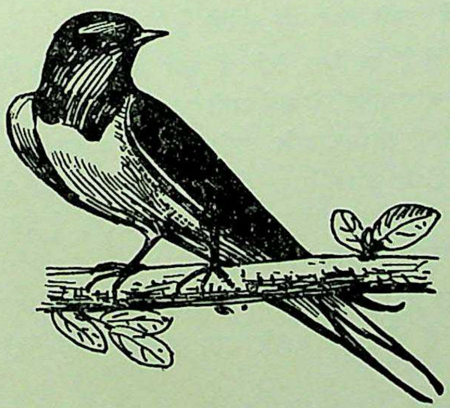

इस काम के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्हीं घोंसलों में बैठकर या उड़ते हुए ये अपना अधिक समय बिताती हैं। इनकी अँगुलियों की बनावट कुछ ऐसी है कि ये और पक्षियों की तरह वृक्ष की डालों-टहनियों पर नहीं बैठ सकतीं चूंकि उन्हें ये आसानी से पकड़ नहीं सकती हैं। चारों अँगुलियां आगे की ओर होने के कारण ये जमीन पर भी नहीं चल पातीं। इनके घोंसले बहुत कुछ मिट्टी के मकान जैसे होते हैं। इनमें ये एक सूराख बना रखती हैं जो इनके मकान का प्रवेश-द्वार होता है। चीन देश के रहने वाले, जिनके लिए संसार की अधिकांश वस्तुएं खाद्य हैं, लार से बने हुए इन घोंसलों में न जाने क्या स्वाद पाते हैं कि इनका शोरवा बना बनाकर बड़े चाव से उसे पीते हैं।

आमतौर पर अबाबील का रंग काला होता है, पीठ के नीचे एक सफेद चौड़ी धारी होती है। आकार में गौरेया से भी छोटी होती हैं, पर उड़ने में इनकी गति अत्यन्त तेज है। कई बार वायुयानों के संग इनकी प्रतियोगिता हो गयी है और हर दफा वायुयान से ये आगे रही हैं। इसी से इनकी उड़ान-शक्ति का अनुमान किया जा सकता है। अकेली न उड़ कर ज्यादातर ये झुंडों में उड़ती हैं। ये इस विचार की कायल हैं कि कलियुग में संघ में या गिरोह बांध कर रहने में ही शक्ति है, अकेले खिचड़ी पकाने में नहीं—कलौ संघे शक्तिः।

इनका शरीर छोटा, पांव छोटे, चोंच मोटी पर छोटी होती है, किन्तु इनके डैने असाधारण तौर से लम्बे, दुम लम्बी और दो-फांकी होती है। मुंह खूब चौड़ा होता है जिसके कारण ये हवा में उड़ने वाले पतिंगों को बड़ी आसानी से निगल जाती हैं। पैरों की बनावट के कारण कहिए या प्रकृतिवश, उड़ना इन्हें अत्यन्त प्रिय है तथा जल का पान अथवा स्नान भी ये उड़ते-उड़ते ही करती हैं।

ये भारत के बारहमासी पक्षियों में हैं पर जिन देशों में घोर शीत पड़ता है वहां से जाड़ों में ये अन्यत्र चली जाती हैं और गर्मियों के आते-आते पुनः आ पहुँचती हैं। यूरोपीय देशों में अबाबील का नजर आना ग्रीष्मकाल के आविर्भाव का सूचक है। अंग्रेजी की एक मशहूर कहावत है, "One swallow does not make a summer"—एक अबाबील से ही ग्रीष्मकाल नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि अबाबीलों के प्रत्यागमन से ग्रीष्मकाल का आविर्भाव माना जाता है।

गौरैयों का इनसे सौतिया डाह-सा है। जहां उन्होंने इनके घोंसले देखे, बिना पूछे-पाछे वे उन पर कब्जा कर बैठती हैं और तब आपसे आप अबाबील को वहां से कूच का डंका बजा देना पड़ता है।

इस देश में इनकी बहुतेरी किस्में पाई जाती हैं जिनमें तीन मुख्य हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) **घरेलू अबाबील** : अबाबीलों में ये सब से अधिक प्रसिद्ध और परिचित हैं। सारे यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया के अधिकांश देशों में पाई जाती हैं। पर ठंडे देशों में ये गर्मियों में ही पाई जाती हैं, जाड़ों में नहीं। हिमालय की तराइयों में भी ये अधिक संख्या में पाई जाती हैं। इनके पर ऊपर से लोहे के रंग की झलक लिए हुए नीले, नीचे से हल्के पीले होते हैं। गले तथा कपोल पर बादामी लालिमा, छाती पर एक काली धारी-सी होती है। पूंछ पर सफेद चित्तों की कतार तथा इसके पर, खास कर नर के, बड़े लम्बे, खाना खाने के कांटे की तरह के, होते हैं। अंग्रेज़ी में इसीलिए लम्बे कांटे को अबाबील-पुच्छ कांटा कहते हैं। इसके अंडा देने का समय अप्रैल-मई है।

(२) **लिशरा अबाबील** : घरेलू अबाबील से यह कद में छोटी पर देखने में उससे अधिक सुन्दर होती है। इसकी दुम असाधारण रूप से लम्बी होती है, किसी लम्बे तार के समान, और इसीलिए इसे कहीं-कहीं तार-पुच्छ अबाबील भी कहते हैं। यह साल भर अंडे देती है। बहुधा मकान के बरामदे में, मेहराबों के नीचे घोंसला बना डालती है। जल का अड़ोस-पड़ोस या किनारा इसे अधिक पसंद है। उत्तर भारत की नहरों का किनारा इसे खास तौर पर रुचिकर है। वन, रेगिस्तान, खेत इसे कतई पसंद नहीं।

विलायत में पाई जानेवाली जाति यही है। यहां भी इसे और प्रांतों की अपेक्षा हिमालय के पार्श्ववर्ती इलाके तथा कश्मीर अधिक प्रिय हैं। ५०० फुट की ऊंचाई तक यह पाई गई हैं पर गर्मियों में ही, शीतकाल में नहीं।

अन्य अबाबीलों की तरह यह गिरोह बांध कर बसेरा नहीं बनाती। यह एकांतप्रिय है, पर उड़ते वक्त झुंड बांध लेती है।

(३) **मस्जिद अबाबील** : देखने में बहुत कुछ घरेलू अबाबील जैसी ही होती है पर इसके घोंसले का आकार-प्रकार कटोरे-जैसा न होकर बोतल-जैसा होता है। अप्रैल से लेकर अगस्त तक इसके अंडे देने का समय है।

अबाबीलों की इन तीन किस्मों के अलावा भी कई और किस्में पाई जाती हैं, जैसे, कि ताड़ी अबाबील जो ताड़ों पर ही घोंसला बनाती है; रक्त-पुच्छ, जिसकी दुम का आखिरी हिस्सा लाल होता है, आदि। पर अधिकांशतः इन सब की रूप-रेखा और प्रकृति समान होती है। संकट आने पर ये एक दूसरे की जान पर खेल कर सहायता करती हैं।

अबाबील संसार-प्रसिद्ध पक्षियों में है। अंग्रेजी भाषा के कवियों को यह विशेष रूप से प्यारी है। और इसमें सन्देह नहीं कि गोधूलि में जब ये झुंड बांध कर, वृत्ताकार, हमारे सर के ठीक ऊपर, अन्तरिक्ष में, कलरव करती हैं और तब तक उड़ती और कूदती रहती हैं जब तक कि सन्ध्या अपने मुक्त श्यामल केशों से धरती को ढक नहीं देती, तो ये हमारे अन्तर में एक अजीब भावना उत्पन्न करती हैं : इनके कलरव की सुस्मृति बहुत समय तक हमारे मानस-पटल पर अंकित रह जाती है।

रात होते ही इनका यह संगीत समाप्त हो जाता है और फिर हम एक अजीब शून्यता का अनुभव करने लगते हैं। किसी कवि की निम्न पंक्तियों में इन्हीं की ओर संकेत है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लघु तितली-से लघु-लघु विहंग
उड़ते नभ में जो इतस्ततः,
अपने अन्तिम स्वर से भर कर
व्योमांचल का रंजित आवह,
कर गए क्षितिज को शून्य अधिक,
दे गए दान पर सुस्मृति का,
रजनी के कर से हुई ज्वलित,
नभ की पहली जब सुर्वातिका।

बतासी

बतासी एक छोटी-सी चिड़िया है जो देखने में अबाबील की तरह हो कर भी अबाबील नहीं है। कलछौंह खैरा रंग, ठुड्डी, गले और दुम की जड़ के पास का हिस्सा सफेद, पूंछ के निचले हिस्से तथा सर पर के रंग में हल्कापन; आंखों के पास एक गाढ़ा चित्ता; काली चोंच; ललछौंह पैर। ऐसे पक्षियों को आपने अकसर गोल बांध कर किसी पुरानी इमारत अथवा ताड़ के वृक्षों पर खाना- बदोशों की तरह डेरा डाले या हवा में उड़ते हुए छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को खाते देखा होगा। ये न तो पेड़ों पर बैठते हैं और न जमीन पर ही आसानी से बैठ पाते हैं। इनके पैर की अँगुलियां कुछ ऐसी हैं कि उनके सहारे इनके लिए चलना, फिरना, बैठना सभी अत्यन्त कष्टप्रद होता है। अतएव ये या तो उड़ते रहते हैं या डैनों के सहारे बैठते हैं, यहां तक कि ज़ोड़ा बांधते समय भी ये डैनों पर ही बैठते हैं, पैरों पर नहीं।

पुरानी इमारतों के किसी अँधेरे कोने में रहना ये ज्यादा पसन्द करते हैं। घोंसला बनाने में मिट्टी की जगह थूक (लार) से काम लेते हैं। घोंसला बनाने के लिए पहले ये, कई एक साथ मिल कर, स्थान की खोज के लिए निकलते हैं, पहाड़ के दर्रों, पुरानी इमारतों, मस्जिद, मन्दिर आदि जगहों पर जाते हैं, और वहां इस काम के योग्य एकान्त कोने की तलाश करते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन स्थानों पर पूर्व-निर्मित बसेरों में निवास करने वाले पक्षी इनके दरवाज़ा खटखटाते ही क्रोधित होकर बाहर निकलते हैं, इन्हें डाट-डपट बतलाते हैं, इन्हें ठहरने नहीं देते और ये दुम दबा कर फौरन वहां से नौ-दो-ग्यारह होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ३९
उड़ता हुआ मोर

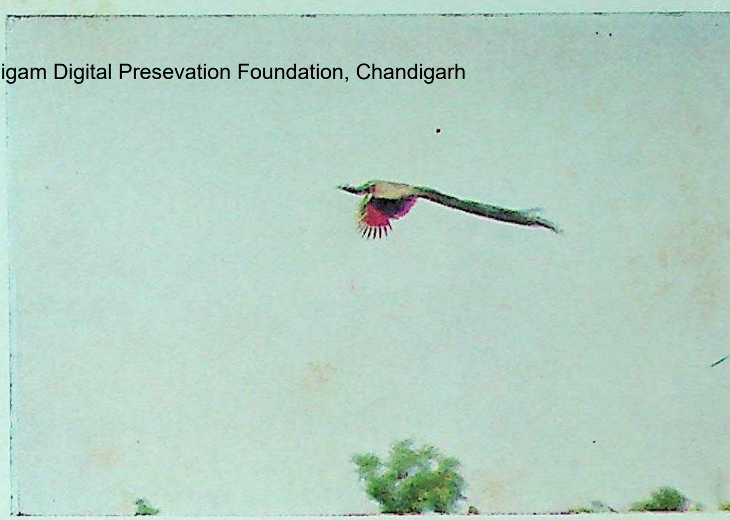

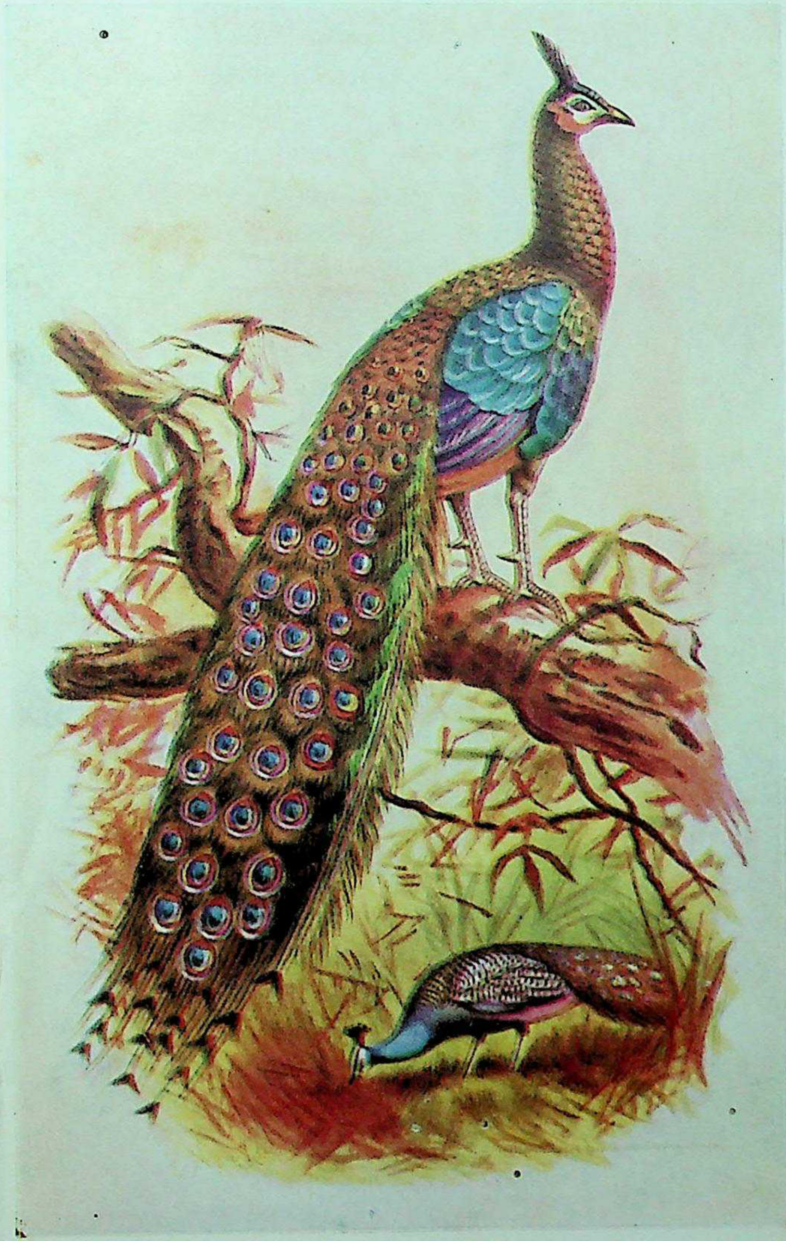

चित्र संख्या : ४०
मोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

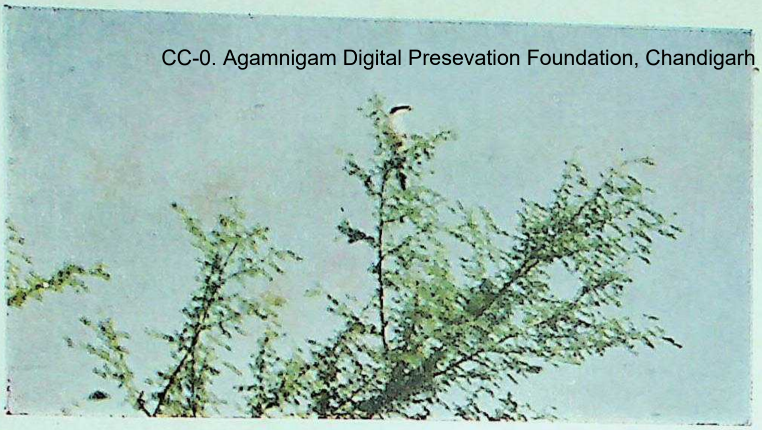

चित्र संख्या : ४१
लहतोरा

चित्र संख्या : ४२
लवा

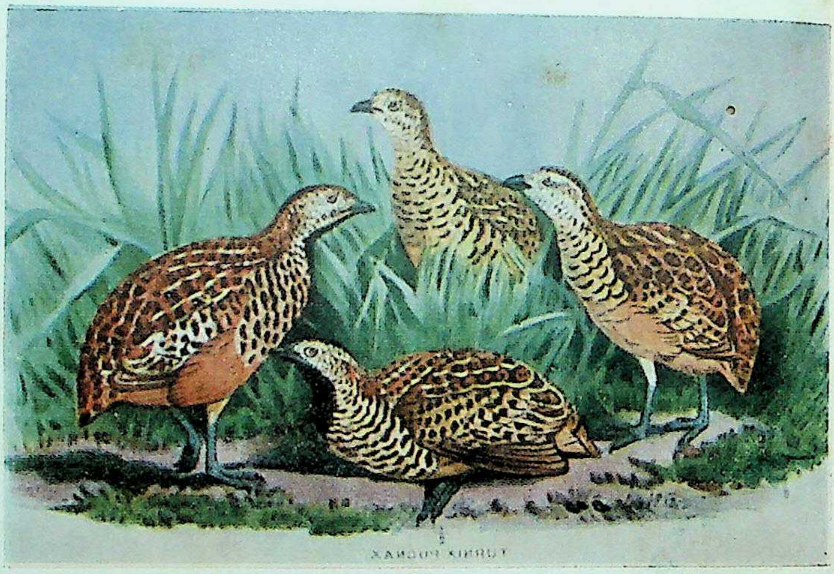

चित्र संख्या : ४३
सुरख़ाव

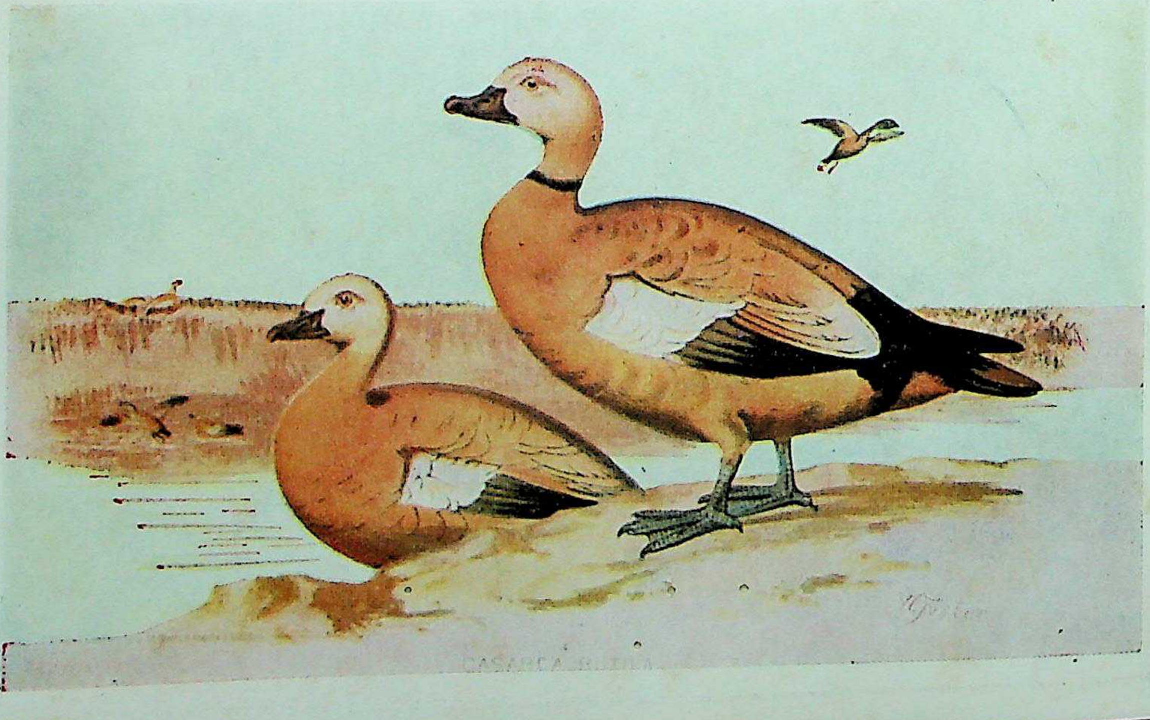

State Museum,
LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी ऐसा भी होता है कि जब ये दूसरे वर्ष अपने पुराने बसेरे पर (बतासी एक ही घोंसले में साल-दर-साल अंडे देते हैं) प्रजनन-कार्य के लिए पहुंचते हैं तो उसे भरा हुआ पाते हैं, घोंसला खाली पा कर उसमें गौरैया आदि दूसरे पक्षी डेरा डाल लेते हैं। मेहनत से बनाये हुए इनके घर पर दूसरा कब्जा कर ले—बिना इजाजत के उसमें डेरा डाले—यह इन्हें कब मंजूर होने का ? आखिर वे कोई साधू-संन्यासी तो हैं नहीं कि उनकी कुटी में जो कोई भी आये, धूनी रमा कर बैठ जाये ? अतः अनधिकारी को देखते ही ये आगबबूला हो उठते हैं, उन्हें मार भगाते हैं। पर यदि वह इनसे मजबूत हुआ तो कभी-कभी ये स्वयं ही दुम दबा कर भाग खड़े होते हैं।

बतासी उन पक्षियों में है जिनके नर और मादा का आमरण सम्बन्ध है। शीतकाल में नर और मादा अलग-अलग दूर देश को, जहां ठंडक नहीं पड़ती या कम पड़ती है, चल देते हैं। ये दूर देश की यात्रा के अभ्यासी होते हैं। कभी-कभी खाने की खोज में ये छः-छः, सात-सात सौ मील की यात्रा भी कर लेते हैं। जोड़े एक साथ कम चलते है, अधिकतर ये अकेले जाते हैं, और शायद भ्रमण-पथ पर गाते भी हैं—

एकला चल रे, एकला चल रे, एकला चल !

पर वसन्त के आते ही वे पुनः एक साथ हो जाते हैं। इनके पुर्नमिलन का स्थान इनका पुराना घोंसला होता है जिसे आकर ये फिर से आबाद करते हैं, अंडे देकर गार्हस्थ्य-धर्म का पालन करते हैं।

बतासी ज्यादातर काम अपनी पंखों से लेते हैं। इनके डैने वायुयान के डैनों की भांति बड़े मजबूत होते हैं, और लम्बे भी, और इनके सहारे ये बड़ी तेज रफ्तार से, ४० से ६० मील प्रति घंटा के हिसाब से, उड़ सकते हैं। सोना, बैठना, घोंसला बनाने के लिए घासफूस आदि चीजों का ढोना, सारे काम ये डैनों की सहायता से करते हैं। घोंसला कटोरे के आकार का बनाते हैं, और ऐसे स्थानों पर जहां प्रकाश की कमी रहती है; सूर्य की तीव्र ज्योति शायद इन्हें प्रिय नहीं है।

उड़ते-उड़ते ही ये छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को पकड़ते हैं, उन्हें स्वयं खाते हैं और नवजात शिशु को भी खिलाते हैं। अक्सर उदरस्थ कीड़ों को, जो लार से मिल कर गोली-जैसे बन जाते हैं, ये उगल-उगल कर इन्हें खिलाते हुए नजर आते हैं। इनके बच्चों की एक विशेषता यह है कि वे लगातार कई दिनों तक बिना आहार के जीवित रह सकते हैं। निराहार रहने का कष्ट बर्दाशत करने की इनमें बड़ी ताकत है।

एकांतवास के भी ये आदी हैं तथा बहुधा उन दिनों में, जब कड़ाके की सर्दी पड़ती है तुषारपात तक होता है, ये हफ्तों अपने घोंसले में निराहारावस्था में पड़े रहते हैं। हां, उन दिनों चलना-फिरना बन्द रखते हैं, शरीर की शक्ति का व्यय नहीं करते, उसे संचित रखते हैं।

जाड़ों में कीड़ों की कमी हो जाती है। जो मिलते भी हैं वे नर, मादा और नीड़ के शिशु के लिए पर्याप्त नहीं, अतएव बहुधा मीलों—कभी-कभी चार-पांच सौ मील तक—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाकर ये कीड़ों को संग्रहीत कर लाते हैं और अपनी तथा शिशुओं की उदर पूर्ति करते हैं। मकड़ियों को भी ये पकड़ खाते हैं। पर इन्हें सब से स्वादिष्ट लगती है मधुमक्खी। मधुमक्खियों को ये बड़े चाव से स्वयं खाते हैं और बच्चों को भी खिलाते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उदरस्थ कीड़ों को ये पेट से निकाल-निकाल कर बच्चों को खिलाते हैं। ये थूक से सट कर गोली के आकार के बन जाते हैं। एक बार इस प्रकार की १२ गोलियों की परीक्षा की गयी तो उनमें ३१२ प्रकार के कीड़े पाये गये।

गौरैया

१९४१ की बात है। मैं हजारीबाग के केन्द्रीय जेल में कैद था। अभी अपनी कोठरी (सेल) में आसन जमाये मुझे दो-चार दिन भी नहीं हुए होंगे कि एक दिन, जब कि मैं बैठा हुआ कुछ लिख रहा था, अचानक मेरे सर पर घास-फूस का एक बंडल आ गिरा। चौंककर ऊपर की ओर निगाह डाली तो देखा कि दो छोटे-छोटे पक्षी चीं-चीं चूं-चूं कर मेरी इस दुर्गति पर हँस रहे हैं। वे गौरैये थीं जिन्होंने जान बूझ कर या आसावधानी से अपना घोंसला मेरे सर पर गिराया था।

क्षण भर के लिए मुझे क्रोध अवश्य आया। पर कुछ ही दिनों में इन गौरैयों से मेरी काफी घनिष्ठता हो गयी। छेड़खानियां जारी रहीं, घास-फूस के टुकड़े मेज पर, बिस्तरे पर, बदन पर रोज ही गिरते रहे, कभी-कभी इनके नवजात शिशु भी। पर अब ये मुझे क्रोधित न कर मुझमें एक प्रकार का कौतूहल पैदा करती थीं। और फिर तो दो-एक महीनों में ऐसा ही गया कि इनकी अनुपस्थिति मुझे खटकने सी-लगी। एक दिन बैठा बैठा मैं इन पर कुछ लिख भी गया, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं—

री बन्दी-जीवन की संगिनि,
लघु विहंगिनी, तरणी,
सूखे मरु-प्रदेश में तू ही,
एक सरस निर्झरणी।
पूरब दिशि गगनांगण में जब
उग उठता शुक-तारा,
स्वर्ण-तूलिका से रंजित गिरि
का होता मुख प्यारा।
एक-एक कर आंखों से जब
सपने लगते जाने,
दूर प्रान्त में वन-विहगों के
होते गुंजित गाने।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो अपने चीं-चीं चूं-चूं से
तू आ मुझे जगाती,
निद्रित जीवन के दुख-सुख को
क्षण में दूर भगाती।
झम-झम कर नाचें-गायें,
मोद-भरे, भय छोड़े,
यहां न आते बन्दी-गृह में
वे कपोत के जोड़े।
तरु-पल्लव की ओट बैठते
जो आपस में हिलमिल,
यहां कभी वे नीम-वृक्ष पर,
दीख न पड़ते हारिल।
गिरि-कोटर में तू बन आयी
किरण अनोखी, पाहुन,
आ टुक मुझे सँदेश सुना जा,
नगर-नगर का चारण !

इसी भांति अनेक भाव हृदय में आते गये और मैं उन्हें पद्य-बद्ध करता गया और यह तुकबन्दी एक लम्बी-सी कविता बन गयी। निस्सन्देह इसका समस्त श्रेय बन्दी-जीवन की उस संगिनी को था जिसने स्वतंत्र हो कर भी स्वयं मेरे साथ जेल में अपने को बन्दिनी बना रक्खा था।

पूर्वोक्त तुकबन्दी में मैंने गौरैये को "नगर-नगर का चारण" कहा है। बात ऐसी ही है। कोई गांव, कोई नगर आपको ऐसा न मिलेगा जहां गौरैये न हों, भारतवर्ष में ही नहीं, अन्य देशों में भी। जहां मानव-आवास, वहां गौरैये। इनके घोंसले किसी वृक्ष या झाड़ी में आपको शायद ही मिलें। हमारे घरों के ही किसी हिस्से में, अधिकतर कार्निसों पर, ये बगैर किसी भय-संकोच के अपने घोंसले बना डालती हैं और वहीं वर्ष में कई बार अंडे देती हैं। परिणाम यह होता है कि कुछ ही दिनों में वे दो-चार नहीं बल्कि दर्जनों गौरैया-परिवार के निवास-स्थल बन जाते हैं। कभी-कभी प्राचीन गृहों में आपको सैकड़ों गौरैयां एक साथ निवास करते नजर आयेंगी।

गौरैया ही एक ऐसी चिड़िया है जिसके लिए जाड़ा और गर्मी, दोनों एक समान हैं। दोनों ही मौसमों में वह एक-सी खुश नज़र आयेगी। गर्म-से-गर्म और ठंडे-से-ठंडे देशों में वह पायी जाती है। हजारों फुट की ऊंचाई पर भी मैंने इन्हें दाना चुगते तथा घोंसले बनाते पाया है, वह भी बड़ी बेफ़िक्री के

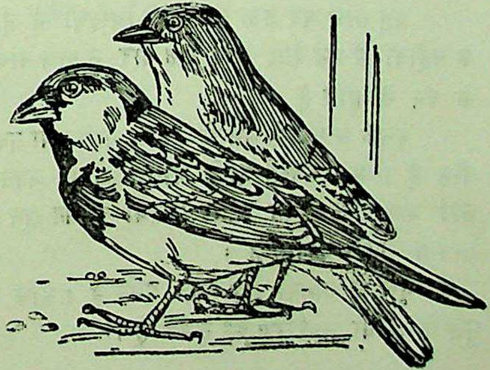

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ। उन्हें इस बात का भय नहीं कि पहाड़ों की बर्फीली हवा उनके शरीर को—जिनके घर इस योग्य नहीं होते कि ठंडक से उनका बचाव कर सकें—कँपा डालेगी। चाहे राजस्थान की मरुभूमि हो या क्वेटा का उष्ण प्रान्तर अथवा शिमले के पहाड़—मनुष्य के संग रहना ही इन्हें अधिक रुचिकर है। और पक्षियों की तरह ये मनुष्य से भयभीत नहीं होतीं। बहुधा जब हम अपनी मेज पर बैठे रहते हैं, ये मेज पर चढ़ जाती हैं और फिर फुदक-फुदक कर बड़े इतमीनान के साथ उस पर घूमने भी लगती हैं। कभी-कभी हमारी टोपियों के भीतर तक में ये घोंसले बना डालती हैं। देखने में यह बहुत छोटी बुलबुल से भी छोटी—प्रायः छः इंच की चिड़िया है, पर किसानों को नुकसान पहुँचाने में बड़े-बड़े पक्षियों के भी कान काटती है। बहुधा सेरों नाज यह सखी-सहेलियों के संग कुछ ही देर में चट कर जाती है।

गौरैये लड़ाकू भी खूब ही हैं। बात-बात पर लड़ उठती हैं। कभी-कभी मकान की कार्निस से लड़ती-लड़ती ये जमीन अथवा मेज पर उतर आती हैं और अपने झगड़ों से हमें तंग कर डालती हैं। लड़ती हुई दो गौरैयों का हमारे शरीर पर आ गिरना एक साधारण सी घटना है। पता नहीं, हमारे सामने लड़ने का इन्हें इतना शौक क्यों है। क्या ये हमसे अपने झगड़े अथवा दंगल का निपटारा कराना चाहती हैं?

गौरैयों का निवास भारतवर्ष के सभी हिस्सों में है। इस देश में इसकी मुख्यतः दो उपजातियां पायी जाती हैं: एक वह जो कि हमारे गृह-प्रांगण में दिनभर दाना चुगती है—अपनी चीं-चीं चूँ-चूँ से हमें परेशान किये रहती है। इसके नर और मादा में अन्तर होता है। नर के सिर का ऊपरी हिस्सा स्लेटी, बाल श्वेत होते हैं। छाती से ठोढ़ी तक एक काली धारी होती है। इनके पर कुछ सफेद, कुछ बादामी तथा कुछ भूरे होते हैं। पीठ तक डैने कत्थई भूरे रंग के होते हैं। दुम गहरी भूरी। गाल राख के हलके रंग का होता है। पेट पर सफेदी होती है। मादा भूरे अथवा मटमैले रंग की होती है। दोनों की चोंच मोटी तथा भूरे रंग की होती है, आंख की पुतली और पैर भी भूरे होते हैं। मादा की आंख के ऊपर एक हल्की बादामी रेखा रहती हं। गर्मियों में नर की भूरी चोंच काली लगने लगती है। यह हमारी इतनी जानी-पहचानी चिड़िया है कि इसका हुलिया बताने की कतई जरूरत नहीं। इस देश में शायद ही कोई ऐसा होगा जो छः इंच के इस पक्षी को न पहचानता हो।

यह साल भर अंडा देने वाली चिड़ियों में है, पर अधिकतर फरवरी से मई तक के महीनों में अंडे देती है। एक बार में पांच-पांच छः-छः अंडे दे डालती है जो राख के रंग के होते हैं।

इसके बच्चों के शत्रुओं में बाज पक्षी तथा एक मक्खी विशेष खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। यह मक्खी इसके घोंसले में ही अपना घोंसला बना कर गौरैये के छोटे-छोटे बच्चों से चिमट जाती है तथा उनका खून पी डालती है, रक्तविहीन होकर वे आप-से-आप मर जाते हैं।

धूल में नहाना इन्हें बहुत पसंद है। घाघ और भड्डरी के कथनानुसार इनका धूल में नहाना वर्षारम्भ का सूचक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरैये की दूसरी उपजाति वह है जिसे तूती कहते हैं। यह देखने में मादा गौरैया जैसी होती है, सिर्फ गले का कुछ हिस्सा पीला होता है। स्वभावतः इसमें वह ढिठाई नहीं जो साधारण गौरैये में पायी जाती है। यह पेड़ों की सूराख में घोंसला बनाती है। इसकी बोली बड़ी सुहावनी है। फारसी-उर्दू साहित्य में जगह-जगह पर तूती की चर्चा पायी जाती है—खास कर भारतवर्ष की तूती की। अमीर खुसरो ने लिखा है—

चुमन तूतिए-हिन्दम, अर रास्त पुर्सी,
जे मन हिन्दुई पुर्स, ता जग्ज गोयम।

—मैं हिन्दुस्तान की तूती हूं। मुझसे यदि कुछ जानना है तो हिन्दी में पूछो ताकि मैं अपने अनुभव की कुछ बातें बता सकूं।

डाक्टर इकबाल ने इसका ज़िक्र इस प्रकार किया है :—

उड़ा ली तूतियों ने, कुमरियों ने, अंदलीबों ने,
चमनवालों ने मिल कर लूट ली तर्जे-फुगाँ मेरी।

इसकी आवाज़ सुरीली पर क्षीण होती है और इसीलिए कहावत मशहूर है—

नक्कारखाने में तूती की आवाज़।

उत्तर भारत की लोक-कथाओं में गौरैये का जिक्र बहुत आता है। यह शायद इसलिए कि यह ऐसा पक्षी है जो घर के कोनों में रहता है, घोंसले बनाता है, अतएव बचपन से ही हम उससे परिचित हो जाते हैं। इस देश में गौरैया-पालन की, पता नहीं, कभी प्रथा थी या नहीं पर, यूनान और रोम में लोग इसे बड़े प्यार से पाला करते थे। तभी तो कटलस नामक रोम के एक प्रसिद्ध कवि ने इसे संबोधित करके लिखा था—

Passer, deliciae meale puella, quicum ludere,

—ओ मेरी प्रियतमा का प्रिय-पात्र गौरैया, जिसके संग वह बहुधा क्रीड़ा करती है, खेलती है!

खेद है कि गौरैया जैसे पक्षी की ओर से—जो हमारा दिनरात का संगी है—भारतीय साहित्य उदासीन बना रहा! लोक साहित्य तक में यह वह स्थान न पा सकी जो इसका देय था।

●

सतबहिनी

एक बार विलायत से तुरन्त के आए हुए बड़े लाट आगरे का ताज देखने गए। सरकार के उच्च पदाधिकारी उनके साथ थे। उन्होंने वायसराय को ताज के सारे हिस्से दिखाये और फिर लाट साहब के विचार जानने को उत्सुकतापूर्वक उनके सामने शांत-भाव से खड़े हो गए। उन्होंने सोचा कि लाट साहब अवश्य ही संसार-प्रसिद्ध इस इमारत की प्रशंसा में कुछ शब्द कहेंगे, अपने उद्गार प्रकट करेंगे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उनकी निराशा का कोई ठिकाना न रहा जब वह बजाय इसके कि उसके सम्बन्ध में कुछ कहें, अपने ए. डी. सी. से पूछ बैठे—"कौन पक्षी हैं वे, अजीब से ?"

लाट साहब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने वाली ये चिड़ियां सतबहिनी थीं जिनके सम्बन्ध में लीनियस ने मृदुभाषिणी लिखकर अपने अज्ञान का परिचय दिया था ।

कौआ, कबूतर, मैना, गौरैया—ये वे पक्षी हैं जिनका अधिक काल मानव-निवास स्थल के अड़ोस-पड़ोस में ही बीतता है । सतबहिनी को हम ऐसे पक्षियों की श्रेणी में पांचवां स्थान दे सकते हैं । आपने देखा होगा आपके घर के इर्द-गिर्द, बाग-बगीचों में या कि झाड़ियों में, गृह-प्रांगण में लगी हुई तुलसी के चारों ओर, मटमैले रंग के कुछ पक्षी, झुंड बांध कर फुदकते हुए छोटे-मोटे कीड़ों को पकड़-पकड़ कर खाते रहते हैं और बीच-बीच में शोर भी मचाते हैं । सतबहिनी यही हैं जिनके और भी कई नाम हैं—सतभइया, चरखी, कचबचिया, छतरिया आदि। अक्सर आप देखेंगे कि इनकी संख्या सात है और इसीलिए लोग इन्हें सतभइया अथवा सतबहिनी कहते हैं । पर इसका मतलब यह कदापि नहीं कि इनमें सभी नर ही होते हैं या सभी मादा। इनमें नर और मादा दोनों ही होते हैं और इस दृष्टि से इन्हें सतभइया किंवा सतबहिनी कहना गलत प्रतीत होता है । ये प्रचलित नाम हैं और हम इन्हें इस लेख में सतबहिनी नाम से ही पुकारेंगे यद्यपि नाम कभी-कभी धोखे में डालने वाले भी होते ह ।

सतबहिनी प्रकृतितः दल बांध कर रहने वाले पक्षी हैं । इनके सात-सात के झुंड होते हैं । कभी-कभी कई झुंड साथ-साथ ही चलते हैं और इस तरह इस संयुक्त दल की संख्या चौदह या उससे भी ज्यादा हो जाती है। कभी-कभी एक दल में सात से अधिक भी हो सकते हैं, और कम भी ।

ये अपने सारे काम-धंधे साथ-साथ मिलकर करती हैं, अलग-अलग नहीं । यहां तक कि घोंसले बनाना, अंडा सेना, बच्चों को खिलाना आदि सभी काम मिलजुल कर ही करती हैं । एक अंग्रेज लेखक का कहना है कि उन्होंने एक बार छः सतबहिनियों को एक ही घोंसले में बारी-बारी से तीन बच्चों को दाना खिलाते पाया था ।

दुःख-सुख दोनों अवस्थाओं में ये एक दूसरे का साथ नहीं छोड़तीं । यदि आप इनमें से कुछ को पिंजड़े में डाल दें तो बाकी भी पिंजड़े में घुसने की चेष्टा करने लगेंगी । शायद यह भी कवि के इस कथन की कायल हैं कि—

A prison with a friend preferred
To liberty without.

—मित्र के संग कैद में रहना बाहर एकाकी रहने की अपेक्षा कहीं अच्छा है ।

इनकी उड़ने की ताकत कम होने के कारण अधिकतर ये पांवों पर ही चलती हैं । सभी एक साथ चलेंगी । यदि कोई एक साथी पिछड़ गया तो बाकी खड़ी होकर उसकी प्रतीक्षा करेंगी और तभी आगे बढ़ेंगी जब वह दल में आकर शामिल हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जायगा। "कचबच" शब्द करती रहेंगी ताकि पिछड़ा साथी जान जाय कि बाकी कहां हैं। कौए की भांति ये भी खाद्य को पांव से पकड़ कर, नोच-नोच कर, खाती हैं।

गिरोह बांधकर रहने में जो बल है वह अलग-अलग खिचड़ी पकाने में नहीं। इस देश के पक्षी कौए, कबूतर, तोते इत्यादि इस शाश्वत सत्य का मूल्य जानते हैं और इसपर अमल भी करते हैं; पर इस सत्य को जो सबसे अधिक पहचानती है, वह है सतबहिनी। यह सही है कि सतबहिनी जबतब आपस में खूब लड़ती हैं, पर खतरे के मौकों पर ये एक-साथ हो जाती हैं तथा कौए और बाज-बहरी-शिकरे का जबर्दस्त मुकाबला करती हैं जिसके परिणामस्वरूप इन दुश्मनों को अंत में मैदान छोड़ कर भाग खड़ा होना पड़ता है। यही है संघ-शक्ति।

युद्धकाल में तो ये अद्भुत् एकता का परिचय देती ही हैं, शान्ति-काल में भी अनूठी पारस्परिक प्रीति का प्रदर्शन करती हैं। आप इन्हें बहुधा चोंच से एक दूसरे का सिर खुजलाते अथवा पर की गंदगी साफ करते देखेंगे। देखने में ये कुरूप होती हैं—मटमैला रंग, आंख, चोंच, पर सफेद। पूंछ बड़ी, पर ढीली-ढीली-सी। इनके बदन में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हमारी आंखों को प्यारी लगे। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि वास्तविक सौंदर्य गुण में है, तन में नहीं।

इस देश में इनकी भी कई किस्में हैं जिनमें तीन मुख्य हैं—(१) साधारण, (२) जंगली, (३) दक्षिणी। साधारण की दुम लम्बी होती है, तथा जंगली का शरीर। दक्षिणी का रंग मटमैला न होकर कत्थई होता है, गले, छाती और पेट पर सफेदी होती है। अधिकांशतः यह जोड़ों में पायी जाती हैं; पर कभी भी चार से ज्यादा एक साथ नहीं। इन तीनों के स्वभाव में कोई खास फर्क नहीं है।

उड़ने की ताकत कम होने के कारण यह घोंसला ऊंचे दरख्तों पर न बना कर झाड़ियों में अथवा वृक्षों की उन शाखाओं पर, जिनकी जमीन से ज्यादा ऊंचाई नहीं होती, बनाती हैं। सभी ऋतुओं में अंडे देती हैं। अंडों की संख्या दो से चार तक होती है। रंग बिल्कुल नीला। इन्हीं अंडों के साथ पपीहा चुपके से अपने अंडे भी रख आता है। संयोगवश पपीहे के अंडे भी गाढ़े नीले रंग के ही होते हैं। जिस तरह कोयल कौए को छलती है, उसी तरह पपीहा सतबहिनी को। बड़े उमंग के साथ वह इन्हें सेती है। यही नहीं, बच्चों का लालन-पालन भी करती है, अपने साथ घुमाती फिराती है फिर कुछ दिनों के बाद एक दिन देखती है कि जिन्हें उसने इतने प्यार से पाला-पोसा था, वे गायब हैं। वह इन्हें बाग-बगीचों में, झाड़ियों में, ढूंढती फिरती है और वे किसी ऊंचे दरख्त पर बैठे हुए "पी कहां" की रट लगाते रहते हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाल मुनियां

पुराने जमाने में जिस तरह शौकीन-मिजाज लोग बुलबुल और बटेर पाला करते थे वैसे ही लाल मुनियां पालने का भी रिवाज था। बड़े-बड़े रईस और अमीर-उमरा इसे पालते थे और दूर-दूर तक उनके इस शौक की चर्चा होती थी। उत्तर बिहार में एक जगह है चैनपुर जो किसी जमाने में बड़े जमींदारों की बस्ती थी। यहां वालों को लाल मुनियां पालने का कुछ इतना ज्यादा शौक था कि एक कहावत सी बन गयी थी--

लाल मुनियां चैनपुर, पठ्ठा हसनपुरा।

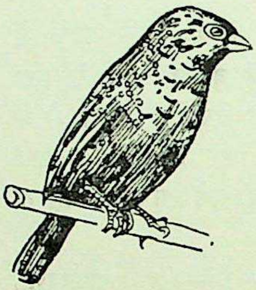

अर्थात लाल मुनियां देखनी हों तो चैनपुर में देखें, पट्ठा (दन्तैल हाथी) हसनपुरा (जमींदारों की एक दूसरी बस्ती जहां के हाथी मशहूर थे) में। अफसोस है कि बुलबुल और बटेर की भांति ही लाल मुनियां के कद्रदान भी अब इस देश से जाते रहे!

लाल मुनियां कभी एक-दो की संख्या में नहीं पाली जातीं। पालने वाले एक ही पिंजड़े में दर्जनों एक साथ पालतें हैं, और ये बड़े आनन्द के साथ अपना बन्दीजीवन व्यतीत करती हैं---पिंजड़े में ही दिनभर कूजती हैं, नाचती हैं, गाती हैं। इनके गाने का यह खास क्रम है कि एक गाकर चुप हुई, फिर दूसरी ने उस क्रम को आगे बढ़ाया, फिर तीसरी ने, और इस तरह बारी-बारी से सभी गा उठती हैं। रात में सभी पिंजड़े के छड़ पर कतार बांधकर बैठ जाती हैं और फिर इस बात के लिए झगड़ा शुरू हो जाता है कि बीच में कौन बैठे। छड़ के किनारों पर कोई बैठना नहीं चाहती हैं। सब का प्रयास बीच का स्थान ग्रहण करने का रहता है और इसके लिये इनके बीच रातभर धक्कम-धक्का चलता रहता है। कतार में ही ये सोती भी हैं।

कद में यह बड़ी छोटी, प्रायः ४ इंच की होती हैं। नर को लाल और मादा को मुनियां कहते हैं। इसका शरीर भूरापन लिये हुए लाल रंग का होता है जिसपर छोटी-छोटी सफेद बुंदियां बनी होती हैं। उम्र के साथ-साथ शरीर की लाली भी गहरी होती जाती है। नर के पैर में पैर के पास से दुम तक का निचला हिस्सा काला होता है, दुम के सिरे और डैने भूरे होते हैं। मादा की ठुड्डी तथा गला सफ़ेद होता है। इनकी चोंच लाल तथा मोटी होती है।

पेड़ों पर रहना इन्हें पसन्द नहीं, अतः अधिकतर ये झाड़ियों में, फूल के वृक्षों की डालों पर, नदी-तट के घासों पर रहती हैं और वहीं घोंसले बनाती हैं जो गोलाकार होता हैं, गेंद की आकृति का, और उसके एक कोने में प्रवेश-द्वार बना रहता है। गौरैया की तरह ये बारहों मास घोंसला बनाती तथा अंडे देती रहती हैं।

एक प्रकार की मुनियां रंग में हरी होती है, चोंच लाल, और नीचे के पर पीले होते हैं, कुछ सफेद भी। कद में यह सबसे छोटी मुनियां है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ४४ बहरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

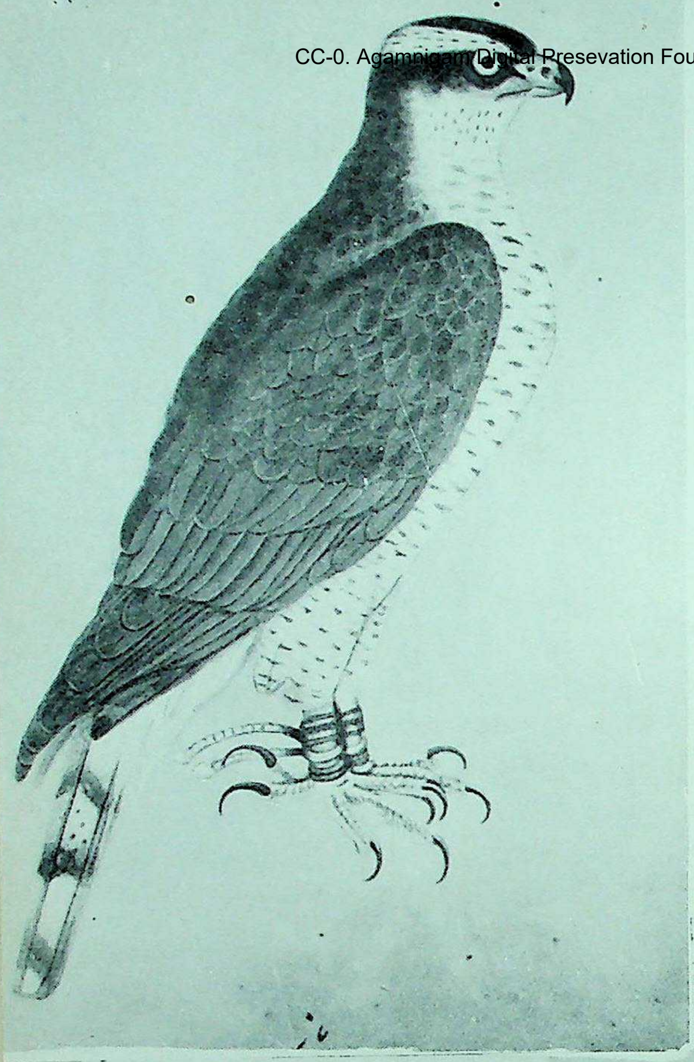

बाज
(एक प्राचीन चित्र)

चित्र सख्या : ४५

पक्षीतीर्थम (तिरुकलु-कुन्दरम) में पवित्र चीलों को पुजारी आहार दे रहा है

चित्र सख्या : ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी ही बिरादरी का एक पक्षी "चर-चरा" भी है जिसका रंग मटमैला है तथा जिसकी पीठ पर दुम के ऊपर कुछ सफेद धब्बे होते हैं । ये झुंड में रहते हैं तथा काँटों की झुरमुट में घोंसले बनाते हैं ।

"तेलिया मुनियाँ" भी इसी जाति की चिड़ियां हैं । यह कद में सबसे बड़ी—प्रायः ५ इंच की तथा रंग में अत्यन्त सुन्दर होती हैं । ऊपर-नीचे के पर बादामी तथा सिर, ठोढ़ी और गला कत्थई रंग का होता है । बदन पर कुछ श्वेत बुंदकियाँ भी होती हैं । यह अपना घोंसला जमीन से कुछ ऊपर, गोलाकार, बनाती है ।

लाल मुनियों का कतार में बैठना जगद्विख्यात है । महात्मा सूरदास तक ने इसका उल्लेख किया है—

"मनु लाल मुनिन की पांति पिंजर तूरि चली" ।

गुलाबचश्म

कद में गौरैया से भी छोटी पर चुलबुलाहट में उससे बढ़ी-चढ़ी यह एक चिड़िया है जो पालने वाले से इतना अधिक हिल-मिल जाती है कि पिंजड़े के बाहर उसके सर और कन्धों पर चहकती रहती है, यहां तक कि उसके बालों में छोटे-छोटे कीड़ों की तलाश करने लगती है । गर्मी इसे ज्यादा पसन्द है और इसलिए पहाड़ों पर नहीं रहती । पिंजड़े में यदि एक से ज्यादा हुई तो खैरियत नहीं—दिन रात युद्ध मचा रहेगा ।

इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गेहुंए रंग का और निचला सफेद होता है । चोंच मजबूत, मुड़ी हुई, काले रंग की तथा आंख की भौंहें पीली होती हैं ।

मई से सितम्बर के बीच यह झाड़ी में अथवा किसी छोटे वृक्ष पर कटोरे की आकृति का घोंसला बनाकर अंडे देती है ।

शायद पीले गुलाब के रंग की आंखें होने के कारण ही शरारत से भरी हुई इस चिड़िया का नाम गुलाबचश्म पड़ा है । इसकी छेड़खानियां मशहूर हैं । यह एक प्रकार से हमारे बाग-बगीचों की जान हैं ।

बबूना, पिद्दा, पतेना

इस पुस्तक में वस्तुतः उन पक्षियों का उल्लेख है जो इस देश में पूर्ण रूपेण विख्यात हैं । इनके अलावा भी ऐसे सैंकड़ों पक्षी हैं जिनका अभी नामकरण नहीं हो सका है और जो यहां के जंगलों, बाग-बगीचों में प्रक्षिप्त रूप में निवास करते हैं । वे हमारी आंखों से ओझल रहते हैं, और यदि कभी हमारे दृष्टि-पथ पर आते भी हैं तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम उन्हें पहचानने में असमर्थ रहते हैं। ये ज्यादातर छोटे कद की चिड़ियां हैं जो पत्तों की ओट में छिपी रहती हैं और उन्हें संयोग से ही हम देख पाते हैं। आप यदि ध्यानपूर्वक सुनेंगे तो बड़े सवेरे अपने बाग-बगीचों में दर्जनों ऐसी चिड़ियां चहकती हुई पायेंगे जिनके शब्द मात्र ही आप सुनेंगे, उन्हें देख न पायेंगे, क्योंकि ये उन गायिकाओं में हैं जो चिलमन की ओट से गाती हैं। इनमें कुछ ऐसी भी हैं जिनका नामकरण हो चुका है।

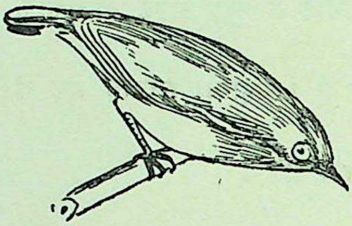

इनमें बबूना, पिद्दा, पतेना मुख्य हैं। बबूना चार इंच की एक छोटी सी चिड़िया है जिसके बदन का ऊपरी हिस्सा धानी रंग का अर्थात हरापन लिये हुए पीला, तथा डैने के छिपे हुए हिस्से और दुम गहरे भूरे रंग की होती है, गला पीला, दुम का निचला हिस्सा पीला, पेट और सीना ऊदी होते हैं। आंखों के चारों ओर सफेद छल्ला होता है, चोंच टेढ़ी और नुकीली काले रंग की होती है। बबूने पेड़ से नीचे शायद ही उतरते हों, वहीं बैठे-बैठे कीड़े तथा फल खाया करते हैं और जब दरिआए-दिल जोश पर आता है तो तान छेड़ते हैं, धीरे-धीरे गान आरम्भ करके उसे अन्तरा पर ला देते हैं। गरज यह कि ये खूब तेज और मीठे स्वर में गाते हैं। फरवरी और सितम्बर के बीच अंडे देते हैं। घोंसला घास-फूस से पेड़ों पर बनाते हैं। यह पीलक के घोंसले से मिलता-जुलता-सा होता है। बबूने का रंग भी बहुत कुछ पीलक पक्षी से मिलता है।

पिद्दा भी एक छोटी-सी चिड़िया है जिसका कद पांच इंच से ज्यादा नहीं होता। इसकी कई उपजातियां हैं। सारे देश में यह प्राप्य है। घने वन की अपेक्षा खुला मैदान इसे अधिक पसन्द है। नर पिद्दे का बदन काले रंग का होता है, केवल कन्धों पर सफेद चकत्ते रहते हैं। सीने से दुम तक का नीचे का हिस्सा सफेद होता है। मादा भूरी होती है, इसके नीचे का हिस्सा कत्थई रंग का होता है। चोंच और पैर दोनों ही काले होते हैं।

छोटे छोटे वृक्षों, सरपत आदि के सिरे पर आप इसे अक्सर बैठा हुआ देखेंगे। कीड़े पकड़ने को यह नीचे भी उतरता है। हवा में उड़ने वाले पतिंगों को यह फौरन अपने मुख का ग्रास बना डालता है।

साधारणतः पिद्दे की आवाज कर्ण-कटु होती है पर जोड़ा बांधने के समय इन में न जाने कहां से मिठास आ जाती है। मादा के सामने नर तरह-तरह के करिश्में दिखाता है, डैने फैलाता है, दुम ऊंची कर के उड़ता है, उड़-उड़ कर गाता है और अन्त में वशीकरण के उपायों के द्वारा मादा को अपने हाथों में कर लेता है।

मार्च और अगस्त के बीच पिद्दी किसी वृक्ष की टहनी अथवा जमीन पर की घनी घास में घोंसला बना कर अंडे देती है। इनकी संख्या ४-५ होती है।

बबूने एवं पिद्दे की अपेक्षा पतेना अधिक लम्बा पक्षी है, खासकर इसलिये कि इसकी दुम के बीच के दो पर प्रायः दो इंच लम्बे होते हैं। इस तरह इसकी लम्बाई बदन और दुम दोनों को मिलाकर करीब ९ इंच की हो जाती है।

देखने में नर और मादा दोनों सुनहले हरे रंग के होते हैं, केवल चोंच के नीचे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से गले के निचले हिस्से तक का भाग नीला होता है । आगे एक काली कंठी, आंखों के पास एक काली लकीर, गर्दन का दोनों ओर तथा डैने के नीचे का हिस्सा थोड़ा ऊपर का भी, सुनहला, दुम के बीच के दोनों लम्बे पर तथा चोंच काली, लम्बी और नुकीली—यही इसकी रूप-रेखा है । इसकी जाति का ही एक पक्षी है पतरिंगा जिसकी दुम नीली, गरदन पीली और सीना कत्थई रंग का होता है ।

पतेने अक्सर गोल बांधकर रहते हैं । नदी के कगारों में सूराख बनाकर मादा अप्रैल से जून के बीच अंडे देती है । नर बाहर बैठा हुआ पहरा दिया करता है ।

देखने में यह अतिशय सुन्दर होते हैं । जिस वक्त टेलीग्राफ के तारों पर भुजंगे, किलकिले तथा मछमरनियों की भांति ये बैठे होते हैं, और इनके बदन पर सूर्य की किरणें पड़ती होती हैं, तो ये और भी सुन्दर लगते हैं ।

मौसम के मुताबिक ये अपना स्थान-परिवर्तन करते रहते हैं । गर्मियां उत्तर भारत में बिताते हैं, शीतकाल दक्षिण में । इनकी कई उपजातियां हैं जो हिन्दुस्तान के बाहर अफ्रीका आदि तक फैली हैं । वहां से आकर ये यहां गर्मियां बिताती हैं । छोटे-छोटे पतिंगे इनके भी आहार हैं ।

हिन्दी के विख्यात कवि राजा लक्ष्मणसिंह ने भौंरे के प्रति कहा था :—

भ्रमर, तू मधु के चाखनहार !

पर ये मधु के नहीं, मधुमक्खी के चाखनहार हैं, उसे देखा नहीं कि इन्होंने उसे गले के नीचे उतारा !

गनीमत है कि पतेनों की संख्या कम है वर्ना हमारे लिये शहद का मिलना दुश्वार होता !

स्वर्ग के पक्षी*

आज से सैंकड़ों साल पहले की बात है, हालेंड के कुछ समुद्री नाविकों ने एक टापू में बहुतेरे ऐसे पक्षी पाये जो देखने में अत्यन्त सुन्दर एवं चित्ताकर्षक थे तथा अधिकतर आकाश में विचरते अथवा पेड़ों पर दिन बिताते थे—ज़मीन पर नहीं उतरते थे। नाविक घर लौटे तथा इस पक्षी के संम्बन्ध में उन्होंने तरह-तरह की बातें बताईं। उन्होंने बताया कि इनके न तो डैने हैं न पांव ही, केवल अपने सुन्दर परों के सहारे ये आकाश में अथवा पेड़ों पर टँगे रहते हैं और स्वर्ग से झरती हुई ओस तथा फूलों के रस से ही अपनी प्यास बुझाते हैं ।

***हिमालय के कई स्थानों में ये पक्षी मिलते हैं और इसलिए इस पुस्तक में इनकी चर्चा की गई है ।**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूरोप के लोगों ने उनकी बातें बड़े कौतूहल से सुनीं। शीघ्र ही समस्त यूरोपीय देशों में ये 'स्वर्ग के पक्षी' के नाम से विख्यात हो गये। कवियों तथा चित्रकारों की कल्पना में इन्होंने स्थान पाया, इन पर सैंकड़ों पंक्तियां लिखी गईं, इनके चित्र अंकित हुए तथा इनका यह सुन्दर सा नाम, 'स्वर्ग का पक्षी', अमर हो गया।

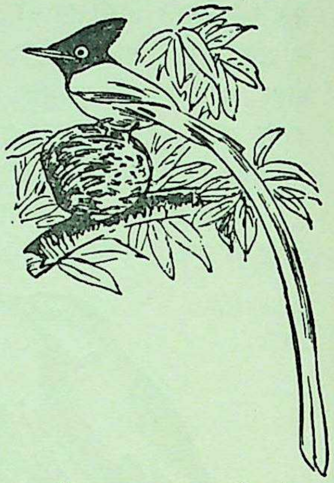

पक्षी-विज्ञान के पंडितों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और वे इस जाति के पक्षियों के अन्वेषण में लगे।

न्यूगिनी के सुन्दर टापू में ये प्राप्त हुए। इनकी कई उपजातियाँ थीं जिनमें कद में सबसे बड़ा वह था जिसे उन्होंने "वृहद् मरकत पक्षी" के नाम से पुकारा। उनकी खोज के फलस्वरूप जो बातें ज्ञात हुई वे इस प्रकार हैं—

ये एक प्रकार के पक्षी हैं जो मुख्यतः दो जातियों में बँटे हुए हैं—एक कद में बड़े, दूसरे छोटे। दोनों के ही पर देखने में अत्यन्त सुन्दर हैं। गला और सर दोनों ही छोटे घने परों से आवृत हैं मानों कोई गुलगुला गलीचा हो। ऊपर का हिस्सा चमकीला सूखी घास के रंग का और नीचे का चमकदार पन्ने के रंग का होता है। दोनों ओर, कन्धों के नीचे से दो घने सुनहले परों के बने हुए गुच्छे बाहर निकले होते हैं जिनकी लम्बाई प्रायः दो फुट की होती है तथा जिन्हें वे स्वेच्छा से ऊपर उठाकर शरीर के अधिकांश हिस्से को ढंक लिया करते हैं। ऊपर उठे हुए परों के ये गुच्छे अतिशय सुहावने लगते हैं।

पूंछ के बीच के दो पर बड़े लम्बे, प्रायः ३४ इंच के, तार के से पतले होते हैं, किन्तु, ये सुन्दर पर, कन्धे के गुच्छे, पूंछ के लम्बे पर, केवल नर के होते हैं, मादा के नहीं। इसका रंग धुंधला भूरा जैसा होता है। बच्चे भी शुरू में इसी रंग के रहते हैं, पर बढ़ने पर अपना अपना रंग धारण कर लेते हैं: नर नर का, मादा मादा का।

प्रजनन-काल के आते ही इस पक्षी के नर एक बड़ी संख्या में एक साथ किसी वृक्ष पर एकत्रित हो जाते हैं तथा मादाओं के सामने अपने सुन्दर परों का प्रदर्शन करते हैं। पांखों को लम्वा करके पीछे की ओर कर लेते हैं और सर को नीचे की ओर। पूंछ के लम्बे परों को उठाकर ऐसे फैलाते हैं मानों खुले हुए सुनहले दो पंखे हों जिनकी जड़ पर गाढ़ी लाल और आगे की ओर कत्थई सुन्दर धारियां चित्रित हों। इनका सारा वदन इन परों से आच्छादित हो जाता है। फिर ये एक प्रकार का नृत्य-सा करने लगते हैं। पीत मस्तक, हरा मरकत-सा गला, सुनहले पर, एक अद्भुत् दृश्य उपस्थित करते हैं।

यही समय है जब इस टापू के आदिम निवासियों को इनके पकड़ने का मौका मिलता है। दरख्त के नीचे वे एक छोटी-सी झोंपड़ी बना कर उसी में जा छिपते हैं और जब पक्षी कामातुर होकर नृत्यरत होता है तो नीचे-से इस पर वाण मारते हैं। पक्षी नीचे आ गिरता है, और इस तरह दर्जनों पक्षियों को वे अपने अधिकार में कर

State Museum LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेते हैं। उस समय ये कुछ ऐसे बेसुध रहते हैं कि बहेलिये के इस छलछंद की उन्हें जरा भी टोह नहीं मिलती, चोट खाकर जो नीचे गिरा उसे छोड़कर बाकी बजाय इसके कि भड़क कर उड़ खड़े हों, नृत्य-रत ही रहते हैं और इस प्रकार अपने को निर्दयी बहेलियों के हाथों का शिकार बना डालते हैं।

ये बहेलिये इन्हें क्यों मारते हैं ? उत्तर स्पष्ट है। इनके सुन्दर परों के लिए। इनके पांव और डैनों को वे अलग कर डालते हैं, मांस निकाल फेंकते हैं और इनके शरीर को परों के गुच्छों और पूंछ के साथ सुखा-सुखा कर वे बाजारों में बेचते हैं। इन टापुओं में रहने वाली शौकीन औरतें इनके परों को सर के मुकट में बड़े गर्व से धारण करती हैं।

शायद पांव और डैनों से रहित इन मृत पक्षियों को देखकर ही डच यात्रियों को यह भ्रान्ति हुई थी कि इनके पर और डैने नहीं होते।

न्यूगिनी तथा आसपास के विभिन्न द्वीपों में ये पक्षी पाये जाते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है, इनकी कई उपजातियां हैं, कोई बड़ी, कोई छोटी। किसी की पूंछ के पर जालेदार होते हैं, किसी के सीधे। रंग में भी काफी फर्क है, पर इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी देखने में अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक हैं। छोटे-छोटे पतिंगे इनका आहार हैं। जमीन पर बिछी ओस की बूंदों को ये बड़े चाव से पीते हैं।

भारतवर्ष में भी हिमालय पर्वत के कई स्थानों में इस जाति के पक्षी देखे गये हैं पर इनकी संख्या बहुत कम है। हमारे यहां की एक दूसरी चिड़िया है जो स्वर्ग के इस पक्षी से बहुत कुछ मिलती-जुलती सी है। वह है मछरिया जिसे मछमरनी (चित्र संख्या : १९) भी कहते हैं। यह भी अपनी पूंछ के परों को उठाकर पंखा जैसा बना लेती है और थिरकती है। रंगबिरंगी होती है और देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। स्वभाव की चंचल है, एक स्थान पर अधिक देर तक नहीं ठहरती। पेड़ों पर रहना इसे ज्यादा पसन्द है, जमीन पर बहुत कम उतरती है। पूर्वोक्त स्वर्ग के पक्षी से कई बातों में इसकी काफ़ी समानता है।

इसकी भी कई उपजातियां हैं। इस देश में पायी जाने वाली तीन मुख्य उपजातियां हैं—सब से श्रेष्ठ वह है जिसे दूधराज तथा शाह बुलबुल के नाम से पुकारते हैं। शकल इसकी बुलबुल की जरूर है; पर दरअसल बुलबुल की जाति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसे स्वर्ग की मछमरनी कहते हैं। इसके सम्बन्ध में एक रोचक कहानी भी है।

कहते हैं, यह पहले स्वर्ग में रहनेवाली एक चिड़िया थी, देखने में बड़ी सुन्दर; बर्फ जैसा उजला रंग था इसका, तथा इसकी पूंछ के बारह पर बड़े खूबसूरत रेशम के पतले फीते जैसे थे। इन्हें पाकर यह फूली न समाती थी। भगवान के सामने भी इसने ऐसा ही अभिमान-युक्त आचरण किया। पर भगवान नहीं चाहते थे कि कोई अपनी सुन्दरता पर अथवा धन-दौलत पर या कि पुत्र-कलत्र पर, बुद्धि पर, गर्व करे। किसी ने वैसा किया नहीं कि इन गुणों से वंचित हुआ। ब्रजांगनाओं तक को, कृष्ण-प्रेमिका होते हुए भी, गर्विता होने के कारण दंड सहना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ा । फिर इस छोटी-सी चिड़िया की क्या हस्ती कि वह गर्वीली बन कर इठलाती चले ! सो भगवान ने उसकी पूंछ के सारे सुन्दर पर छीन लिये । तब उसकी आंखें खुलीं और वह पश्चाताप से विह्वल हो उठी । उनके सामने जाकर वह रो पड़ी और बारम्बार क्षमा-याचना करने लगी । भगवान आखिर दयालु तो हैं ही, उन्हें इस पक्षी पर दया आ गई। किन्तु वह बिल्कुल दंडित न हो यह कैसे हो सकता था ? अतएव बारह की जगह उसे पुच्छ के बीचवाले दो सुन्दर पर वापस मिले जो आज उसका सौंदर्य-वर्द्धन करते हैं । किन्तु भगवान ने इसका चेहरा काला कर छोड़ा ताकि अपने अनुचित आचरण की इसे हमेशा याद आती रहे ।

कभी जो स्वर्ग में पीयूष-पान किया करती थी, यहां उसे अब पतिंगों पर ही जिन्दगी बसर करनी पड़ी क्योंकि स्वर्ग से निपतित होकर वह अब भूमितल की चिड़िया बनी ।

पता नहीं न्यूगिनी और उसके अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले पक्षी स्वर्ग से कब और कैसे निष्कासित हुए ।

शाह बुलबुल, मछमरनी जाति के पक्षियों में सबसे श्रेष्ठ है; पर इसके अलावा भी इसकी कई और उपजातियां हैं । सबसे सुन्दर वह है जिसके पेट का निचला हिस्सा बिल्कुल पीला होता है । नेपाल, सिक्किम, असम में यह बहुतायत से पायी जाती है ।

इन सभी जाति की मछमरनियां (नेपाल की नीलतव आदि भी) घने जंगलों में रहना अधिक पसन्द करती हैं तथा जाड़ों में पहाड़ से नीचे उतर आती हैं । गर्मियों के दिन ये पहाड़ों पर बिताती हैं । पर कई ऐसी भी हैं जो तीन हजार फुट से नीचे नहीं उतरतीं ।

पीले पेट वाली मछमरनी, जिसका ऊपर उल्लेख है, एक हजार फुट से नीचे नहीं आती है । गढ़वाल के इलाकों में यह १२,००० फुट तक की ऊंचाई पर देखी गई है । मई-जून इसके अंडे देने के महीने हैं ।

यह एक असाधारण तौर पर सजीव तथा प्रसन्नचित्त छोटी सी चिड़िया है जो निरन्तर उड़ती-फिरती रहती है । कभी हवा में उड़ती है, कभी ऊंचे वृक्षों की ऊंची टहनियों पर जा बैठती है; पंखों को कँपाती है, दुम को फैला कर उछालती है । बड़े-बड़े वृक्ष और सघन झाड़ियां—दोनों ही इसके क्रीड़ा-क्षेत्र हैं । घना जंगल तथा बहते हुए जल का किनारा इसे विशेषरूप से प्रिय होते हुए भी मैंने इसे कई बार नरपत की क्यारियों तथा बंसवाड़ियों में कीड़े ढूंढते पाया है । यह क्षीण पर मीठे स्वर में गाती भी है ।"

नाक के ऊपर कुछ लम्बे-से बाल, इसकी खास पहचान है ।

शाह बुलबुल नामक पक्षी (चित्र संख्या : २२) जो इस देश में वसन्त-काल के आते आते आ पहुंचता है, अधिकांशतः एबिसिनिया, सूदान, ब्रिटिश पूर्व-अफ्रीका आदि देशों से आता है तथा जाड़ों के आते ही पुनः इन्ही देशों को लौट जाता है । साथ ही, कुछ ऐसे भी हैं जो जाड़ों में भारतवर्ष के भीतर ही स्थान-परिवर्तन कर लेते ह—उत्तर से दक्षिण-भारत की ओर चले जाते हैं जहां सर्दी कम पड़ती है । पर अधिकांश एबिसिनिया को लौट जाते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह बुलबुल के, जिसकी ऊपर चर्चा की गई है, और भी कई नाम हैं, जैसे हुसैनी बुलबुल, सुल्ताना बुलबुल, दूधराज इत्यादि । डीलडौल में, आकार-प्रकार में, यद्यपि यह बुलबुल से मिलता है, पर दरअसल यह उस जाति का पक्षी नहीं है । स्वभाव, खानपान आदि सारी बातों में इसका सादृश्य मछमरनी से है, बुलबुल से नहीं । देखने में यह एक बड़ा ही चित्ताकर्षक, रूपवान और शोभन पक्षी है । इसके भी सर पर एक तुर्रा होता है । शैशव-काल में इसके बदन का रंग बादामी, चोटी का ऊपर से काला, नीचे सफेद होता है । पर द्वितीय वर्ष के आते आते नर की आकृति में फर्क आ जाता है । दुम के बीचोंबीच के दो पर सत्रह इंच लम्बे हो जाते हैं, शरीर से दूने । तीसरे वर्ष में वर्ण-परिवर्तन होता है, अर्थात् इसके बादामी पर सफेद हो जाते हैं । किन्तु सर और चोटी काली ही बनी रहती है । मादा के रंग में परिवर्तन नहीं होता ।

शाह बुलबुल की खूबसूरती का सबसे बड़ा कारण उसकी लम्बी पूंछ है । जब वह इसे फड़फड़ाती हुई चलती है या उड़ती है तो ऐसा लगता है मानो वह विलायत के राजघराने की किसी विशिष्ट महिला की गाउन हो ।

इसमें चुलबुलाहट भी राज-महिषियों की-सी ही है । हमेशा खुश, स्फूर्तिपूर्ण, रह-रह कर गाना, यह इसके खास गुण हैं । पांव कमजोर होते हैं, अतएव ये उड़-उड़ कर ही कीड़े-पतिंगे पकड़ कर उन्हें अपना आहार बनाती है ।

जो यहां रह जाती है वे कटोरे के आकार के घोंसले बना कर मई-जून-जुलाई में अंडे देती हैं जिनकी संख्या तीन-चार होती है तथा रंग गुलाबी होता है ।

दूसरी किस्म की मछमरनी, जो इस देश में बहुतायत से पायी जाती है, काली मछमरनी है जिसके ऊपर का रंग बादामी या काला होता है, नीचे का सफेद। गले के ऊपर कुछ चित्तियां होती हैं, ललाट पर सफेदी तथा आंख के ऊपर से गर्दन तक सफेद धारी होती है । डैनों के कुछ पर और पूंछ का सिरा भी सफेद होते हैं ।

एक तीसरी जाति की मछमरनी भी जहां-तहां देखने में आती है जिसका सर और वक्षस्थल भूरे रंग के होते हैं, बाकी शरीर, हरा मिश्रित पीले रंग का होता है । पूंछ का रंग बादामी । यह कद में गौरैये जैसी होती है । और मछमरनियों की तरह यह अपनी दुम नहीं फैलाती । इसे गर्द-फुदकी भी कहते हैं ।

उपर्युक्त तीन किस्मों के अलावा भी मछमरनी की कई और उपजातियां इस देश में प्राप्य हैं । श्री फ्लेचर के कथनानुसार ये प्रायः अस्सी हैं, पर इस देश में बहुतायत से पायी जानेवाली मछमरनियां इतनी ही हैं। हां, एक और किस्म है जिसे नीलतवा के नाम से पुकारते हैं और जो पहाड़ों से कभी नीचे नहीं उतरती, गर्मियों में ८,००० फुट तक की ऊंचाई पर निवास करती है । जाड़ों में कभी-कभी पहाड़ों की जड़ तक आ जाती है । रंग इसका खूब चमकीला होता है—ऊपर खूब गहरे रंग का नीला, नीचे का हिस्सा, कपोल, सर के बगल के हिस्से तथा गला चमकदार काला । चीड़ के दरख्तों पर बहुधा आप इन्हें थिरकते, नाचते-गाते पायेंगे ।

मछमरनियों में पेट के रंग की भिन्नता बहुत है, किसी का लाल, किसी का नीला, किसी का श्वेत, किसी का बादामी ! स्वभाव सबों का एक जैसा होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहली किस्म की मछमरनी को छोड़कर शेष यहां की बारह-मासी चिड़ियां हैं पर नजर तभी आती हैं जब वर्षा आने को होती है। दरअसल इनमें से यदि एक भी आपके बाग-बगीचों में नजर आए तो समझ लीजिए कि वर्षा-काल अब दूर नहीं है। १९५६ में बंगाल, बिहार में बरसात और वर्षों की अपेक्षा पहले शुरू हो गयी और इसीलिये मछमरनी भी मई के समाप्त होते-न-होते कलकत्ते के समीपस्थ एक उद्यान में आ पहुंची। इसकी सूचना एक सज्जन ने एक समाचारपत्र को लिख भेजी और तब दूसरे अखबारों ने यह समाचार बड़े चाव से छापा कि कलकत्ते के समीप एक बाग में मछमरनी नजर आई है। इसके बाद कई और पत्र भी छपे जिनमें इसके अन्य स्थानों पर देखे जाने की सूचना थी। गर्मी से पीड़ित जनों के हृदय में तब एक भरोसा पैदा हुआ कि अब बरसात शुरू ही होने वाली है।

वर्षा का आरंभ होते ही मछमरनी की बाछें खिल उठती हैं। बड़े जोशो-खरोश के साथ यह वसन्त की बुलबुलों की तरह डाल-डाल पर अपनी पूंछ उठा-उठा कर फुदकती है और गाती भी है। स्वभाव से चंचल होने के कारण कभी एक स्थान पर अधिक काल तक नहीं ठहरती; कभी यहां चहकती है, कभी वहां।

सरिता के तट कभी, कभी बागों के भीतर,
कभी आम के कुंज, कभी महुए के तरु पर।

स्टुअर्ट बेकर ने भारत में पाई जाने वाली स्वर्ग की मछमरनी की तारीफ में लिखा है—

"भारत में सुन्दर, लम्बी पूंछ वाली, श्वेत, स्वर्ग की नर मछमरनी को आम्र कुंजों की हरियाली और छाया में आगे-पीछे उड़ते-फुदकते देखकर जिस सुन्दरता के दर्शन होते हैं वह अद्वितीय है।"

श्री बेकर ने जिस पक्षी की प्रशंसा इन सजीव शब्दों में की है उसका रूप आज न जानें और कितने गुणा अधिक चित्ताकर्षक होता यदि वह अहंकार के चंगल में न पड़ी होती।

पीलक

"शीतकाल के पक्षी"—शीर्षक अध्याय में उन पक्षियों की चर्चा है जो जाड़े के शुरू होते-होते, या उसके कुछ पहले शरदकाल में ही, यहां उत्तर से आ पहुँचते हैं और वसन्त के आते ही पुनः अपने वतन को—पहाड़ों को लौट जाते हैं। पर कुछ ऐसे पक्षी भी हैं जो अधिक ठंडक नहीं बर्दाश्त कर सकते; अतएव जाड़ों के पहले ही हमारे यहां से दक्षिण की ओर

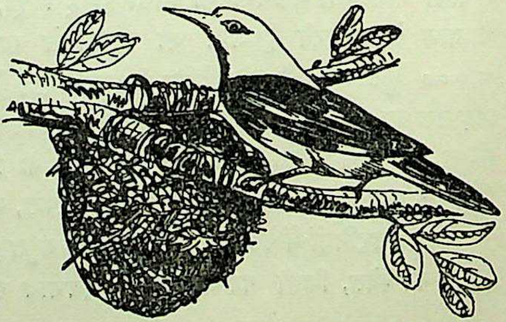

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लू, सपरिवार चित्र संख्या : ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीध, शिकार की टोह में

चित्र संख्या : ४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़ चलते हैं जहां सर्दी कम पड़ती है । ऐसे पक्षियों में सबसे मुख्य है पीलक, जो हमारे यहां अमराइयों में बौर के आते ही आ पहुंचता है, जी भर आम्र-मंजरी-मदिरा का पान करता है, फिर वर्षाकाल के मज़े उठाता है, और अन्त में अगस्त के बीतते-न-बीतते दक्षिण की ओर लौट चलता है । देखने में यह अपनी खूबसूरती एवं भड़कीली पोशाक से अधिकांश चिड़ियों को मात करता है, फिर भी न जानें किन कारणों से शर्मीला बना हुआ अपने को पत्तों की ओट में छिपाकर ही रखता है, झुरमुट से बाहर कभी-कभी ही निकलता है ।

इसकी कई किस्में हैं,सुनहली, टोपीदार, बादामी इत्यादि, पर हमारे देश में दो ही जाति के पीलक मुख्यतः पाये जाते हैं । सुनहले का नर गाढ़े पीले रंग का होता है जिसके डैने तथा दुम के बीच का हिस्सा काला और आंख के दोनों कोनों पर गहरी काली लकीर होती है । मादा के उपर्युक्त हिस्सों में काला की जगह गहरा भूरापन होता है, पीठ हरित्-पीत तथा सीना हल्के पीले रंग का होता है । आंख की पुतली गाढ़े नारंगी अथवा लाल रंग की, चोंच गहरी गुलाबी और पैर गहरे स्लेटी रंग के होते हैं ।

टोपीदार के नर और मादा एक समान होते हैं, सर, गले और पीठ के ऊपरी हिस्से काले होते हैं । सर काला होने के कारण ही यह टोपीदार कहलाता है । जाड़ों में यह यहां ठहर भी जाता है पर सुनहले सर वाले पीलक कदापि नहीं ठहरते ।

पीलक के डैने बदन के लिहाज से काफी लम्बे, चोंच मज़बूत तथा पांव छोटे होते हैं । नर पक्षी की आंखें चमकीली सुर्ख तथा मादा की भूरी होती हैं । नर की आंखें 'अमी हलाहल मद-भरे, श्वेत श्याम रतनार,' की याद दिलाती हैं । गाढ़े लाल रंग के पीलक भी कहीं-कहीं—विशेषतः पहाड़ों पर पाये जाते हैं; पर पीले रंग के पीलक की अपेक्षा ये संख्या में कहीं कम हैं । पीलक कोयल तथा पपीहे की तरह ऊंचे स्वर में नहीं गाता, फिर भी इसकी आवाज बड़ी मधुर होती है । प्रायः पत्तों की ओट में छिपा हुआ यह गुनगुनाया करता है ।

यह पेड़ों से नीचे नहीं के बराबर उतरता है । वहीं बैठा हुआ बरगद आदि के छोटे-छोटे फल तथा कीड़े-मकोड़े खाता है । आम्र-वृक्षों से इसे खास मुहब्बत है और शायद इसीलिये इसे "आम्र-पक्षी" के नाम से भी पुकारते हैं । कद में यह मैना के बराबर होता है ।

अप्रैल से जून के बीच यह घोंसला बनाता है जिसकी शकल प्याले की-सी होती है—बड़ी सुन्दर और चित्ताकर्षक ! दो शाखों पर पुल बनाकर यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीड़-निर्माण करता है। नर और मादा दोनों मिलकर घोंसला बनाते हैं। अधिकतर यह अपना घोंसला उसी वृक्ष पर या उसके आस-पास बनाता है जहां भुजंगे का घोंसला होता है। कारण यह है, जैसा कि भुजंगे के प्रकरण में कहा गया है, कि वह अपने लिए ही नहीं बल्कि अपने पड़ोसियों के लिए भी कोतवाल का काम करता है, कौओं जैसे चोर-डाकुओं को पास नहीं फटकने देता और यदि कभी वे आ भी पहुँचते हैं तो उन्हें ऐसी चोट देता है कि वे फिर आने का साहस नहीं करते, कान ऐंठ कर जाते हैं कि कभी भूल से भी फिर यहां आने का नाम न लेंगे। मलयद्वीप-पुंज में बादामी रंग के पीलक भी पाये जाते हैं, पर भारतवर्ष के किसी हिस्से में नहीं।

पीलक तथा भुजंगे का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां दो-चार भुजंगे वृक्ष पर शोर मचाते हुए नजर आयें, ग़ौर से ढूंढने पर दो-एक पीलक भी वहां अवश्य ही मिलेंगे। कहा भी है—

रहते तरु पर संग,
पीलक और भुजंग।

●

हुदहुद

हुदहुदे रहबर चुनीं गुफ्तां जमां
कां के शुद आशिक नयं देशद जे जां।

—तब पथ-प्रदर्शक हुदहुद ने कहा कि सच्चे प्रेमी अपनी प्राणों की चिन्ता से रहित होते हैं।

ग्रीष्मकाल का दिन था; बड़े कड़ाके की गर्मी पड़ रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि सूर्य की किरणें पृथ्वी और आकाश दोनों को जला कर, भस्मीभूत कर के ही दम लेंगी। लोग छांह ढूंढते फिरते थे, पर जिनके ऊपर शासन की जिम्मेदारी है उन्हें चैन कहां! बादशाह सुलेमान किसी आवश्यक कार्य से अपने उड़न खटोले* पर बैठे हुए आकाश मार्ग से कहीं जा रहे थे। सूर्य के ताप से बेचैन हो रहे थे; सर पर कोई साया न था, इतने में कुछ गीध नजर आये। उन्होंने उन गीधों से कहा—"मैं धूप से जल रहा हूं। जरा अपने पंखों से सर पर साया कर दो और साथ-साथ चलो।" उन्होंने बादशाह के इस अनुरोध पर कोई ध्यान न दिया, टाल-मटोल कर चलते बने। पर सुलेमान केवल बादशाह ही न थे, पैग़म्बर भी थे। उन्होंने शाप दिया, 'आज से तुम्हारी गर्दन परों से खाली रहेंगे तथा धूप की गर्मी तुम्हें सताया करेगी। यही नहीं,

***चकबस्त ने स्वर्गीय लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के समय लिखा था—**

बन गई सरकार इन्दर के अखाड़े की परी,
ले उड़ी मोटर उन्हें तख्ते सुलेमां की तरह।

अंतिम पंक्ति में इसी तख्त की ओर इशारा है। कहते हैं, बादशाह के इस उड़न-खटोला रूपी तख्त का यह गुण था कि उस पर बैठ कर वह जहां चाहें आ-जा सकते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन-समाज तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखा करेगा।' यही हुआ और गृद्ध समाज आज-तक इस अभिशाप को भुगत रहा है।

सुलेमान आगे बढ़े। इतने में हुदहुदों का सरदार नजर आया। उससे भी उन्होंने वही बात कही जो गीधों से कही थी। सरदार समझदार पक्षी था, फौरन बादशाह की मदद में अपनी बिरादरी के कुछ और पक्षियों को बुलाकर लग गया। सुलेमान की शेष यात्रा हुदहुदों के परों की छाया में बड़े आराम से कटी। स्वभावतः इस पक्षी-विशेष पर वह अतीव प्रसन्न हुए और बोले "सरदार! वर मांगो।"

पर हुदहुद सरदार की समझ में यह न आया कि वह क्या मांगे, अतएव उसने सरदारनी से जाकर सलाह-मशविरा किया। औरतें मांगने में तेज होती ही हैं, बुद्धि भी तीव्र होती है; सो सरदारनी ने सुनते ही कहा, "प्राणनाथ! इस मौके को हाथ से न जाने दें, बादशाह से फौरन जाकर कहें कि हमारे सरों पर आज से सोने का ताज हुआ करे।"

सारे परिवार को यह बात पसंद आयी, और उत्साहित होकर सरदारे-हुदहुद बादशाह सुलेमान के पास पहुंचा और सोने का ताज मांगा। सुलेमान को उसकी मूर्खता पर हंसी आ गयी। वे बोले, "सरदार, इसका परिणाम क्या होगा, इस पर सोच-विचार कर लिया है?" सरदार ने कहा, "जहांपनाह! काफी सलाह-मशविरा करके मैंने यह मांग पेश की है।" सुलेमान वचनवद्ध थे, कह दिया कि आज से हुदहुदों के सर पर सोने का ताज हुआ करे।

हुदहुदों ने देखा—सर पर एक सुन्दर सोने की कलँगी निकल आयी है। बस उस दिन से वे गर्व-भरे मस्तक के साथ पृथ्वी तल पर विचरने तथा अन्य पक्षियों को नीची निगाह से देखने लगे।

बादशाह सुलेमान जिस भवितव्य को सोच कर हँस रहे थे, वह सत्य प्रमाणित हुआ। मानव-समाज को जब यह मालूम हुआ कि हुदहुदों के सर का ताज सोने का है तो वे उनके पीछे पड़ गये और कुछ ही दिनों में अगणित हुदहुद उनके तीरों के शिकार बन गए। वंश-संहार की नौबत आ गई। दुःख और क्षोभ से आपन्न हुदहुदों का सरदार पुनः सुलेमान के पास उपस्थित हुआ और बोला, "सरकार! इस सोने के चलते तो अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा वंश ही नष्ट हो जायगा, कुछ दिनों में सिवाय हमारी स्मृति के कुछ भी शेष न रहेगा—

कहेंगे सबेई नैन नीर भरि-भरि पाछे,
हुदहुद की शेष बस कहानी रहि जायगी।"

सुलेमान ने कहा, "तभी तो मैंने तुझे चेतावनी दी थी। खैर, जाओ आज से तुम्हारा यह ताज सोने का नहीं, सुन्दर परों का होगा।"

तब से हुदहुद के सर पर परों का ताज शोभा पा रहा है (चित्र संख्या : ३८) और तभी से उनके पैगम्बर सुलेमान द्वारा सम्मानित यह पक्षी यहूदियों की दृष्टि में पवित्र भी माना जाने लगा है। यही नहीं, यूनान, रोम, आदि प्राचीन देशों के साहित्य में भी इसने स्थान पाया है।

एक प्राचीन कथा के अनुसार, क्रीट के राजा जेरियस को दंडरूप में, हुदहुद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनना पड़ा था । बाइबिल में भी इसका जहां-तहां जिक्र आया है । मिस्र आदि देशों के चिकित्सा-ग्रन्थों में इसके शरीर के विभिन्न हिस्सों का विभिन्न रोगों के लिए प्रयोग बताया गया है, खास कर स्मरणशक्ति बढ़ाने तथा चक्षुरोगों के लिए ।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स किंग्सले ने अपनी पुस्तक 'वेस्टवर्ड हो'* में इसे स्थान देकर इसकी प्रसिद्धि बढ़ायी है ।

प्राचीन यूनान तथा क्रीट के भीति-चित्रों में भी हुदहुद ने विशिष्ट स्थान पाया है ।

गरज यह कि हुदहुद संसार के प्रसिद्ध पक्षियों में है । और इसमें शक नहीं कि यह देखने में अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावशाली भी है । नर और मादा, दोनों के सर पर कलँगी होती है जो इनका सौंदर्य बढ़ाती है । शरीर की पोशाक भी काफी भड़कीली होती है । देखने से ही प्रतीत होता है कि यह किसी ऊंचे कुल का पक्षी है । इसके सारे बदन का रंग एक जैसा नहीं होता । पर काले-काले होते हैं, जिन पर मोटी सफेद धारियां बनी होती हैं । गर्दन का अगला हिस्सा बादामी रंग का होता है । चोटी भी बादामी होती है, पर उसके सिरे काले और सफेद होते हैं । दुम का भीतरी हिस्सा सफेद और बाहरी काले रंग का होता है । चोंच पतली, लम्बी तथा तीखी होती है जिसके द्वारा

---

*विलायत में बहुत दिनों से यह धारणा थी कि समुद्र के किसी टापू में अपरिमित धन, सोना-चांदी गड़ा पड़ा है । इसकी खोज में प्राचीनकाल में, कई साहसी, धुन के पक्के लोगों के दल जहाज ले-लेकर, घर छोड़कर निकल पड़े थे और उन्होंने मार्ग में घोर संकट का सामना किया था : बहुतों ने संकट में पड़कर अपने प्राण तक गंवा दिये थे । ऐसे ही एक साहसी व्यक्ति कैप्टेन आक्सेनहम की चर्चा इस पुस्तक में है । वह इस प्रकार है :

शाम का समय है । आक्सेनहम अपने एक मित्र के घर आता है और गड़े हुए धन का तथा उसके अनुसन्धान में अपनी भावी यात्रा का जिक्र करता है । अचानक उसकी दृष्टि एक पक्षी पर पड़ती है और वह चाय के प्याले को मेज पर पटक देता है और कांपता हुआ उद्विग्न चित्त से, कमरे में टहलने लगता है, और कहता है—वहां, वहां, देखते हो, पक्षी, वह पक्षी, सफेद पेटवाला !

उसका मित्र उसकी इस बात को बहला देता है । कहता है, छोड़ो इन नासमझी की बातों को, आदि आदि ।

आक्सेनहम होश में आता है, पुनः इसकी चर्चा नहीं करता और चाय-पान कर चल देता है ।

उसके चले जाने के बाद मिसेज ली ग्रेनभेले से कहती है—भगवान उसकी रक्षा करे !

ग्रेनभेले कहता है—मैडम, मैं इन शकुनों में विश्वास नहीं रखता । मिसेज ली कहती है—पर, सर रिचार्ड, उसके परिवार में भावी मृत्यु के पहले आज कई पुश्त से लोग इस पक्षी को देखते आये हैं । साउथ राटन में इस वंश के जो व्यक्ति रहते थे उनकी मां की मृत्यु के पहले यह नजर आया था और उनके भाई की मृत्यु के पहले भी ।

कैप्टन आक्सेनहम अपने संकल्प पर दृढ़ रहता है, जहाज ले कर धन की खोज में निकलता है और यात्रा में अपने प्राण गंवा बैठता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह आसानी से जमीन के भीतर छिपे हुए कीड़े-मकोड़ों को ढूंढ निकालता है । इसे फल-फूलों से शौक नहीं, कीड़े मकोड़ों से ही यह अपनी उदर-पूर्ति करता है, और उनकी तलाश में यह गांव के आसपास के बाग-बगीचों तथा खंडहरों में घूमता हुआ चोंच से गिरे हुए पत्तों को हटा-हटा कर इन्हें ढूंढता फिरता है । मिट्टी तक खोद डालता है । पर आत्मरक्षा के लिए पूरी तरह सतर्क भी रहता है । ज़रा-सी आवाज हुई और वह उड़कर डाल पर जा बैठता है । ऐसे तो लगता है कि वह उड़ने में सुस्त-सा है, पर मौका आने पर इस तेजी से भागता है कि बाज़ या शिकरे के भी छक्के छुड़ा देता है ।

साधारणतः यह अपनी चोटी को समेटे रहता है पर जैसे ही किसी ने इसे भड़काया, किसी तरह की आवाज हुई और यह सशंक हो उठा । तब यह परों को फैला डालता है और उस वक्त इसकी कलँगी की रूपरेखा हूबहू किसी सुन्दर पंखी जैसी हो जाती है । उड़ता हुआ हुदहुद एक बड़ी तितली जैसा लगता है, चित्रित, सुन्दर ।

हुदहुद की भी कई उपजातियां हैं और कई उपनाम भी । इसकी दो उपजातियां उल्लेखनीय हैं । एक वह जिसे हम विलायती हुदहुद कह सकते हैं जिसे प्राचीन रोम में उपुपा तथा यूनान में इपौपस के नाम से पुकारते थे । यूरोप के तमाम देशों में यह पाया जाता है । भारतवर्ष के भी हिमप्रदेशों में मिलता है । जाड़ों में बंगाल और बिहार के भी कई हिस्सों में यह देखा गया है । इसकी लम्बाई प्रायः एक फुट होती है, पेट सफेद होता है ।

दूसरी उपजाति वह है जो भारतीय हुदहुद के नाम से विख्यात है । रंग इसका भी बहुत कुछ विलायती हुदहुद जैसा ही होता है । फर्क इतना है कि जहां विलायती हुदहुद का रंग चमड़े का सा होता है, इसका दालचीनी का सा । सफेद धारियां कम होती हैं, पाखें छोटी, पर चोंच विलायती हुदहुद की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है । पश्चिमी पाकिस्तान को छोड़कर भारत तथा पाकिस्तान के बाकी सभी हिस्सों में यह पाया जाता है, पूर्व में हैनान तक में । फरवरी से लेकर मई तक इसका अंडे देने का समय है । प्रकृति दोनों की एक जैसी ही होती है ।

हुदहुद के कई उपनाम हैं । कीड़ों की खोज में घास और दूब खोजने के कारण इसे "दुबया" कहते हैं, सुन्दर पोशाक तथा सर पर की कलँगी, तुर्रा के कारण मुसलमान इसे "शाह सुलेमान" कह कर पुकारते हैं ।

मनुष्य की तरह पक्षियों को भी नहाने का बड़ा शौक है । कुछ तो चोंच से अपने परों पर पानी छिड़क-छिड़क कर नहाते हैं, कुछ धूल से । हुदहुद धूल से नहाने वाले पक्षियों में है । पर धूल में नहाकर भी यह अपनी गन्दगी के लिए ही मशहूर ह । फ्रेन्च भाषा की एक लोकोक्ति है—"हुदहुद-सा गन्दा" और इसमें शक नहीं कि यदि आप किसी हुदहुद के पास जायं तो दुर्गन्धि से घबड़ा उठेंगे । कारण यह है कि इसे न तो घोंसला बनाने की तमीज है, न उसे साफ रखने की । इसका घोंसला बिल्कुल ही बेढंगा बना होता है और जहां अन्य पक्षी प्रतिदिन घोंसले को अपनी चोंच से साफ कर लिया करते हैं, यह सारे गन्दे पदार्थ ज्यों-के त्यों छोड़े रहता है । यही नहीं, मादा जो कि तीन से दस तक अंडे देती है, अंडों पर से तब तक नहीं हटती जब तक कि उन्हें फोड़कर बच्चे बाहर नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकल आते। वह दिन-रात वहीं बैठी रहती है, नर बाहर से भोजन ला-ला कर उसे खिला जाता है। साल में वह दो बार अंडे देती है। बोलते समय यह तीन बार 'उक-उक-उक' सा कुछ कहता है, जिसे विलायत के लोग हुप-हुप-हुप समझते हैं। इस ध्वनि के कारण अंग्रेजी में इसका नाम हूपू पड़ा, फारसी में हुदहुद।

इस देश की नागर भाषा में यह अपने फारसी नाम से ही प्रसिद्ध है, पर ग्रामीण भाषा में कहीं-कहीं इसे "हजामिन" चिड़िया भी कहते हैं, शायद इसलिये कि इसकी चोंच नाखून काटने वाली "नहरनी" नामक औजार से मिलती-जुलती है। इस देश के लोक-साहित्य में भी इसका जहां-तहां उल्लेख आता है। पश्चिमीय मिथिला के भाटों में प्रचलित एक लोक-गीत की एक पंक्ति मशहूर है—

चैत मास बन मोजरन लागे,
हुदहुद को व्याह रचा है,
साहब बन दूल्हा बैठा है।

इसी प्रकार अन्य प्रदेशों के लोक-साहित्य में भी इसने स्थान पाया है।

मुटरी या महलाठ

यदि गुलाबचश्च अपनी शरारतों और छेड़खानियों के लिये प्रसिद्ध है तो मुटरी, जिसके महलाठ, कोकैया, महताब, टाकाचोर आदि और भी कई नाम हैं—अपनी चौर-प्रवृत्ति के लिए। यदि आपको चोरी की विद्या सीखनी हो तो मुटरी से सीखें।

यह कद में प्रायः डेढ़ फुट लम्बी चिड़िया है, जिसकी लम्बाई का एक फुट तो केवल दुम में चला जाता है। नर और मादा की शक्ल-सूरत में कोई भेद नहीं है। धूमिल काले रंग का इसका सिर, गर्दन और सीना है, शरीर के बाकी हिस्से कत्थई रंग के हैं। दुम और डैने कुछ स्याही लिए हुए सफेद होते हैं। पूंछ के बीच के दो पर सबसे बड़े और दोनों किनारों के सबसे छोटे होते हैं। शायद काली करतूतों के कारण ही इसकी चोंच बिल्कुल काली होती है। इसकी कई किस्में भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में पाई जाती जाती हैं।

यह सर्वभक्षी है। नाज के दाने तथा फल से लेकर कीड़े मकोड़े, सांप-छछूंदर तक यह हजम कर जाता है। मानो इसकी ब्रह्मबुद्धि हो! इसके लिये सभी समान हैं, शुद्धाशुद्ध के विचार तो उनके लिये है, जो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के तत्व तक नहीं पहुंच पाये हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य पक्षियों के अंडे चुराने में इसे कामयाबी हासिल है । न जाने कितनी फाखताओं के अंडे चुरा-चुराकर इसने हजम कर लिये होंगे ! निस्सन्देह कौए भी इसके चौर-चातुर्य्य की बराबरी नहीं कर सकते ।

चोर तो यह है ही, पर सीनाजोर भी है । जब उत्तेजित होता है तो जोर-जोर से बोलने लगता है, "कोक-ली"-"कोक-ली" की धुन लगा डालता है तथा सीना तान कर लड़ने के लिये तैयार हो जाता है ।

साधारणतः फरवरी से जुलाई के बीच यह अपना बेढंगा-सा घोंसला आम अथवा इसी प्रकार के किसी बड़े वृक्ष पर बनाता है । पड़ोसी इसे बर्दाश्त नहीं । यदि उसी वृक्ष पर कोई दूसरा पक्षी घोंसला बनाने आये तो फौरन बिगड़ खड़ा होता है और उसे ऐसी धता बताता है कि वह कान ऐंठ लेता है कि हम फिर कभी इस दरख्त पर न आयेंगे ।

इसके अंडे पर तरह-तरह के रंग होते हैं—कहीं लाल, कहीं गुलाबी, कहीं सफेद, कहीं पीला, कहीं हरा, कहीं बादामी, कहीं बैंगनी । शायद ही कोई रंग हो जिसकी छटा इस पर न हो । कहते हैं, इसके अंडे का रंग आबोहवा के मुताबिक बदलता रहता है, अर्थात् बंगाल में एक रंग, सिन्ध में दूसरा, दक्षिण में तीसरा । पता नहीं इसमें कहां तक तथ्य है, और यह सम्भव नहीं कि इस बिगड़े-दिल से जाकर कोई इसके सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने की चेष्टा करें, तुरन्त "कोक-ली"-"कोक-ली" कह कर लड़ पड़ेगा । फिर तो आपकी जान आफत में आ जायगी ।

इसके बच्चे भी मां-बाप की ही तरह शोर मचाने वाले होते हैं और शायद इनके पेट में बड़वानल का कोई टुकड़ा है कि ये हर समय खाने के लिए हुड़दंग मचाये रहते है । मां-बाप कीड़े-मकोड़े ला-लाकर इनके पेट की ज्वाला शान्त करते हैं । बड़े होकर भी ये बहुत दिनों तक मां-बाप के पीछे-पीछे घूमा करते हैं, पर अन्त में प्रकृति-नियमानुसार इन्हें अपने पांवों पर खड़ा होना ही पड़ता है ।

किलकिला

नदी अथवा ताल-तलैयों के किनारे रहने वाले पक्षियों में किलकिला एक विशिष्ट पक्षी है। इसे अंग्रेजी में "किंगफिशर" कहते हैं । इसकी कई उपजातियां हैं । लम्बी चोंच, छोटे पैर वाले किसी पक्षी को यदि आप जल के किनारे के किसी वृक्ष की डाल पर बैठा हुआ देखें तो समझ लें कि यही वह पक्षी-धीवर किलकिला है, जो मछली की ताक में बैठा हुआ इस मौके का इंतजार कर रहा है कि कोई छोटी-सी मछली नजर आए और यह चील की तरह झपट्टा मार कर उसे पकड़ ले । इसके शरीर का अधिकतर भाग कत्थई रंग का होता है, केवल ऊपर का हिस्सा नीला तथा इसके डैने के सिरे काले रंग के होते हैं । चोंच और पांव धूमिल लाल रंग के होते हैं ।

इसकी एक छोटी जाति भी है, जिसका स्वभाव बिल्कुल इसके जैसा होता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर रंग में थोड़ा फर्क होता है। इसके सर पर काली-नीली धारियां होती हैं। पूंछ, पीठ और डैने नीले होते हैं, निचला हिस्सा लाल, चोंच काली, गाल श्वेत तथा पैर बिल्कुल लाल होते हैं।

बड़े किलकिले मार्च से जुलाई तक और छोटे जनवरी से जून तक घोंसले बनाते हैं। नदी के किनारे कगारों में ये घोंसला बनाते हैं। इनके घोंसलों में पहले तो एक सुरंग होती है, फिर एक घर, जहां मछलियों के अस्थिपिंजर बिखरे रहते हैं। आखिर मछुए का घर जो ठहरा!

किलकिला की बिरादरी का ही पक्षी है कौड़ियाला, जिसका कद मैना-जैसा होता है तथा जिसके मछली पकड़ने के ढंग में भिन्नता है। वह किसी दरख्त की शाख पर बैठ कर मछली की प्रतीक्षा नहीं करता बल्कि निरन्तर जल के ऊपर उड़ता रहता है। मछली को देखते ही अपने पंख बंद कर धड़ाम से गिर पड़ता है तथा पलक मारते चोंच से उसे दबाये किलकिल शब्द के साथ उड़ता हुआ नजर आता है। इसका निशाना शायद ही कभी गलत पड़ता हो। फिर किसी वृक्ष पर जा कर उसको खाने में जुट जाता है।

चोंच इसकी खूब लम्बी तथा नुकीली होती है, पर पांव अत्यन्त छोटे होते हैं। रंग दोनों का ही काला होता है। इसके सारे बदन में सफेद और काली धारियां रहती हैं; नीचे का हिस्सा सफेद होता है और सीने पर काली पट्टियां होती हैं।

कौड़िल्ली इसी जाति का एक दूसरा पक्षी है, जिसका कद छः सात इंच होता है तथा रंग कौड़िल्ले या कौड़ियाला से भिन्न होता है। इसका ऊपरी हिस्सा नीला, गर्दन सफेद तथा नीचे का हिस्सा बादामी रहता है। गालों पर तथा दुम के बगल में कत्थई की झलक रहती है, चोंच काली, पैर लाल होते हैं।

इसके अंडा देने का समय मार्च से जून तक है। इनकी संख्या ५ से ६ तक होती है।

ये सभी मछली पकड़ने में अत्यन्त तेज हैं। तभी तो कविवर रसनिधि ने कहा है—

मेरे कान सुजान तुव, नैन-किलकिला आइ,
हृदय-सिन्धु ते मीन-मन, तुरत पकरि लै जाइ !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

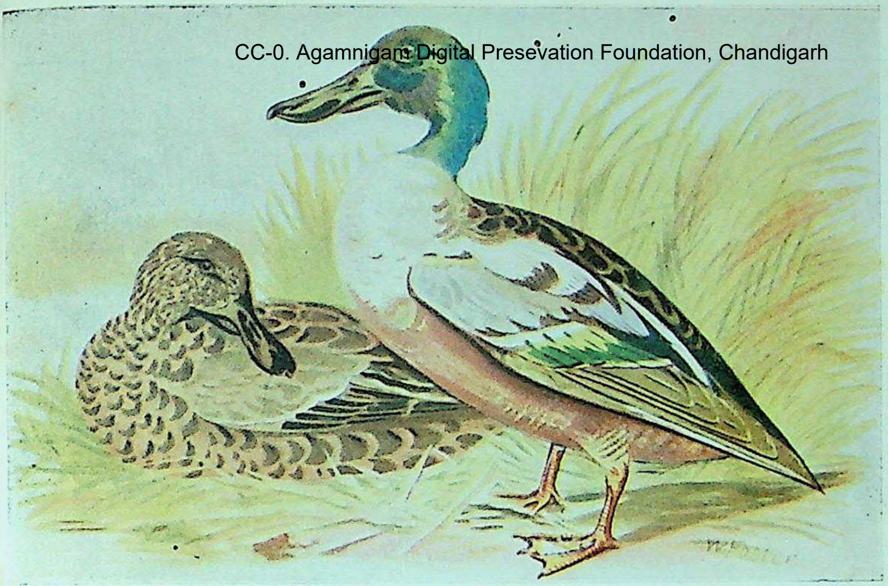

चित्र संख्या : ४९
तिदारी

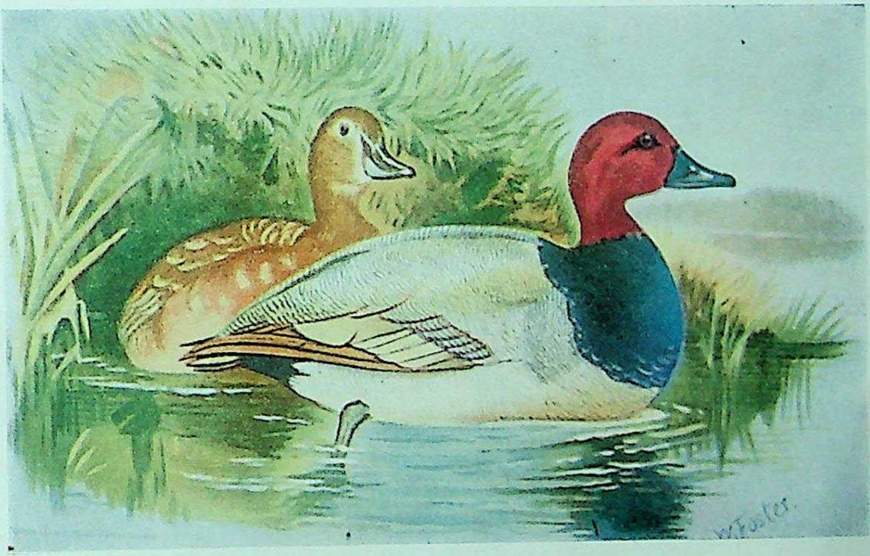

चित्र संख्या : ५०
बुड़ार

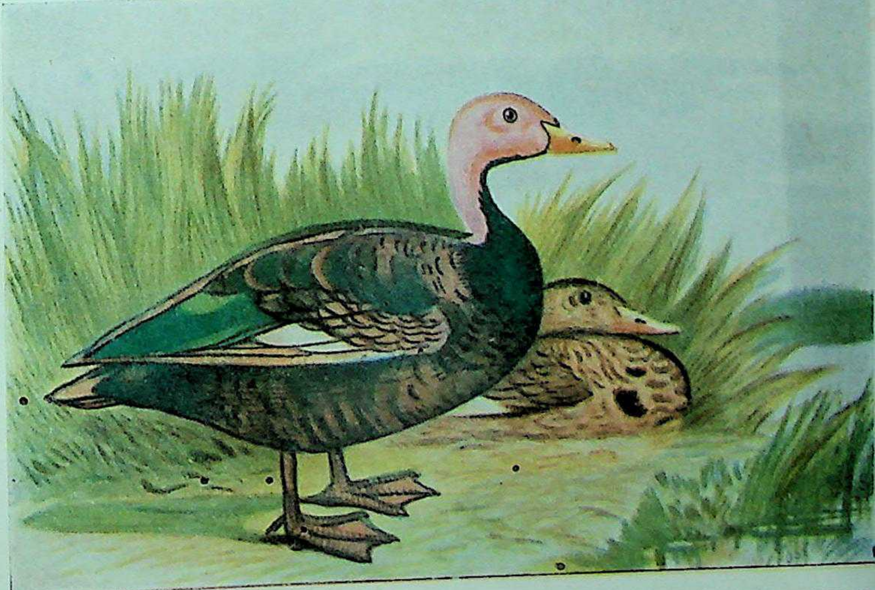

चित्र संख्या : ५१
लालसर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

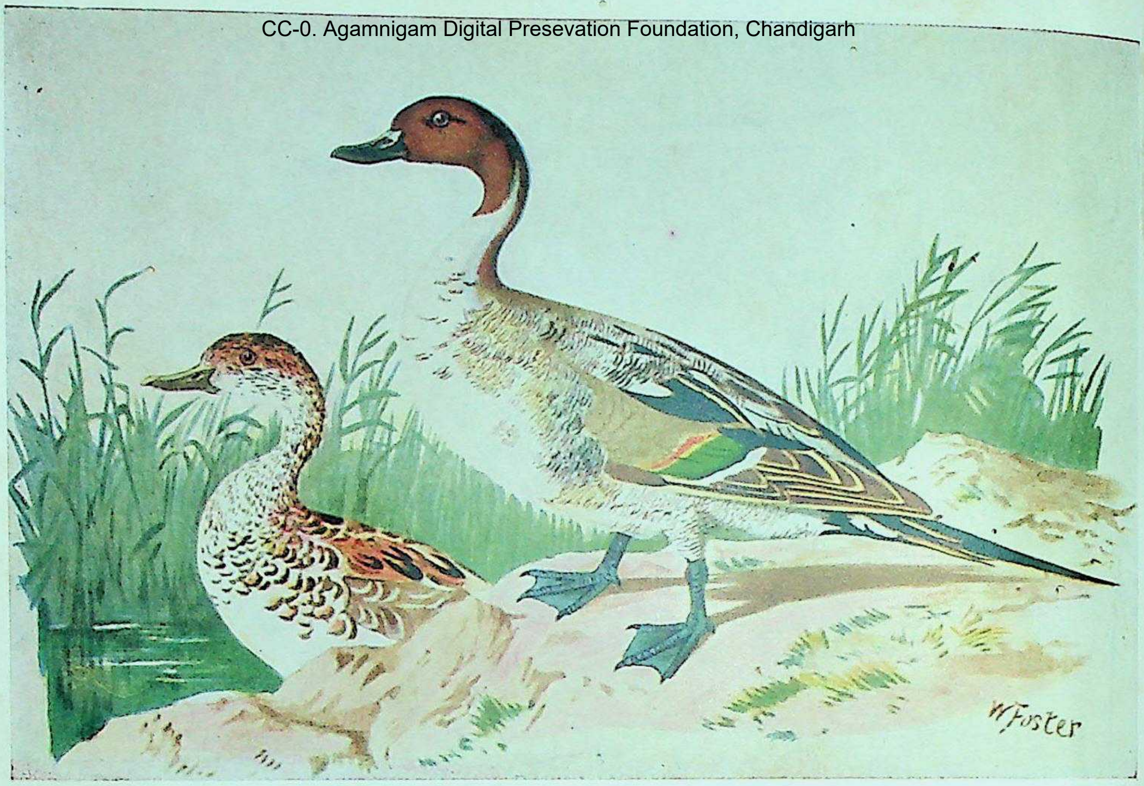

चित्र संख्या : ५२ सीखपर

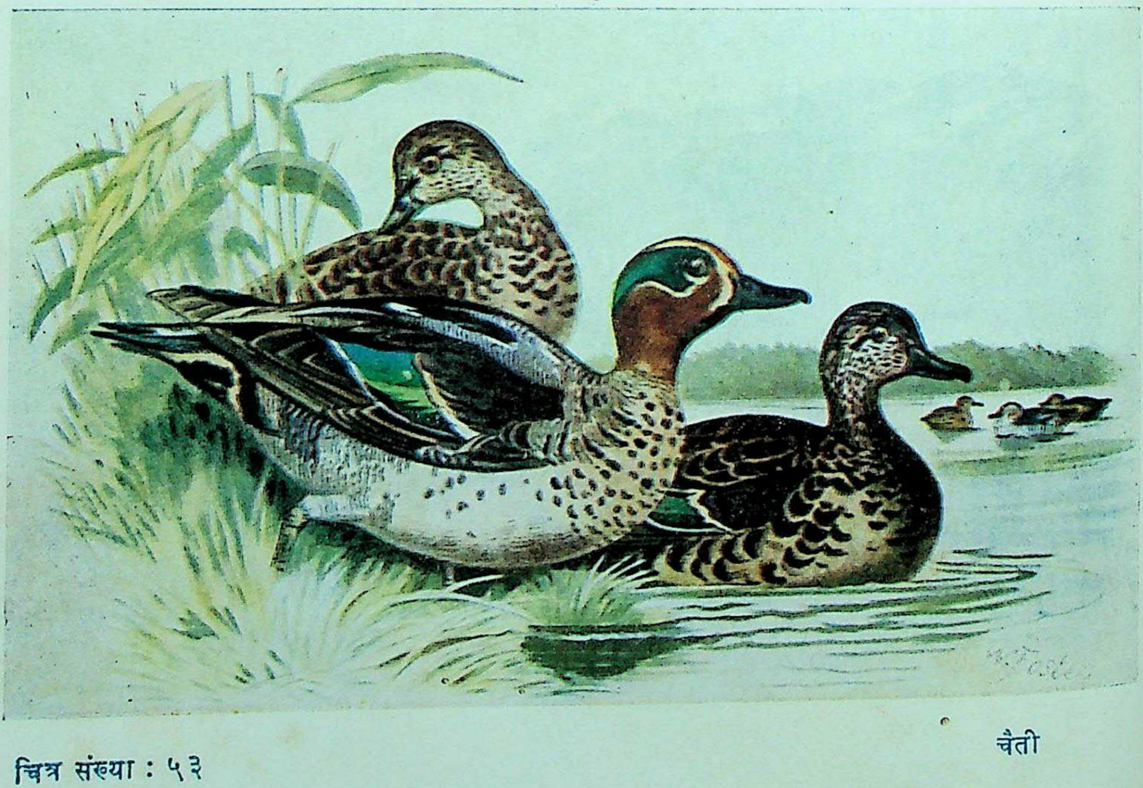

चैती

चित्र संख्या : ५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाज़ : बहरी : शिकरा

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग विचार,
बाज ! पराये पानि पर, तू पच्छीहू न मार !

बाज़—जिसके सम्बन्ध में कविवर बिहारीलाल का यह दोहा है—एक शिकारी पक्षी है जो पक्षियों का ही शिकार करता है (चित्र संख्या : २१) । कई वर्ष हुए मैंने कैनरी नाम की कुछ छोटी-छोटी चिड़ियां पाल रखी थीं । ये देखने में अत्यन्त सुन्दर, सफेद, पीली आदि विभिन्न रंगों की होती हैं, साथ ही इनकी बोली भी अत्यन्त सुमधुर होती है । इस के लिए एक खास प्रकार का पिंजड़ा होता है जो कलकत्ता आदि बड़े शहरों में बिकता है । ऐसे ही कई पिंजड़ों में मैंने इन्हें पाला था । शायद इस पक्षी के लिये बाज़ को एक खास आकर्षण है । एकदिन न जाने कहां से इनकी बोली सुनते ही एक बाज़ आ पहुंचा जिसने इनमें से कई को घायल कर डाला । वे इस आघात को बर्दाश्त न कर सकीं, दो एक घंटों में उन्होंने आंखें मूंद लीं—सदा के लिये सो गईं । बचीखुची कैनेरियों के सम्बन्ध में मैं सतर्क हो गया । फिर भी एक दिन पुनः एक बाज़ बरामदे के भीतर आ धमका तथा उसने इनके ऊपर झपट्टा मारा । इनका स्पर्श तो वह न कर सका, पर इन के भय मात्र से ही इन कैनेरियों के प्राण-पखेरू उड़ गये !

पक्षियों के मन में खास कर छोटे पक्षियों के मन में ऐसा आतंक है इस शिकारी पक्षी का !

बाज़ आज भी हैं, पर उनकी अब वह कद्र नहीं जो पुराने जमाने में थी । एक समय था जब कि हिन्दुस्तान ही नहीं, संसार के कितने ही देशों में बाज़ के द्वारा पक्षियों का शिकार करने की प्रथा जोरों में चली हुई थी । बादशाह से लेकर एक साधारण व्यक्ति तक बड़े शौक से इसे पालते थे, हाथों पर लिये फिरते थे तथा जिस किसी भी चिड़िया पर इच्छा हुई इसे छोड़कर उसे अपने पास मंगवा लेते थे ।

"जिस तरह बाज़ लाये कबूतर को मार कर"—उर्दू के प्रसिद्ध कवि आज़ाद की इस पंक्ति में इसी की ओर इशारा है । पता नहीं भारतवर्ष के प्राचीन हिन्दू राजाओं को बाज़ के लिये कितनी कद्रदानी थी, पर मुगल बादशाह, खासकर अकबर, इसके बड़े कद्रदान थे जैसा कि "आईने अकबरी" नामक फारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ से भी जाहिर होता है । अकबर तथा अन्य मुगलों के तत्कालीन चित्रों में उन्हें हाथ में बाज़ लिये आप देखेंगे । दरअसल प्राचीन हिन्दू-भारत में पक्षियों के शिकार का आम तौर पर बहुत कम शौक था । मुमकिन है उनकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति ही इसका कारण हो, पर मुसलमानों के आने के बाद से इसकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई । और तब तो इस देश के हिन्दू राजा और सामन्त भी हाथों पर बाज़ लिये फिरने लगे (चित्र संख्या : ६१) । कहते हैं, गुरु गोबिन्दसिंह को बाज़ के द्वारा पक्षियों का शिकार करने का खास शौक था । उनका एक प्राचीन चित्र महाराज पटियाला के चित्र-संग्रहालय में प्राप्त है, जिसमें वह हाथ पर बाज़ बिठाये हुए दिखलायी पड़ते हैं (चित्र संख्या : ६०) ।

"जान" नामक एक मुसलमान कवि ने बाज़ पर एक पद्य ग्रन्थ "बाज़ नामा" लिखा है जिसकी ये पंक्तियां काबिलेगौर हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकल सिस्ट करता रची प्रम महंमद काज ।
तीन लौक को जान कहि दीनों ताको राज ।।
बाज जुरा बहरी कुही सब कौ एक विचार ।
औषद समझाऊं भलै सुनि-सुनि लेहु षिलार ।।
जे ओषद कहि-कहि गये पहिले मीर-सिकार ।
ते इनमें आने बहुत ग्रन्थ निहार विचार ।।

चौपाई

जानहु बड़डो हुनर षिलार ।
हाथ रैष पंछी करि प्यार ।।
रात द्यौंस जो राषै हाथ ।
कबहूं ताकौ तजै न साथ ।।
यासौ होइ मेल जब मन कौ ।
तबहि भूलजै रहिबौ बन कौ ।।

यूरोपीय देशों में भी बाज़ की काफी पूछ थी तथा लोग इसे हाथों पर लिये फिरते थे । जर्मनी के प्रसिद्ध सम्राट फ्रैडरिक द्वितीय ने तो बाज़ के द्वारा पक्षी के शिकार की विद्या पर स्वयं एक विस्तृत ग्रंथ लिखा था जो इस विषय की एक बहुमूल्य पुस्तक है ।

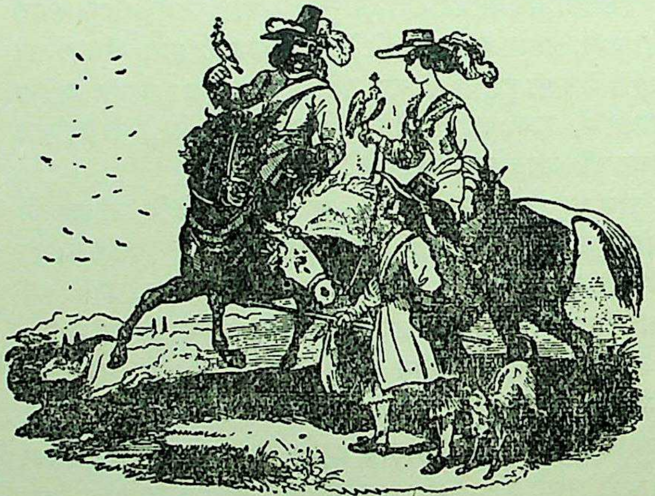

इटली में प्राचीन काल में बाज़ पालने की प्रबल परिपाटी थी । बड़े-बड़े धनी-मानी, अमीर-उमरा हाथों पर बाज़, शिकरा लिये फिरते थे । लार्ड टेनिसन ने अपने एक एकांकी नाटक में इसका बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। नाटक के शुरू में उस देश के एक प्रमुख सामन्त (काउन्ट) हाथ पर बाज़ बिठाये उपस्थित होते हैं और कहते हैं—

Hear that, my bird! Art
thou not jealous of her?
My Princess of the cloud, my plumed
purveyor,
My far-eyed Queen of the Winds -

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुनो मेरी प्रिय !
क्या तुम्हें इस बाज़ से ईर्ष्या नहीं होती ?
यह--जो बादल-देश की राजकुमारी है
यह--जिसके शोभन पंख हैं
यह--जो दूर-दृष्टि वाली पवन-महिषी है ।

इटली ही नहीं सारे यूरोप के सामन्त परिवारों में बाज़, बहरी या शिकरे को लोग उसी तरह प्यार करते थे जैसे कि आज अलसेशियन आदि विशिष्ट जाति के कुत्तों से करते हैं। इंग्लैंड की प्रसिद्ध शासिका महारानी एलिजाबेथ प्रथम बाज़ के द्वारा शिकार करने में परम प्रसिद्ध थीं । गरज यह है कि एक जमाना था जब कि संसार भर में इस पक्षी की तूती बोलती थी तथा राज-दरबार से लेकर साधारण जनता तक में इसे सम्मान प्राप्त था ।

स्वाभाविक था कि ऐसा पक्षी, जिसमें जोश है, उमंग है, भागने की जगह आक्रमण करने की प्रवृत्ति है, जो निर्भय होकर झपटता है, जिसकी नसों में गर्म खून प्रवाहित है, जिसके पंजों में ताकत है, वह कवि समाज का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित करता। ऐसा ही हुआ भी है तथा संसार के अनेक कवियों ने इसकी खूब ही प्रशंसा की है। इक़बाल ने, जो इसके उपर्युक्त गुणों पर आशिक थे, लिखा—

हुमामो कबूतर का भूखा नहीं मैं,
कि है जिन्दगी बाज़ की जाहिदाना,
झपटना, पलटना, पलट कर झपटना,
लहू गर्म रखने का है इक बहाना ।
य पूरब य पच्छिम--चकोरों की दुनिया,
मेरा नीलगू आसमां बेकराना,
परिन्दों की दुनिया का दरवेश हूं—मैं,
कि शाहीं बनाता नहीं आशियाना ।

राजस्थानी लोक-कवि राजिया ने कहा :—

नभचर विहँग निरास, बिन हिम्मत लाखाँ बहै,
बाज त्रपट कर बास, रजपती सूँ राजिया ।

—आकाश में ऐसे तो अनेक पक्षी मंडराते फिरते है, पर वहां शासन तो बाज़ का ही रहता है । यही तो रजपूती शान है !

बाज़ की कई श्रेणियां हैं । वैसे कुछ लोग बहरी और शिकरे को साधारणतः भिन्न पक्षी मानते हैं, पर मेरे विचार में ये सभी एक ही जाति की विभिन्न उपजातियां हैं; इन्हें अलग मानना गलत है । एक ही प्रवृत्ति, समान काम-धन्धे, समान कार्य-प्रणाली, फिर इन्हें अलग क्यों माना जाए ? ये तीनों ही शिकारी पक्षी हैं, जिनमें जिसे हम बाज़ कहते हैं वह सबसे बड़ा है, सबसे बहादुर भी ।

बड़े-बड़े पक्षियों—तोता, कबूतर, तीतर, बनमुर्गी आदि—तथा छोटे-छोटे जानवरों तक का गला दबा कर यह क्षण मात्र में उनका काम तमाम कर डालता है। देखने में इसके शरीर के ऊपर का रंग भूरा, नीचे का सफेद होता है जिसमें काली-भूरी लकीरें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ी होती हैं । आंखे काली, डैने लम्बे और नुकीले होते हैं । इसकी चोंच मुड़ी हुई तथा खूब मजबूत होती है, जो मांस चीरने-फाड़ने के लिए बड़ी उपयुक्त है ।

बाज़ की मादा 'जुर्रा' कहलाती है । शिकारी इसे शिकार पकड़ना आसानी से सिखा लेते हैं। यह कद में नर से लम्बी होती है । नर-मादा के रूप-रंग में भी कुछ अंतर होता है । आमतौर पर दोनों को ही बाज़ के नाम से पुकारा जाता है ।

बाज़ के बाद बहरी का नाम आता है (चित्र संख्या : ४४) । यह बाज़ से कुछ छोटा होता है पर शिकार पकड़ने में किसी कदर कम नहीं । बहरियों में 'लगर' सबसे अधिक प्रसिद्ध है । रंग में इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा भूरा होता है, गर्दन तथा नीचे का हिस्सा सफेद, आंख के ऊपर से गर्दन तक श्वेत रेखा, सीने से पेट तक छोटी-छोटी कत्थई लकीरें होती हैं । दुम भूरी होती है, आंख की पुतलियां भूरी, पैर पीले, पंजे काले होते हैं । चोंच टेढ़ी और झुकी हुई-सी, जिसमें एक दांत होता है, डैने बड़े एवं मजबूत होते हैं ।

बहरी की ही एक किस्म है—खेरमुतिया । इसके रंग में स्लेटी तथा हल्के बादामी रंग प्रधान हैं । आदतें लगर जैसी ही होती हैं ।

तृतीय शिकारी पक्षी शिकरा है, जो कद में सबसे छोटा पर प्रसिद्धि में सबसे बढ़ा-चढ़ा है । रंग-रूप में हू-बहू पपीहे जैसा होता है । शरीर का ऊपरी हिस्सा राख के रंग का, डैने भूरे, नीचे का हिस्सा हल्का बादामीपन लिए हुए सफेद, चोंच तेज पर छोटी और आगे की ओर मुड़ी हुई होती है। आंखें तथा पैर पीले होते हैं ।

इनका हमला ज्यादातर छोटी चिड़ियों, छिपकलियों तथा चूहों पर होता है । यह बिजली की तरह तेज होता है ।

इसकी बिरादरी का एक पक्षी "गौरैया-शिकरा" होता है, जो अधिकतर गौरैया का ही शिकार किया करता है ।

शिकरों के पालने का रिवाज़ इस देश में ज्यादा है । दो-चार दिनों में ही ये पालतू बन जाते हैं तथा हाथों से उड़-उड़ कर शिकार पकड़ना आसानी से सीख लेते हैं।

संक्षेप में भारतीय बाज़ की ये ही तीन उपजातियां हैं, पर इन उपजातियों में भी अनेक क़िस्मे हैं, तथा इनके रूप-रंग भी अनेक हैं। कुछ क़िस्में तो इस देश में बारह मास रहती हैं और कुछ केवल जाड़ों में ही नजर आती हैं। इन सब की मादा, नर से ज्यादा लम्बी होती है तथा शिकार पकड़ने में तेज भी ।

शिकारी पक्षियों में बाज़ को वन अधिक प्रिय है, बहरी तथा शिकरे को गांव के अड़ोस-पड़ोस के खेत, अमराई आदि। ये अधिकतर शांत भाव से पेड़ों पर छिपे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

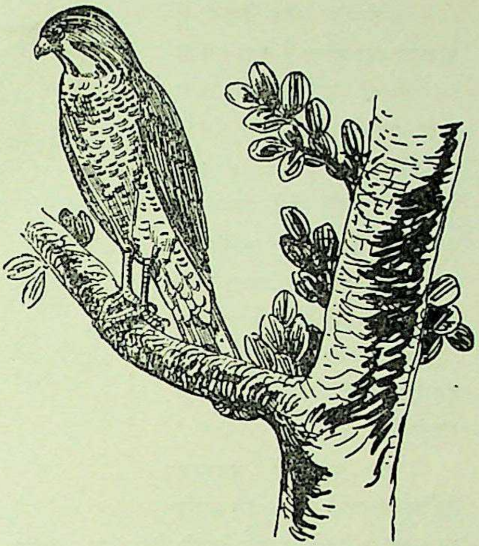

बैठे रहते हैं, शिकार को अकेला देखकर उस पर टूट पड़ते हैं और पलक मारते उसे परलोक पहुंचा देते हैं। पर कुछ ऐसे भी हैं जो ज्यादातर उड़ते रहते हैं—कभी-कभी खूब ऊंचे भी चले जाते हैं और अनुकूल अवसर देखकर शिकार पर आक्रमण करते हैं। कुछ को स्वयं शिकार करने की अपेक्षा मरे हुए पक्षियों तथा छिपकिली आदि का भक्षण ज्यादा पसन्द है।

संस्कृत में इन सभी पक्षियों को 'श्येन' कहा है। ऋग्वेद के प्रथम अष्टक में लिखा है कि स्वराज्य का अधिकारी वही जनपद है जहां और चीजों के साथ-साथ श्येन आदि पक्षी काफी संख्या में हों जिनकी वजह से फसल को नुकसान पहुंचाने वाली चिड़ियां निर्भय होकर न विचरें। बाज़ की इस उपयोगिता का उल्लेख सिवाय ऋग्वेद के इस सूक्त के संस्कृत के किसी अन्य ग्रन्थ में देखने को नहीं मिला है।

ये ग्रीष्म से लेकर शरद काल के आरम्भ तक अंडे देते हैं। अंडों की संख्या दो से अधिक होती है। इनके बनाए हुए घोंसले देखने में कतई सुन्दर नहीं होते; बड़े बेडौल होते हैं। ये पेड़ों की झुरमुट में घोंसले बनाते हैं।

बाज़, बहरी, शिकरा—इन तीनों में नर की अपेक्षा मादा शिकार पकड़ने में ज्यादा तेज होती है और इसलिए पालने वाले नर की अपेक्षा, मादा को अधिक पसन्द करते हैं जैसा कि लेख में उद्धृत लार्ड टैनिसन की पंक्तियों से साफ-साफ परिलक्षित है।

गरुड़

भगवान विष्णु का वाहन होकर भी गरुड़ की प्रवृत्ति वैष्णवी न हुई। शिकारी पक्षियों में यह सब से बड़ा है, सब से भयंकर भी। इसकी कई किस्में हैं तथा इसकी कोई न कोई किस्म संसार के हर देश में पाई जाती है। कलंगीदार, सर्पवत्, श्वेत नेत्र, मत्स्य मारक आदि इसकी कई श्रेणियां हैं। भारतवर्ष में प्रायः ये सभी पाई जाती हैं। सफेद आंखों वाला गरुड़, जिसकी टांगें औरों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं, केवल जाड़ों में आता है। बाकी इस देश की बारहमासी चिड़ियों में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

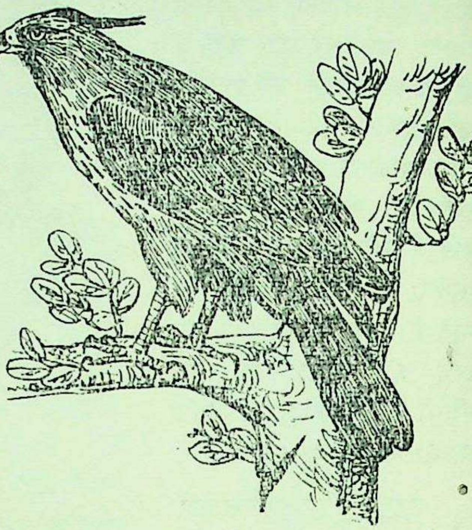

श्वेतनेत्र गरुड़ देखने में अत्यन्त भद्दा होता है तथा इसका रंग हल्का पीला, भूरा या गाढ़ा काला होता है। इसकी दुम गोल होती है तथा नीचे से देखने से इसके डैने पारदर्शक प्रतीत होते हैं। कलंगीदार गरुड़ के चेहरे पर मछली के चोइटे के किस्म के हल्के पर होते हैं, तथा इसकी टांगें भी बहुत दूर तक परों से आच्छादित रहती हैं।

पर सब में भयानक व्यक्तित्व रखने वाला उस जाति का गरुड़ है, जिसे उकाब कहते हैं। यह संसार भर में पाया जाता है तथा अपनी भयानकता के कारण पक्षियों में शेर माना जाता है। सबसे प्रसिद्ध और जबर्दस्त "सुनहला उकाब" है। इसका सर चिपटा और अत्यन्त डरावना होता है। चोंच तेज, टांगें परों से ढकी हुई, पंजे अत्यन्त तीक्ष्ण होते हैं। दुम लम्बी होती है जिसके द्वारा यह आसानी से पहचाना जा सकता है। इसकी आंखें सबसे अधिक तेज हैं। इसकी ताकत का अन्दाजा लगाना हो तो एक विदेशी दर्शक की आंखों देखी घटना का वर्णन पढ़िये—

"सुदूर आकाश में एक उकाब मंडरा रहा था; नीचे मैदान-चरागाह में भेड़ें चर रही थीं। अचानक उसकी दृष्टि उन पर पड़ी और वह धीरे-धीरे नीचे उतरता हुआ-सा प्रतीत हुआ। और फिर क्षणों में यह बड़ी तेज गति से एक मेमने पर झपटा और उसे तीक्ष्ण पंजों में पकड़ कर बात की बात में उसे ऊपर ले उड़ा। पास के एक पर्वत की चोटी पर उसकी मादा बैठी मानो उसका इंतजार कर रही थी। वह वहीं पहुंचा और कुछ काल में उन्होंने मिलकर अभागे मेमने का सफाया कर दिया!"

जिस वक्त यह अपने शिकार को खाता रहता है, अपने डैनों से उसे ढके रहता है। उकाबों की यह एक खास रीति है। जबर्दस्त और भयंकर शिकारी है यह! कहते हैं, कभी-कभी मौका पा कर यह मनुष्य के छोटे-छोटे शिशुओं तक को उठा ले जाता है। इसके घोंसले अस्थिपंजरों से भरे होते हैं। उकाब के एक घोंसले में एक बार ५० खरगोशों की ठठरियां मिली थीं और ३०० बतखों तथा भेड़ों के अस्थिपंजर।

समुद्री उकाब तथा उष्ण प्रान्तों में पाये जाने वाले छोटी दुम के उकाब भी कोई कम खतरनाक नहीं होते। बड़ी-बड़ी भेड़ों तक को ये उठा ले जाते हैं तथा छोटे-छोटे जीवित बन्दरों तक को खा डालते हैं। कद में मादा नर से बड़ी होती है, पर रंग-रूप, एक जैसे ही होते हैं।

निस्सन्देह उकाब बड़ा बहादुर पक्षी है। अपनी तेज गति तथा वीरता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण ही तो उसे भगवान विष्णु का वाहन बनने का सौभाग्य प्राप्त है ।

हमारे पड़ोसी देश इंडोनेशिया की राज्याधीन हवाई सेवा का नाम भी गरुड़ इंडोनेशियन एयरवेज़ है। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति के हवाई जहाज़ को "गरुड़" की संज्ञा प्राप्त है ।

आज से बहुत दिन पहले, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में, कलकत्ते के एक एंग्लो इण्डियन कवि "डिरोज़िओ" ने, जिसे अपने भारतीय होने पर गर्व था तथा जिसके हृदय में देश-प्रेम की हिलोरें उठा करती थीं, भारत के दुर्दिन की चर्चा करते हुए लिखा था—

And Eagle pinion is chained at last
And grovelling in the dust liest thou!

अर्थात् गरुड़ के पंख अन्त में जंजीरों से बंध गये और तुम भूमि पर हीन अवस्था में पड़े हुए हो ।

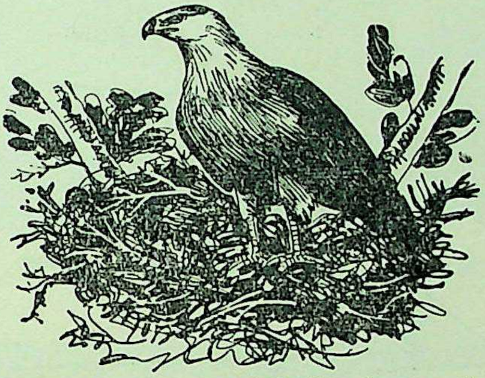

गरुड़ को शक्तिशाली भारतवर्ष का उपमान बनाकर कवि डिरोज़ियो ने भी इसकी कद्र की है—इसकी बहादुरी का सिजदा किया है । अफसोस है कि डाक्टर इकबाल, जो कि झपट्टा मारने वाले बाज़ पर इतने फिदा थे, उकाब की बहादुरी से प्रभावित न हुए ।

दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है जिसे "पक्षीतीर्थम्" (चित्र संख्या : ४६) के नाम से पुकारते हैं। वहाँ शताब्दियों से लगभग दोपहर के समय गरुड़ का एक जोड़ा सुदूर आकाश से उतर कर आता है और फिर मंदिर के पुजारी द्वारा दिये गये खाद्यान्न को ग्रहण करके अंतरिक्ष को लौट जाता है । सैकड़ों आदमी उस समय उसके दर्शन के लिए वहाँ पहले से उपस्थित रहते हैं तथा उन्हें पूजा चढ़ा कर अपनी गरुड़-भक्ति का परिचय देते हैं ।

किसी कवि ने लिखा है—

बड़े काम जो करने हों तो
जा पहाड़ से टक्कर ले,
व्यर्थ गली का धक्कम-धक्का
इसका प्रेम मनुज तज दे ।

मनुष्य गली-कूचों, छोटी-छोटी वस्तुओं का प्रेम भले ही न तजे, उनकी माया में पड़ा रहे, पर गरुड़ नीचे की ओर दृष्टिपात तभी करता है जब उसे कोई शिकार पकड़ना होता है, वर्ना ऊपर से ही मोहब्बत है उसे । धरती तल पर नहीं, वह पहाड़ों की चोटियों अथवा उच्च तरुशिखरों पर बैठता है, ताल-तलैयों के तट पर नहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वाभाविक है कि वह अपना घोंसला भी किसी बड़े वृक्ष के ऊंचे शिखर पर ही बनाता है, नीचे की डालियों पर नहीं ।

चील

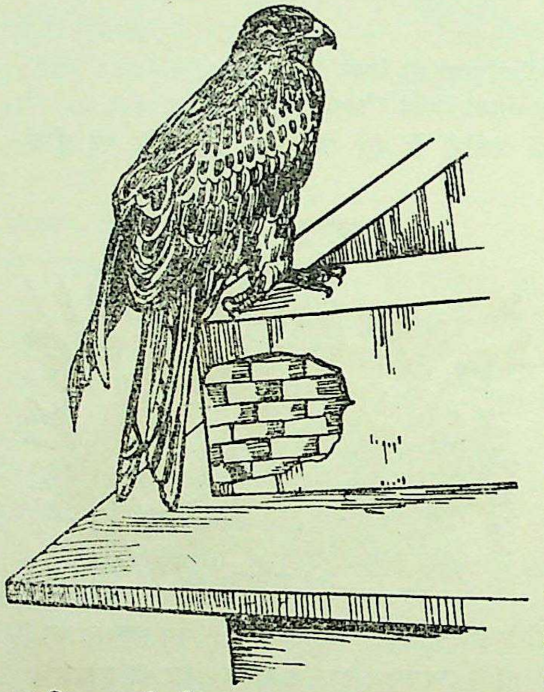

झपट्टा मारने में चील मशहूर है । यह अक्सर मनुष्य के गृह-प्रांगण के ऊपर आकाश में मंडराती रहती है और किसी खाद्य वस्तु को देखते ही उस पर बिजली की तरह टूटती है और क्षणों में उसे ले उड़ती है । मनुष्य के हाथ से चीज छीन ले जाना तो उसके बांए हाथ का खेल है, कभी-कभी हाथ को अपने पंजों की चोट से घायल भी कर जाती है । खाद्य-पदार्थ ही नहीं, हाथ से जेवर तक ले जाते हुए उसे देखा गया है ।

मांस-मछली की दुकानों के पास चीलें हमेशा मंडराती रहती हैं तथा उनके अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले लोगों की जान आफत म किए रहती हैं । झपट्टा मारने के इनके कौशल ने ही "चील-झपट्टा" कहावत को जन्म दिया है ।

चीलों को गोश्त तथा मछली अत्यधिक प्रिय है । कविवर बिहारी ने ठीक ही लिखा है—

" बच न बड़ी सबील हूँ, चीलह घौंसुवा माँस !"

ये कभी-कभी दूसरे पक्षी के बच्चों को भी चुरा ले जाती हैं । गिरगिट, चूहे आदि भी इन्हें काफी स्वादिष्ट लगते हैं । पैनी दृष्टि तो इनकी है ही, हजारों फुट की ऊंचाई से ये खेतों में विचरते हुए चूहे, गिरगिट आदि को देख लेती हैं, विद्युत्-गति से नीचे उतरती हैं और फिर उन्हें पंजों में दबोच कर किसी वृक्ष पर जा बैठती हैं और क्षणों में चट कर जाती हैं । चील चोंच से शिकार नहीं पकड़ती । यही कारण है कि जब वह कोई खाद्यपदार्थ ले कर उड़ती है तो कौए उससे रास्ते में उसे छीनने का यत्न करते हैं । यदि वह चीज चोंच में होती तो कौए को निस्सन्देह ऐसा करने का साहस न होता । चील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीतर चित्र संख्या : ५४

State Museum, LUCKNOW.

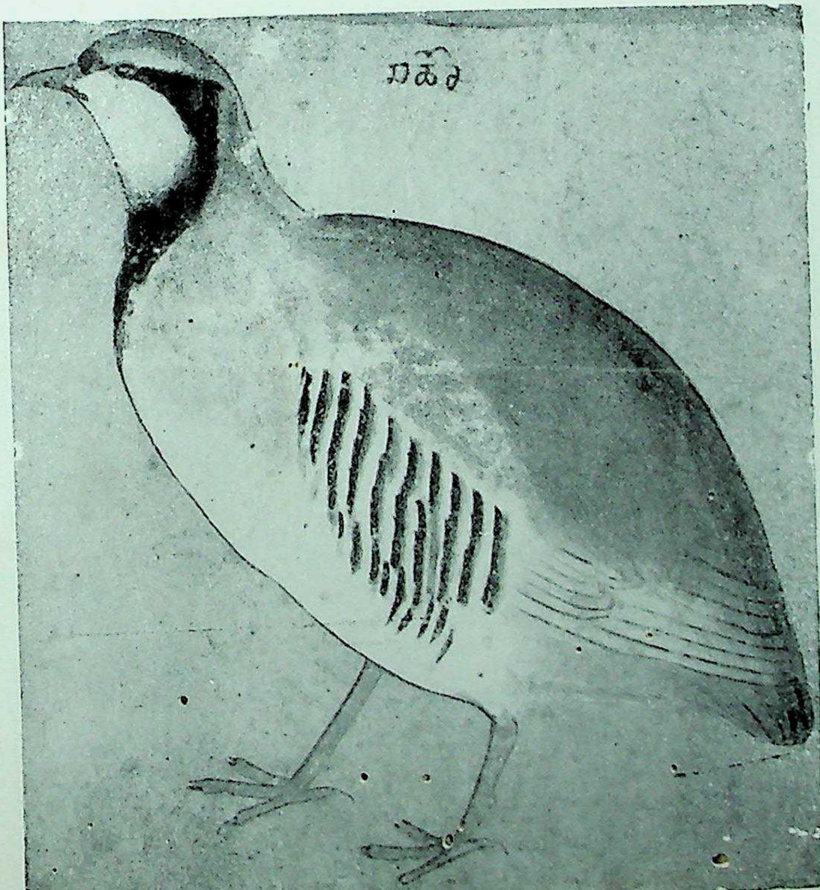

चित्र संख्या : ५५

चकोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्वेत मयूर

चि[illegible]
संख्या : ५[illegible]

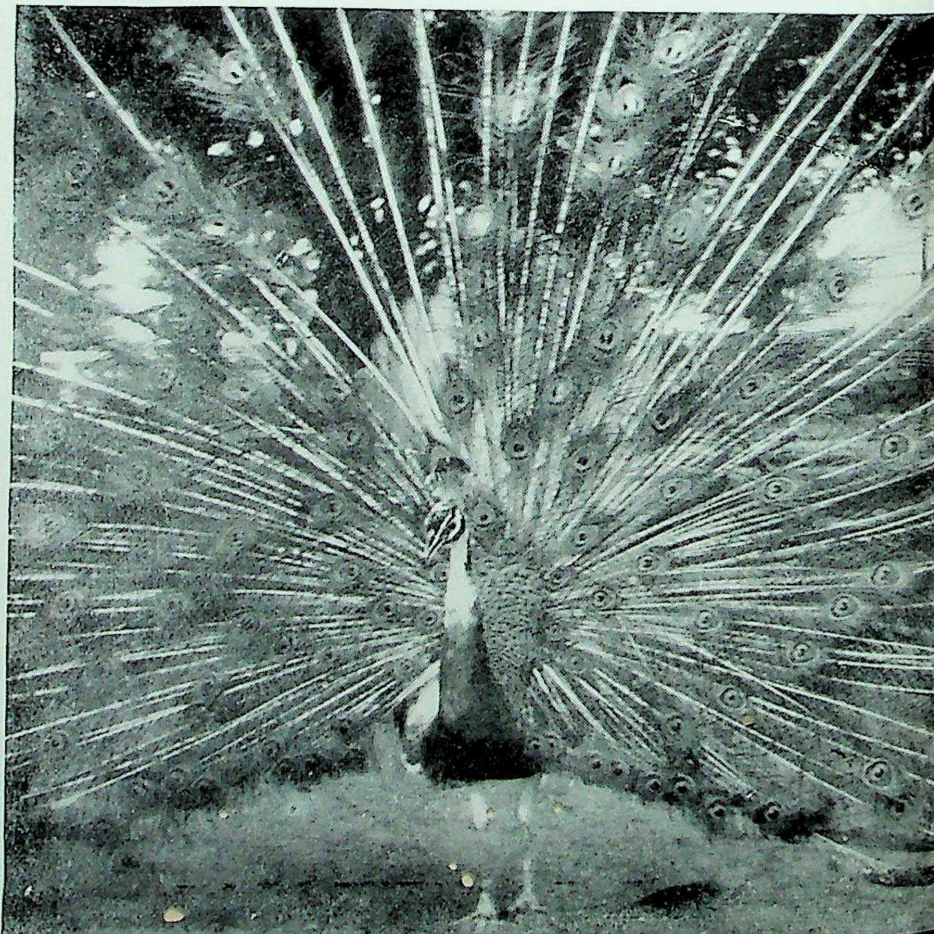

चित्र
संख्या : ५७

**नाचता
हुआ मोर**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उड़ते वक्त अपने डैनों को हिलाती नहीं, उन्हें फैला कर स्थिर रखती है और हवा के सहारे आगे बढ़ती है, मानो आकाश मार्ग से वायुयान जा रहा हो । संभव है कि उड़ती हुई चील को देख कर ही वायुयान के आविष्कर्ता ने इसकी सृष्टि की हो, अर्थात् चील से ही उसे प्रेरणा मिली हो ।

कौओं से इसकी दुश्मनी है, डाह है, जैसा कि एक पेशे के लोगों में आपस में हुआ करता है । कौए इसे बड़ा तंग करते हैं । काश ! वे उकाब के साथ छेड़खानियां करते ! तो उन्हें मालूम होता कि इन छेड़खानियों का क्या नतीजा होता है ।

चील की भी कई उपजातियां हैं, पर दो मुख्य हैं : भूरी या काली और खेमकरी । पहली क़िस्म दूसरी से कुछ बड़ी होती है, प्रायः दो फुट की । नर और मादा में कोई अन्तर नहीं होता । रंग भूरा होता है । नेत्रों के पीछे एक गाढ़ा चित्ता-सा रहता है । चोंच काली होती है, पैर पीले होते हैं ।

खेमकरी के कई और भी नाम हैं, जैसे खैरी, शंकर, धोबिया, चील आदि । इसे चिल्होर भी कहते हैं । इसका सर, गर्दन, सीना सफेद होता है, बाकी सारा बदन खैरे रंग का । डैने का कुछ हिस्सा काला और दुम का शीर्ष-भाग भी सफेद ही होता है ।

इसकी चोंच टेढ़ी तथा पीलापन लिये हुए सींग के रंग की होती है तथा पैर पीले होते हैं। इसे पानी का किनारा अधिक पसन्द है जहां यह आसानी से मछलियां पकड़ सकती है । घोंसला भी जल के समीपस्थ किसी पेड़ पर बनाती है । इसकी बाकी सभी आदतें भूरी चील जैसी होती हैं ।

चील को घोंसला बनाने के लिए निर्जन स्थान की तलाश नहीं है । बहुधा बाजार के बीचों-बीच ताड़ के ऊंचे दरख्तों पर इसके घोंसले आप देखेंगे जहां सुभीते से बाजार से गोश्त और मछली के टुकड़े ला कर यह खाया करती है । यह प्रबल मांसाहारी पक्षी है और ग़ालिब का यह कहना कि 'चील के घोंसले में मांस कहां' सोलहों आने सत्य है ।

उल्लू

उल्लू उन पक्षियों में है, जिसके प्रति युग-युग से संसार अन्यcraft अन्याययुक्त व्यवहार करता आया है । उसकी तरह-तरह से शिकायतें की गई हैं, मजाक उड़ाया गया है, मूर्खता का प्रतिरूप माना गया है । जहां देखिए उसके प्रति व्यंगात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उसे नीचा दिखाने की ही चेष्टा हुई है, उसकी प्रशंसा में दो शब्द भी नहीं लिखे गये हैं । रहीम जैसे करुण-हृदय, न्याय-परायण कवि तक ने, देखिए, किस बेरहमी के साथ कहा है—

शीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत, नहिं चूक,
'रहिमन' तेहि रवि को कहा, जो घटि लखे उलूक ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और तुलसी जैसे संत-कवि तक ने कहा है—

होंहि उलक सन्त निन्दा-रत,
मोहनिशाप्रिय, ज्ञानभानु मत ।

संस्कृत के एक कवि महोदय ने तो उसके पूर्वजीवन पर भी छींटे उछालने की चेष्टा की है । लिखा है—

यद्यपि तरणेः किरणैः सकलमिदं विश्वमुज्ज्वलं विदधे,
तदपि न पश्यति धूकः पुराकृतं भुज्यते कर्म ।

—यद्यपि सूर्य की किरणों से सारा संसार उज्ज्वल हो जाता है, पर उल्लू फिर भी देख नहीं पाता है । यह उसके पूर्व-कृत कर्म का ही तो दोष है । और उर्दू के शायर क्यों चुप रहने लगे ! सो उन्होंने भी हां में हां मिलाई । कहा—

कद्रदानों की तबीअत का अजब रंग है आज,
बुलबुलों को ये हसरत है कि वो उल्लू न हुए !

किन्तु यदि निरपेक्ष, न्यायपूर्ण दृष्टि से देखा जाए तो उल्लू मज़ाक अथवा शिकायत का नहीं, प्रशंसा का पात्र है । कोयल भले ही गाए, पपीहा पी-पी की रट लगाए, मोर नाचे, बुलबुलें गुलों पर अपने प्राण निछावर करती फिरें, पर चिड़ियों में यदि किसी ने कुलीनों जैसा व्यक्तित्व प्राप्त किया है, जिसके समस्त आचारण से, चाल-ढाल से, मुद्राओं से, बड़प्पन टपकता है तो वह उल्लू ही है । कौन दूसरा पक्षी है जिसमें इतना अंग-सौष्ठव, शारीरिक संतुलन विद्यमान है, और वह भी इतनी प्रचुर मात्रा में ? खाद्य पदार्थों को देखकर जिस तरह दूसरी चिड़ियां उस तरफ दौड़ती हैं, अथवा वृक्षों पर, बाग-बगीचों में अकारण फुदकती हैं, जहां-तहां फिरती रहती हैं, भयावह परिस्थिति के उत्पन्न होते ही कांपती हैं, चिल्लाती हैं, उड़ कर भाग खड़ी होती हैं, क्या इसे भी आपने कभी वैसा करते देखा है ? चंचलता, आमोद-प्रियता, दुम, डैने आदि हिला कर आन्तरिक भाव-प्रदर्शन, जो नीचे कुल के लक्षण हैं, आप इसमें कदापि न पायेंगे । किसी भी परिस्थिति में, चाहे वह आनन्द की हो या रोष की, भय की हो या निर्भयता की, इसे आप गाम्भीर्य त्यागते न पायेंगे और न इसके मुंह पर बदलते हुए भाव ही (चित्र संख्या : २५;४७) । शांत भाव से बैठे हुए उल्लू पर आप ईंट-पत्थर फेंकें या उसके सामने भोजन का कोई रुचिकर पदार्थ रखें, वह दोनों ही हालत में स्थिर, अविचलित-सा, बैठा रहेगा । दर असल उल्लू का आचरण अन्य पक्षियों के आचरण से बिल्कुल भिन्न है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर बर्टन के शब्दों में, उल्लू अपने व्यवहार में अन्य पक्षियों से बिल्कुल ही नहीं मिलता है । अक्सर दो उल्लू एक साथ देर तक बैठे रहेंगे पर एक-दूसरे के प्रति उदासीन ही रहेंगे ।

खेद है कि संसार की पैनी दृष्टि से उलूक पक्षी के ये महान गुण आज तक ओझल ही रहे ! निस्सन्देह पक्षियों में स्थितप्रज्ञ है यह !

उल्लू तथा अन्य पक्षियों में स्वभाव का ही नहीं वरन् बनावट का भी काफी फर्क है ।

साधारणतः उल्लू दिन में पेड़ों के किसी झुरमुट में जा बैठते हैं, शाम होते ही बाहर निकल आते हैं तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर प्रेतों की तरह उड़ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगते हैं । पर इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो सूर्य की प्रखर ज्योति से घबड़ाते नहीं, बल्कि उसमें बड़े आनन्द के साथ उड़ते फिरते हैं । विलायत के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "फ़ील्ड" में अभी पिछले दिनों प्रकाशित एक पत्र मुझे देखने को मिला जिससे इस कथन की पुष्टि होती है । उस पत्र में एक सज्जन ने आक्सफोर्ड से लिखा था कि वह पिछले दिनों मोटर से किसी सरिता-तट से गुजर रहे थे जब कि उन्होंने एक बार्न उल्लू को धूप में इधर-उधर उड़ते हुए, वह भी बड़ी स्वच्छन्दता से, देखा था ।

जो यह कहते हैं कि उल्लू सूर्य का प्रकाश सहन नहीं कर सकता, उन्हें इस पत्र पर ध्यान देना चाहिए ।

दूसरा अन्तर इसकी शक्ल-सूरत में है । इसकी आंखें अन्य पक्षियों की तरह बगल में न होकर मनुष्य की भांति सामने होती हैं । आंखें काफी बड़ी, गोल होती हैं तथा पीछे देखने के लिए यह बड़ी आसानी से अपनी गर्दन घुमा सकता है जबकि दूसरी चिड़ियां ऐसा करने में असमर्थ होती हैं ।

तीसरी विभिन्नता इसके परों में है । ये अत्यन्त मुलायम होते हैं, मानो पशमीने के बने हुए हों । और इसी कारण जब यह उड़ता है तो कतई आवाज नहीं होती । रात में जब यह अपने शिकार पर हमला करता है, तो उसे जब तक कि यह दबोच न ले उसे इसका जरा भी पूर्वाभास नहीं मिलता ।

चौथा अन्तर इसके कानों की बनावट में है । इसके कान काफी बड़े और खुले होते हैं जब कि और पक्षियों के छोटे तथा बालों से ढके होते हैं । बड़े और खुले कान होने के कारण धीमी से धीमी आवाज़ भी उन तक बड़ी आसानी से जा पहुँचती है ।

उल्लू अपने शिकार को नोच-नोच कर नहीं खाता, सीधे निगल जाता है । इसके पैर परों से ढके होते हैं, अतएव जिस समय यह चूहे जैसे शिकार को पकड़ता है, उसके आघात व काट खाने की चेष्टा का पैरों पर कुछ असर नहीं पड़ता ।

उल्लू का सर बिल्ली के सर की तरह ही गोल होता है । इस देश में उल्लू की प्रायः ४०–४५ किस्में हैं, जिनमें तीन-चार मुख्य हैं :

१. एक वह है जो कि अधिकतर पुराने मकान के खंडहरों—प्राचीन किला, कब्र आदि में निवास करता है। अंग्रेजी में इसे "बार्न आउल" (अन्न संग्रहालय के उल्लू) के नाम से पुकारते हैं । कहते हैं कि यह प्रकाश को सहन नहीं कर सकता, अतएव दिन में मकान के किसी अंधेरे कोने में जा बैठता है, शाम होते ही एक मनहूस-सी आवाज करता हुआ बाहर निकलता है तथा मकान की एक छत से दूसरी छत पर, एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक उड़ता रहता है ।

विचित्र आवाज तथा आधी रात में बारम्बार इधर से उधर उड़ते रहने के कारण ही यह अंधविश्वास है कि मकान में इसका रहना अथवा आना-जाना किसी भावी दुर्घटना का सूचक है—अशुभ है । पर हमें यह न भूलना चाहिए कि एक दृष्टि से इसका निवास, खासकर ऐसे मकान में जहां अन्न का भण्डार हो, अत्यन्त उपादेय भी है क्योंकि चूहे आदि जन्तुओं को खा कर यह संगृहीत अन्न की बड़ी रक्षा करता है । इसकी इसी उपादेयता के कारण कई देशों में लोग इसे अन्न भंडार-गृहों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खास तौर पर पालते हैं । शायद यही वजह है कि हमारे देश में यह लक्ष्मी का वाहन भी माना गया है । भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, पूर्वकाल में, लक्ष्मी का शुभागमन नाज के रूप में ही तो हुआ करता था ।

इस जाति के उल्लू की यह एक खास विशेषता है कि वह घर के जिस कोने में दिन भर बैठता है, साल-ब-साल वहीं बैठा करता है; स्थान-परिवर्तन उसे कतई पसन्द नहीं है । और यदि वहां बैठने वाला उल्लू काल-कवलित हो जाए, तो फौरन कोई दूसरा उल्लू आकर वहीं आसन जमा लेता है; स्थान खाली नहीं रह पाता—किसी साधु की धूनी की तरह, जहां धूनी रिक्त होने पर कोई-न-कोई साधु अवश्य ही आ बैठता है ।

मकान के आस-पास के पेड़ों पर इसका बोलना इस देश में बड़ा अशुभ मानते हैं, क्योंकि सर्वसाधारण में यह धारणा है कि उल्लू को आदमी की मृत्यु का पूर्वाभास मिल जाता है और तभी यह घर के पास आकर मनहूस आवाज करता है ।

कद इसका जंगली कौए के समान होता है । रंग--ऊपर सुनहला बादामी, नीचे सफेद होता है । अंडे पूरे साल भर देता है । मादा चार से सात अंडे तक एक बार में देती है । नर और मादा के रूप-रंग में कोई अन्तर नहीं है ।

२. दूसरी जाति का उल्लू वह है जो अधिकतर जल के किनारे किसी खंडहर या पेड़ की झुकी हुई डाल पर निवास करता है। यह जल की मछलियों को खाता है और चूहे, मेंढक, पक्षी भी इसे स्वादिष्ट लगते हैं । मछलियों को यह बड़ी तेजी से पकड़ता है ।

इसका सर काफी बड़ा, तथा ऊपर के पर गहरे कत्थई रंग के, डैने तथा दुम भूरे, गला सफेद होता है । जहां-तहां भूरी धारी भी होती है । सर के ऊपर उठे हुए पर के गुच्छे होते हैं, जो लम्बे कान के सदृश लगते हैं। इसे मत्स्य-उलूक के नाम से भी पुकारते हैं। मुखाकृति बिल्ली से मिलती-जुलती-सी होती है। इसकी एड़ी और घुटनों के बीच का भाग पर-रहित होता है और पर के बजाय एक प्रकार के कटीले चोइटे होते हैं, पांव के तलवों में भी, तथा इसके बड़े पंजों में नुकीले कांटे होते हैं, ताकि यह मछलियों को आसानी से पकड़ सके, वे इसके पंजों से फिसल कर निकल न भागें ।

इसके अंडा देने का समय दिसम्बर से मार्च तक है । अंडों की संख्या दो होती है । अक्सर यह दूसरे पक्षी, गीध आदि के घोंसले पर अपना अधिकार जमा लेता है ।

प्रकाश इसे भी असह्य है, अतएव यह वृक्षों के घने अन्धकार में दिन बिताता है, सन्ध्या होते ही बाहर निकल कर किसी ऐसे स्थान पर जा बैठता है जहां से मछलियों का जल के ऊपर तैरना नजर आए। कभी-कभी जल के ऊपर भी यह उड़ता हुआ मछली की खोज करता फिरता है ।

३. तीसरा वह उल्लू है जिसे सींगदार उल्लू के नाम से पुकारते हैं । गहरे बादामी तथा काले रंगों के धब्बों से चिह्नित इस उल्लू के सर पर दो काली-काली कलंगियां होती हैं, जो सींग जैसी लगती हैं । और जातियों की अपेक्षा इस जाति के उल्लू दिन में अधिक देखते हैं, बिल्कुल अंधे नहीं होते, तथा शाम से ही किसी ऊंची जगह पर शिकार की टोह में जा बैठते हैं । चूहे आदि के अलावा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरगिट, छिपकली आदि रेंगने वाले जन्तुओं को भी यह बड़े चाव से पकड़ कर खाते हैं।

अंडा देने का समय नवम्बर से अप्रैल तक है। अंडों की संख्या तीन से चार तक होती है।

४. चौथी जाति का उल्लू वह है जिसे "चितकबरा", "खूसटिया" आदि नामों से पुकारते हैं। कद में यह मैना के बराबर होता है। इस देश में इस जाति का उल्लू बहुतायत से पाया जाता है। यह हर प्रकार की जगहों में जोड़ा बांध कर रहता है, कभी-कभी एक से अधिक जोड़े भी साथ-साथ रहते हैं। अधिकतर गांवों में अथवा गांव और शहर के आसपास रहना इसे पसन्द है, घना जंगल नहीं। आप यदि अपने घर के पास किसी वट, पीपल अथवा आम के वृक्ष पर तलाश करेंगे, तो अवश्य ही दो-चार ऐसे उल्लुओं को बैठा पाएँगे। कहते हैं दिन में इसे और प्रकार के उल्लुओं की अपेक्षा अधिक सूझता है और यह कभी-कभी दिन में भी उड़ता नजर आता है, परन्तु इस भय से कि कहीं और पक्षी इसका पीछा न करें—तंग करने की चेष्टा न करें—यह पत्तों की झुरमुट में ही दिन बिताना श्रेयस्कर समझता है।

शाम हुई और यह बाहर निकल कर खंभों अथवा टेलिग्राफ के तारों पर या खुले वृक्षों पर जा बैठता है। फिर तो यह बड़े आनन्द के साथ कीड़े-मकोड़ों अथवा छोटे-छोटे चूहों का शिकार भी शुरू कर देता है। रात भर अपनी कर्णकटु आवाज में ठहर-ठहर कर बोलता भी है। कई उल्लू एक साथ बोलते हैं। एक बोलता है, दूसरा समीप के ही किसी स्थान से उत्तर देता है, और इस तरह इनके सवाल-जवाब चलते रहते हैं।

आम तौर पर यह छेड़ने पर भी शांत बैठा रहता है। पर कभी कभी ऐसा भी होता है कि यह अपना धैर्य खो बैठता है और उस समय यदि आपने भूल से समीप जा कर इस पर नजर डाली, तो यह बड़े ही क्रोधापन्न भाव से आपकी ओर देखेगा, मानो आपकी इस हरकत से इसे सख्त नाराज़गी है, और फिर उड़कर अन्यत्र चल देगा। उस समय की इसकी भयंकर दृष्टि देखने ही लायक होती है।

दरअसल चाहे किसी भी जाति का उल्लू हो, मनुष्य का उसकी ओर एकटक देखना उसे जरा भी पसन्द नहीं है। एक सज्जन श्री मोर्टिमर बैटन को पक्षियों की फोटोग्राफी का अत्यन्त शौक है। एक बार सुनसान रात में उन्होंने दो सींगदार उल्लूओं की, जो उनके एक मित्र के अहाते में रोज रात को आकर उनके पालतू पक्षियों पर आक्रमण किया करते थे, तस्वीर उतारने की चेष्टा की। उस वृक्ष पर, जिस पर वे आधी रात में चुपचाप आ कर बैठा करते थे, उन्होंने कैमरा लगाया और उनकी प्रतीक्षा में जा बैठे। निश्चित समय पर दो खूब मोटे-ताजे उल्लू वहां आ पहुँचे। श्री मोर्टिमर बैटन ने टार्च जलायी और फोटो लेना चाहा। उस समय की अवस्था का जिक्र अपने एक लेख में करते हुए उन्होंने लिखा है: "मेरे 'टार्च' जलाते ही नर-उल्लू ने तेज आंखों से डैने फैला कर मेरी ओर देखा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मुझ पर आक्रमण करने ही वाला है। मैंने भयभीत हो कर, अपना शिकारी चाकू संभाला, पर चाकू के इस्तेमाल की जरूरत न पड़ी।" उल्लुओं ने शायद अपना विचार बदल डाला था तथा बैटन साहब कुशलपूर्वक दरख्त से नीचे उतर सके थे। सुबह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाकर उन्होंने देखा कि वृक्ष की डाल के नीचे, जहां उल्लू बैठे थे, उनके मित्र के एक पालतू पक्षी का कटा सर पड़ा हुआ है ।

खूसट के ऊपर के पर बादामी होते हैं जिन पर सफेद दाग होते हैं । नीचे के पर श्वेत होते हैं जिन पर बादामी धब्बे या धारियां होती हैं । आंखे पीली, बड़ी-बड़ी होती हैं । इसके अंडा देने का समय नवम्बर से अप्रैल तक है । इनकी संख्या तीन से पांच तक होती है । घोंसला यह किसी वृक्ष-कोटर में या किसी प्राचीन इमारत की सूराख में बनाता है ।

उल्लू की, जैसा कि मैं पहले लिख आया हूं, बहुतेरी जातियां हैं। पर ये चार उनकी मुख्य किस्में हैं । उल्लुओं में कुछ तो ऐसे हैं जो दिन में साधारणतः बाहर नहीं निकलते, पुरानी इमारतों के अंधेरे हिस्सों में या घने वृक्षों के बीच दिन बिताते हैं । कुछ, खासकर खूसट जाति के, प्रकाश में भी जब-तब निकल कर धूप का सेवन करते हैं । आमतौर पर ख्याल है कि बड़ी जाति वाले उल्लू धूप में देख नहीं पाते। पर इसी लेख में उद्धृत एक पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बात पूर्णतः सत्य नहीं है ।

खूसट सन्ध्या होते ही और कभी-कभी दिन में भी, जब-तब हमारे बरामदों में आ पहुँचते हैं तथा लैम्प पर उड़ते हुए पतंगों को पकड़-पकड़ कर खाने लगते हैं । आपके उद्यान-भवन के तो ये रोज के अतिथि हैं। आप इन्हें लाख भगायें, ये भागने के नहीं। अधिकतर नर और मादा साथ ही आपकी मेहमाननवाजी के लिए आ पहुँचेंगे । उल्लू संसार भर में पाए जाते हैं।

इनके सम्बन्ध में देश-देश में अनेक भ्रान्तियां फैली हुई हैं : उल्लू सूर्य का प्रकाश सहन नहीं कर सकता, उल्लू बुद्धिहीन होता है, उल्लू का गृह में प्रवेश अथवा गृह के आस-पास बोलना अशुभ है, अकल्याणकारी है, इत्यादि । इसकी गणना साधारणतः त्याज्य पक्षियों में की जाती है । पर सृष्टि के आरम्भ में उल्लू के प्रति विरोध की यह भावना न थी, वर्ना भारतवर्ष में आदिकाल से इसे लक्ष्मी का, और प्राचीन यूनान में सरस्वती का वाहन न मानते । वर्तमान समय में भी जो गुणों के पारखी हैं, ऐसे कई महान् कवियों ने—खासकर इंग्लैण्ड के—इसके प्रति प्रशंसा और सहानुभूति के ही भाव प्रकट किये हैं । ई० एच्० रिचार्ड्स ने तो हमें उल्लू के समान होने की सलाह तक दे डाली है । कहा है—

A wise old owl sat on an Oak,
The more he sat the less he spoke,
The less he spoke the more he heard;
Why aren't we like that wise old bird?

एक ओक वृक्ष पर एक बुद्धिमान उल्लू बैठा,
और जितनी ही देर बैठा, उतना ही कम बोला,
और जितना ही कम बोला, उतना ही अधिक उसने सुना;
उस बुद्धिमान, वयोवृद्ध पक्षी की तरह क्यों नहीं हैं हम ?

तथा कीट्स का हृदय उसकी सहानुभूति में बोल उठा था—

St. Agnes' Eve-ah ! bitter chill it was !
The owl for all his feathers, was a-cold.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संत ऐग्नीस की संध्या बहुत ही सर्द थी
पंखों से ढका हुआ भी उल्लू कांप रहा था ।

टेनिसन भी, जिन्होंने बड़े-बड़े व्यक्तियों पर सुन्दर कविताएं लिखीं, इसे न भूले । उन्हों ने लिखा :

Alone and warming his fine wits,
The white owl in the belfry sits.

अकेला, अपनी तीक्ष्ण बुद्धि को गरमाता,
सफ़ेद उल्लू घंटाघर पर बैठा है ।

यही नहीं, आज भी हमारे बंगाली भाई सफेद उल्लू का घर में आना शुभ मानते हैं; लक्ष्मी के आगमन की पूर्व सूचना समझते हैं । और यदि सच पूछिए तो हमें उल्लू के प्रति कृतज्ञ ही होना चाहिए कि वह अन्न के सबसे प्रबल शत्रु चूहा तथा गिलहरी आदि को उदरस्थ कर के अन्न की रक्षा करता है । एक प्रकार से वह अन्न-संग्रहागारों का जबर्दस्त रक्षक है ।

गीध

रुआ चहुंदिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी,
फरफराइ बोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी ।
अंधकार बस गिरत काक अरु चील करत रव,
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव ।
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूंकि डरपावई,
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इन पंक्तियों में वर्षाकालीन श्मशान का वर्णन है । इनमें गीध का उल्लेख है और इसमें शक नहीं कि बगैर गीध के किसी श्मशान की कल्पना असम्भव है, गीध श्मशान के बारहमासी पक्षी हैं, पंडे हैं—रात-दिन के रहने वाले हैं। जब कभी वहां जाइये, दर्जनों एक साथ बैठे मिलेंगे (चित्र संख्या : ४८) । कोई मुर्दा हाथ लगते ही इनका "महामहोत्सव" शुरू हो जाता है । कहावत भी है 'जैसे गीध मुर्दे पर टूटते हैं' । वास्तव में एक ही मुर्दे पर दर्जनों गीध टूट पड़ते हैं और घंटे आध घंटे में उसे चट कर जाते हैं ।

गृद्ध की दृष्टि बड़ी पैनी होती है । ये बगैर दूरबीन के बहुत दूर तक देख सकते हैं । चार मील पर भी कोई मुर्दा पड़ा हुआ हो, तो ये उसे फौरन देख लेते हैं और वहां अविलम्ब पहुंच जाते हैं । "गृद्ध दृष्टि" प्रसिद्ध है । ये अक्सर ऊंचे ताड़ के वृक्ष पर बैठे रहते हैं चूंकि वहां से इन्हें दूर-दूर तक देखने में सुविधा होती है । बौद्ध कथाओं में राजगिरि के गृद्ध-कूट पर्वत का उल्लेख आता है । सम्भवतः यह कोई ऊंचा-सा पर्वत शिखर था जहां से गीध चारों ओर अपनी नजर दौड़ाया करते थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुर्दों के भक्षण के कारण गीध के बदन से बड़ी दुर्गन्ध निकलती रहती है । इसे हम इन्हीं कारणों से घृणा की दृष्टि से देखते हैं, अशुभ मानते हैं । यदि किसी मकान पर इसकी चरण-रज पड़ जाए, तो उसे त्याग देते हैं या पूजा-पाठ के द्वारा उसकी शुद्धि कराते हैं । फिर भी भगवान रामचन्द्र ने इसके पूर्वज जटायु को छाती से लगाया था, क्योंकि उसने रावण से सीता को छुड़ाने में अपने प्राण दे दिये थे । ऐसी है परोपकार की महिमा !

गीध के द्वारा आज भी मानव-जाति का जो उपकार हो रहा है वह अपरिमेय है । सड़े-गले मुर्दे, जो जहां-तहां पड़े हुए दुर्गन्धि फैलाते रहते हैं, यदि इसके द्वारा उदरस्थ न कर लिये जाएं तो चारों ओर भयंकर रोग–महामारी आदि–फैल जाएं और न जाने कितने व्यक्तियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े । इस देश में यदि कोई पशु मर जाता है तो अधिकांशतः लोग उसे मिट्टी में गाड़ने के बजाय इधर-उधर फेंक देते हैं । गीध इन्हें खाकर वही काम करते हैं जो कूड़ा-करकट की सफाई करने वाले किया करते हैं । ऐसी दशा में हम उन्हें भगवान राम की तरह छाती से भले ही न लगायें, पर कम से कम उनसे नफरत तो नहीं करनी चाहिए।

गृद्ध या गीध की भी कई उपजातियां हैं। बड़े-छोटे हर कद के गीध पाये जाते हैं । सबसे प्रसिद्ध वे हैं जिन्हें राजगीध कहते हैं । ये प्रायः एक गज के होते हैं । गर्दन के दोनों ओर चमड़ा लटका रहता है, मानो "काकर स्पेनियल" कुत्ते के कान हों; कन्धों तथा वक्षस्थल पर सफेदी होती है, बाकी सारे अंग में कालापन होता है ।

राजगीध से कुछ बड़े चमर-गीध होते हैं। इनका रंग अधिकांशतः भूरा होता है, जहां-तहां सफेदी भी होती है । पीठ पर एक बड़ा-सा सफेद चिह्न होता है । जहां राजगीध जोड़ा बांध कर रहता है, ये गोल बांधकर रहने वाले गीध हैं जो गांवों और शहरों के अड़ोस-पड़ोस के ऊंचे वृक्षों पर डेरा डाले रहते हैं । इनकी बाकी आदतें राजगीध जैसी ही होती हैं ।

एक तीसरे प्रकार के गीध होते हैं "गोबर-गिद्धा," जो आकार-प्रकार में चील से बहुत कुछ मिलते हैं । रंग इनका सफेद होता है । और गीधों की तरह ये मुर्दा नहीं खाते, मल-मूत्र का भक्षण करते हैं, और इसीलिए अंग्रेजी में इन्हें मेहतर कहते हैं। स्वभाव से ये धृष्ट होते हैं तथा अक्सर हमारे मकानों की छत पर बैठ जाते हैं । कद में २०-२१ इंच के होते हैं ।

गीध की दृष्टि, जैसा कि कहा जा चुका है, बड़ी तीक्ष्ण होती है । इसके पंख भी बड़ मजबूत होते हैं । सुदूर आकाश में यह उनके सहारे घंटों उड़ता हुआ दूर-दूर तक मुर्दे की तलाश में नजर दौड़ाता है । मुर्दे पर दृष्टि पड़ते ही फौरन वहां जा पहुंचता है और उसे इतना भरपेट खाता है कि कभी-कभी उसके बाद तीन-चार दिन तक बैठा ऊंघता रहता है, खाने का नाम नहीं लेता ।

यह न तो जल में नहाता है न धूल में । सूर्य-स्नान इसे अवश्य प्रिय है; धूप म अपने डैनों को फैलाकर घंटों बैठा रहता है ।

यह जाड़ों में घोंसला बनाकर अंडे देता है जिनकी संख्या एक से दो तक होती है । ऊंचे वृक्षों पर अधिकांशतः ताल के वृक्ष पर यह घोंसले बनाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानान्तरण के पहले एक पड़ाव पर समूह में बैठे हुए पक्षी चित्र संख्या : ५८

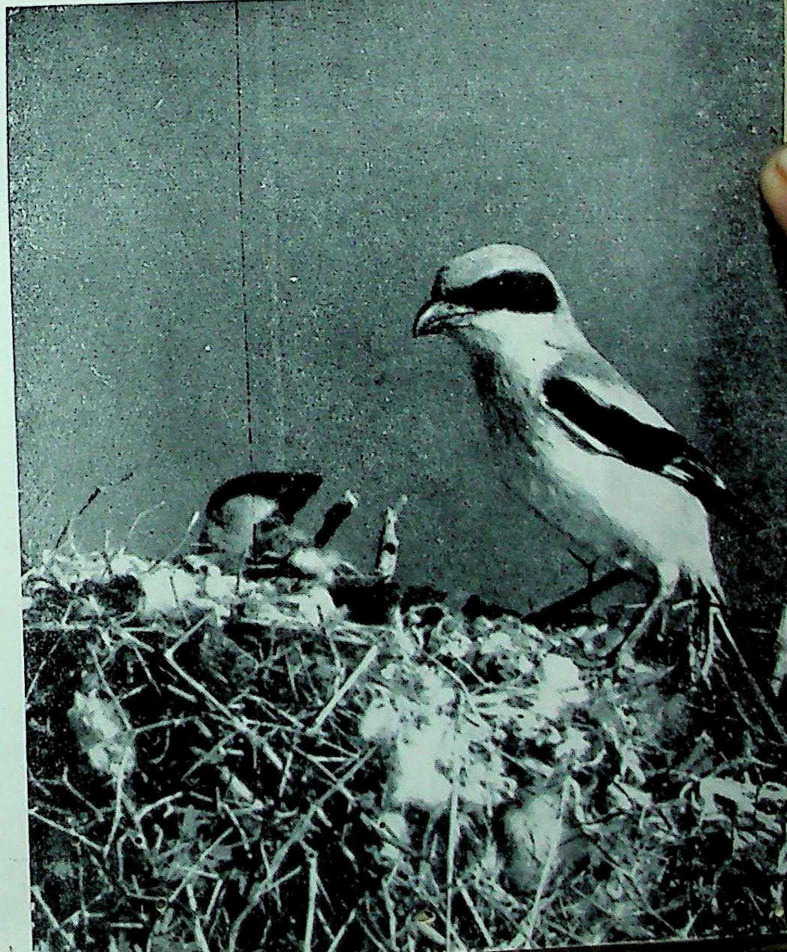

चित्र संख्या : ५९

लहतोरा अपने घोंसले पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सहेली
(एक प्राचीन
चित्र)

चित्र
संख्या : ६०

चहा
(एक प्राचीन
चित्र)

चित्र
संख्या : ६१

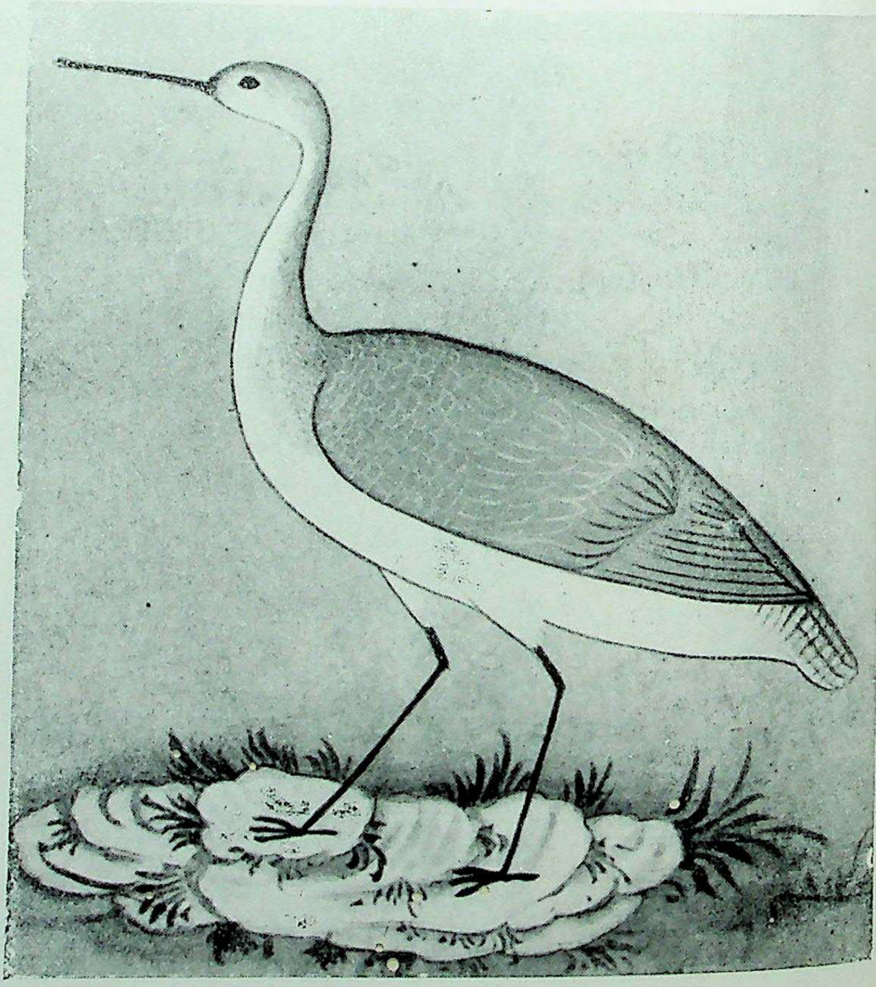

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धनेश

आयुर्वेद की दृष्टि से धनेश एक बड़े महत्व का पक्षी है । उसमें इसके तेल का कई कठिन रोगों में व्यवहार लिखा हुआ है । संस्कृत में इसे वाघ्रीणस, अंग्रेजी में हार्नबिल, तथा हिन्दी में धनेश और बनराव के नामों से पुकारते हैं । इसकी कई किस्में हैं । सोलह किस्में केवल भारतवर्ष में ही प्राप्य हैं । पर इनमें प्रमुख दो हैं—एक साधारण भूरे रंग का; दूसरा वह जिसके सर पर एक तुर्रा-सा होता है तथा जिसे अंग्रेजी में मलाबार पायड हार्नबिल, हिन्दी में धानचुरी तथा बंगाल में 'बगमा धनेश' के नाम से पुकारते हैं ।

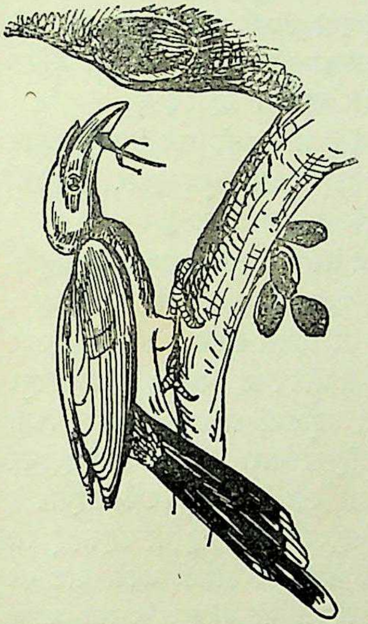

साधारण धनेश पंजाब के कुछ हिस्सों को छोड़कर इस देश के बाकी सभी राज्यों में उपलब्ध है । कद में यह प्रायः दो फुट लम्बा, रंग में गाढ़ा भूरा होता है । इसकी पूंछ काफी लम्बी होती है जिसके छोर पर सफेदी होती है । पेट, जांघ तथा दुम का निचला हिस्सा सफेद होता है । चोंच एवं सर की टोपी काले रंग की होती है । चोंच की बनावट सींग की सी होने के कारण ही अंग्रेजी में इसे हार्न (सींग) बिल (चोंच) के नाम से पुकारते हैं (चित्र संख्या : २६) । अन्य जाति के धनेश जहां वनों में रहना अधिक पसन्द करते हैं, इसे खुले मैदान में, गांव के अड़ोस-पड़ोस में तथा बाग-बगीचों में रहना अधिक रुचिकर है । ग्राम्य-वृक्ष के कोटरों में यह बहुधा प्रजनन-क्रिया सम्पन्न करता हुआ पाया जाता है ।

धानचुरी का कद भूरे धनेश से प्रायः एक फुट बड़ा होता है; सर, गला, पीठ, डनें तथा दुम के बीच के दो पर काले होते हैं जिसमें हरेपन की झलक आती रहती है । बाकी पर बिल्कुल सफेद होते हैं और ठोड़ी पर एक हल्का-सा पीला धब्बा होता है । मादा की आंखों के चारों ओर एक सफेद कंठी होती है । चोंच तथा सिर के तुर्रे के निचले हिस्से में पीलापन होता है; तुर्रे के बाकी हिस्सों में कालापन । यह पहाड़ी प्रान्तर में, वन में, रहना अधिक पसन्द करता है ।

प्रत्येक किस्म के धनेश पक्षी की एक खास विशेषता है जो कि और पक्षियों में नहीं पायी जाती । वह यह कि उसकी आंखों के ऊपर भौंहें होती हैं । डैनों के नीचे मुलायम पर, जो और पक्षियों में होते हैं, धनेश में नहीं होते । सर पर टोपी होती है : धानचुरी की टोपी औरों से बड़ी—प्रायः ८ इंच लम्बी । इसकी उपयोगिता क्या है, यह आज तक किसी की समझ में न आ सका ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धनेश घोंसले नहीं बनाते। पेड़ों के प्राचीन कोटरों में ही मादा अंडे देती है। इसके सम्बन्ध में सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि अंडा देने के समय से जब तक कि बच्चे इस लायक नहीं हो जाते कि वे प्रसूति-गृह से निकल कर अपने पांवों पर खड़े हो सकें, मादा पर्दानशीन बनी रहती है। प्रसव-काल निकट आते ही वह किसी वृक्ष-कोटर में जा बैठती है तथा उसके मुंह को एक दीवार से बंद कर लेती है, केवल एक सूराख छोड़ देती है जिससे वह अपनी चोंच बाहर निकाल कर नर के द्वारा लाये हुए खाद्यपदार्थों को ग्रहण कर सके। हफ्तों उसे इस दशा में रहना पड़ता है और नर नित्य प्रति अपनी चोंच में खाने की चीजें—कीड़े-मकोड़े, गिरगिट और छिपकली तक—ला-लाकर उसे खिलाया करता है। असूर्यम्पश्या रानियों तथा बेगमों की तरह वह पर्दे की ओट से ही उस पर हुक्म जमाया करती है। पर्दे के भीतर ही उसके पुराने पर झड़ पड़ते हैं तथा उनकी जगह नये पर उग आते हैं। अतः जब वह बाहर निकलती है तो उसका सौन्दर्य पहले से कहीं अधिक निखरा हुआ नजर आता है; रूप में कहीं अधिक आकर्षण रहता है।

धनेश के पर देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हैं और इसके सब से बड़े कद्रदान हमारे उत्तर-पूर्व सीमा क्षेत्र में रहने वाले नागा हैं, जो अपने नृत्य-शृंगार में इसको विशिष्ट स्थान देते हैं। वे अपनी पोशाक इनके परों से सजाते हैं।

पक्षि-शास्त्र के पंडितों के बीच इस बात को लेकर बड़ा मतान्तर है कि प्रसूति-गृह के द्वारावरोध में केवल मादा का ही हाथ रहता है या मादा-नर दोनों का। कइयों का मत है कि केवल मादा ही उस कार्य को सम्पन्न करती है। कई नर का भी इस काम में हाथ बटाना बताते हैं। पर श्री लोथर का, जिन्होंने छोटा नागपुर के जंगलों में रह कर धनेश पक्षी के जीवन तथा प्रवृत्तियों का खास अध्ययन किया था, कहना है कि यद्यपि इस कार्य में मुख्य हिस्सा मादा का ही रहता है, नर चोंच में बाहर से मिट्टी ला-लाकर उसे सहायता देता है, अर्थात् नर के सहयोग से ही वह इस काम को पूरा करती है। लोथर महोदय का ही यह भी कहना है कि द्वार के इस प्लास्टरिंग या पलस्तर के काम में मादा अधिकांशतः अपनी बीट का प्रयोग करती है; हां नर के द्वारा लायी हुई मिट्टी भी मजबूती के लिए उसमें मिला दी जाती है। फिर तो वह ऐसी कड़ी हो जाती है मानों सीमेण्ट की बनी हुई दीवार हो।

जब पर्दे से बाहर होने का वक्त आता है, तो मादा अपनी चोंच रूपी हथौड़ी से वृक्ष-कोटर के इस द्वार पर आघात करना शुरू करती है। नर भी आ कर जब-तब सहयोग देता है और कुछ काल में दीवार तोड़ कर वह बाहर निकलती है। नर उसकी प्रतीक्षा में मिलनातुर बाहर बैठा होता है, और फिर दोनों एक साथ मिलकर सैर-सपाटे को चल देते हैं। पर्दे से बाहर होते ही मादा पहले अपनी चोंच खूब साफ कर लेती है, नये परों को देर तक फड़फड़ाती रहती है, मानों उनकी ताकत की आजमाइश कर रही हो।

जिन दिनों वह पर्दे के भीतर रहती है, दुबली-पतली और असुन्दर-सी लगती है जैसा कि उन पक्षी-विशेषज्ञों का कथन है जिन्होंने समय के पूर्व ही घोंसले के अवरुद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वार को तोड़ कर इस बात की परीक्षा ली है। पर जब वह बाहर निकलती है तो बजाय इसके कि वह हफ्तों-महीनों घर में बन्द रहने के कारण क्षीण एवं अपरिष्कृत नज़र आये, काफी साफ-सुथरी, मोटी-ताजी, नज़र आती है।

घोंसले की इस टूटी हुई दीवार की मरम्मत करके धनेश के नवजात शिशु कुछ काल तक उसमें निवास करते हैं, फिर पंखों में ताकत आने पर उड़ कर देश-देशान्तर को चल देते हैं। मादा की पर्दानशीन अवस्था में—या यों कहिये कि बन्दी जीवन-काल में—उसके खाने-पीने की व्यवस्था का सारा भार नर के ऊपर रहता है और वह जिस कुशलता से इस काम को अंजाम देता है, वह अतिशय प्रशंसनीय है। यही नहीं, इसके गहरे दाम्पत्य-प्रेम का परिचायक भी है।

दिन भर में एक नहीं दर्जनों बार नर गले के भीतर खाद्यवस्तुएं रख कर लाता है और उन्हें नरेटी से बाहर निकाल-निकाल कर उसे खिलाता है। नर का आभास पाते ही मादा सूराख के भीतर से अपनी चोंच बाहर निकाल देती है और तब नर गले को पीछे की ओर करके एक झोंका देता है और फिर लाई हुई वस्तु को मुंह के रास्ते निकाल कर उसकी चोंच में रखता है और इस प्रकार अन्दर की सारी चीजों को वह एक-एक कर उसे खिला डालता है।

इन चीजों में वट, पीपल, नीम आदि के छोटे-छोटे फल तो होते ही हैं, टिड्डी, गिरगिट आदि जीव-जन्तु भी रहते हैं, जिन्हें मादा बड़े चाव से ग्रहण करती है। ये चीजें वह अपने गले की थैली में भर लाता है, पर कभी-कभी उदरस्थ चीजों को भी वह उगल-उगल कर प्रेमिका को खिलाता है। इसके उदर में एक ऐसा पदार्थ होता है जिसके स्पर्श से उदरस्थ वस्तुओं की गोली, झिल्ली-दार पतली थैली या बीजकोष, तैयार हो जाता है। बहुधा ऐसी थैलियों को भी वह पेट से निकाल कर प्रेयसी के मुख में डालते देखा गया है।

एक सज्जन का, जिन्होंने पक्षी-जीवन का गम्भीर अध्ययन किया है, कहना है—

"धनेश के हर कौर में दो से चार तक फूल-बीज की गोलियां रहती हैं, जिनमें कीड़े-मकोड़े तथा रेंगने वाले जन्तुओं के शरीर के टुकड़े भी रहते हैं। प्रेमी नर इन्हें गले से निकाल-निकाल कर अपनी बन्दिनी प्रेमिका के उत्सुकता-भरे मुंह में डालता है।"

इस तरह प्रायः डेढ़-दो महीने, और कभी-कभी ज्यादा समय तक भी, मादा पर्दा-नशीन बनी हुई अपने दिन वृक्ष-कोटर में व्यतीत करती है जहां, जैसा कि पहले कहा गया है, वह केवल अंडे ही नहीं सेती; उसका पूरी तरह काया-कल्प भी हो जाता है। उसके पुराने पर झड़ जाते हैं और नये निकलते हैं, यहां तक कि उसकी चोंच भी नई हो जाती है। यदि आप समय के पहले किसी धनेश के नीड़-द्वार को तोड़कर उसके भीतर उसे देखें, तो मादा के शरीर को एक अजीब दशा में पायेंगे—झड़े हुए पर, छोटी-सी चोंच, अत्यन्त कुरूपिनी; पर वही जब समय पूरा होने पर बाहर निकलती है तो उसके शरीर से सौंदर्य टपकता रहता है।

पक्षियों में शायद ही कोई दूसरा हो जो धनेश की तरह अपने वास-स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को साफ-सुथरा रखता हो । मादा इतने दिनों तक घर के भीतर बन्द रहती है, फिर भी उसे गन्दा नहीं होने देती । गन्दी चीजों को सूराख के रास्ते हमेशा बाहर फेंकती रहती है । छोटा नागपुर के जंगल में धनेश अधिक संख्या में पाये जाते हैं । उनके रहन-सहन का अध्ययन करने वाले एक अंग्रेज लेखक का कहना है—

"धनेश की मादा जब घोंसले में रहती है तो सफाई पर उसका अत्यधिक ध्यान रहता है । वह अपनी विष्टा को या तो बाहर फेंक देती है या घोंसले के बाहर सूराख के रास्ते से बीट करती है । उसके बच्चों तक को मैंने इस सम्बन्ध में बड़ा चौकस पाया है । उन्हें हमेशा नीड़-द्वार के सूराख के द्वारा बाहर की ओर बीट करते देखा है । उनके द्वारा खाली किये गये नीड़ देखने में बड़े साफ-सुथरे नज़र आते हैं । मक्खी, चींटी या दुर्गन्धि का कहीं नामोनिशान भी नहीं !"

धनेश से हमें स्वच्छता का सबक सीखना चाहिए ।

चिप्पक

चिप्पक, जिसके कई और नाम भी हैं, यथा चप्पा, दाब-चुरी, दबनक, अंधी चिड़िया आदि, तथा संस्कृत में जिसे नप्तृका कहते हैं, एक ऐसा पक्षी है जो दिन में शायद ही नजर आये, पर शाम होते ही उड़ना और चहकना आरम्भ कर देता है । इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसकी चोंच नहीं होती बल्कि पशुओं की तरह चौड़ा मुँह होता है ।

इसके कई भेद हैं, पर चार मुख्य हैं—१. भारतीय लम्बी दुम वाला चिप्पक; २. भारतीय जंगली चिप्पक; ३. फ्रैंकलिन चिप्पक तथा ४. साधारण भारतीय चिप्पक। पर इस देश के वनों में ये सभी पाये जाते हैं । साधारणतया देहात के वृक्षों तथा शहर के बाग-बगीचों में भी मिलते हैं । पहली किस्म का चिप्पक सबसे बड़ा है—प्रायः १२॥ इंच लम्बा, अंतिम किस्म का सबसे छोटा होता है—करीब ६॥ इंच का : शेष इनके बीच के हैं ।

इनकी बोलियां भिन्न होती हैं तथा इनके बोलने से ही हम समझ सकते हैं कि कौन किस जाति का चिप्पक है । सन्ध्या-समय जब धरती पर घना अंधियारा छा जाता है, आकाश में तारे उग आते हैं, मंद-मंद पवन बहने लगता है, तो यह पत्तों की ओट में से बाहर निकल कर किसी खुली डाल अथवा खम्भे पर आ बैठता है तथा बोलना शुरू कर देता है—पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा—इस तरह कई एक साथ बोल उठते हैं और फिर तो क्षणों में इनका सामूहिक गान छिड़ जाता है । इनकी बोली सुहावनी होती है, कर्णकटु नहीं । अतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
State Museum, LUCKNOW.

अनेक पक्षी-प्रेमी इन्हें सुनने को सन्ध्या-काल से ही बाग-बगीचों में जा बैठते हैं । साधारण श्रेणी के चिप्पक अधिकतर बाग-बगीचों में पेड़ों के नीचे सूखी पत्तियों पर बैठकर सुर अलापते हैं, बाकी पेड़ की डालों से । इनकी आवाज में भी भिन्नता होती ह । इनकी बोलियां ज्यादातर फरवरी से लेकर जुलाई के महीने तक सुनी जाती हैं । इन्हीं दिनों ये जोड़ा भी बांधते और अंडे देते हैं ।

चिप्पक स्वभाव से ही बड़ा शर्मीला पक्षी है । मानव-दृष्टि से वह अपने को दूर ही रखना चाहता है । एक सज्जन का, जिन्हें पक्षियों का फोटो उतारने का खास शौक है, कहना है कि उन्हें एक बार घोंसले में बैठे हुए चिप्पक की तस्वीर उतारने की इच्छा हुई । ढूंढ-ढांढ कर एक चिप्पक के घोंसले पर पहुँचे । घोंसले में चिप्पक के नवजात शिशु तो थे, पर मादा न थी । फिर दूसरे रोज पहुँचे। मादा उन्हें देखते ही उड़ चली । तीसरे दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ । चौथे दिन उन्होंने देखा कि घोंसले में न मादा है न उसके शिशु । वह उन्हें लेकर अन्यत्र चली गयी थी ।

●

तीतर

पवन थक्यो, तीतर लवै
गुरु सदेवै नेह,
कहत भड्डरी जोर से,
ता दिन बरसै मेह ।

बहुत दिन हुए बच्चों की एक पत्रिका में तीतर पर एक तुकबन्दी थी जिसकी प्रथम दो पंक्तियां इस प्रकार थीं—

लड़को, इस झाड़ी के भीतर
छिपा हुआ है जोड़ा तीतर,

और यह ठीक ही है कि तीतर अधिकतर झाड़ियों में ही छिपा रहता है । खुली जगहों पर कभी-कभी ही नजर आता है । अपने मटमैले रंग के कारण यह आसानी से पहचाना भी नहीं जाता (चित्र संख्या : ५४) ।

"तीन उड़ान में तीतर पकड़ाता है"—यह कहावत मशहूर है और इसमें सचाई भी है । तीतर में उड़ने की शक्ति कम है । ज्यादातर यह पावों पर दौड़ता चलता है । अतएव यदि आप इसे उड़ायें, तो दो-तीन बार उड़ कर यह शीघ्र ही थक कर कहीं छिप जायेगा । यही वक्त है जब पकड़ने वाले इस पर जाल फेंक कर इसे आसानी से पकड़ लेते हैं ।

यूरोप और एशिया के प्रायः सभी देशों में यह पाया जाता है : इसकी कई उप-जातियां हैं, जिनमें इस देश में प्राप्य दो मुख्य हैं—एक चितकबरा, दूसरा काला : अधिक संख्या में चितकबरा तीतर ही पाया जाता है । इसका रंग मुख्यतः बादामी होता है, पर शरीर पर कुछ स्याह और सफेद धारियां बनी होती हैं, और इसीलिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह चितकबरा कहा जाता है। सिर का रंग कत्थई जैसा होता है; डैने के कुछ परों का भी। पैर लाल होते हैं। नर और मादा की रूप-रेखा में अन्तर केवल इतना ही है कि नर के पंजों में ऊपर एक कांटा रहता है, जिसका उपयोग यह लड़ते वक्त ही करता है। यह लड़ाकू पक्षियों में है और यही कारण है कि मानव-समाज में इसका लालन-पालन बड़े आदर के साथ होता रहा है। पालतू तीतर बड़े निडर होते हैं तथा पालने वाले के पीछे-पीछे खूब दौड़ते फिरते हैं। अक्सर आप देखेंगे कि तीतर पालने वाला हाथ में पिंजड़ा लिये घूम रहा है और उसके पीछे तीतर दौड़ रहा है। बिहार के देवघर नामक एक शहर में तीतर पालने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है। सड़कों पर वहां बहुधा दर्जनों आदमियों को आप तीतर का पिंजड़ा हाथ में लिये घूमते पायेंगे।

बुलबुल और बटेर की तरह ही तीतर खूब लड़ते हैं। लड़ते-लड़ते प्राण देने और लेने तक को तैयार हो जाते हैं। आप इन्हें लाख पंचशील के सिद्धांत बताय, ये सुनने से रहे। सारे मसले लड़कर ही तय करना चाहते हैं; बातचीत से, किसी गोल मेज के चारों ओर बैठकर नहीं।

जमीन के किसी गड्ढे में घास-फूस रख कर मादा अंडे देती है जिनकी संख्या ६ से ९ तक होती है। अंडा देने का समय फरवरी से जून तक है। तीतर में एक विशेषता है जो अन्य पक्षियों में नहीं होती। वह अपनी सन्तान के संग जोड़ा नहीं बांधता। नर और मादा में यदि एक मर गया तो दूसरा अविवाहित रहेगा पर अपनी सन्तति को जोड़ा न बनायगा। हां, यदि किसी दूसरे वंश का नर या मादा मिल जाए तो जोड़ा बांधेगा, अन्यथा जीवन-यात्रा में एकाकी ही चलता रहेगा। भाई-बहन के बीच भी जोड़ा बांधने का रिवाज इस पक्षी में नहीं है। इस सम्बन्ध में इनका नियम बड़ा कड़ा है और इस पर ये बड़ी सख्ती के साथ अमल करते हैं। इनके झुंड होते हैं। एक झुंड वाले दूसरे झुंड वालों के साथ ही जोड़ा बांधते हैं, आपस में नहीं। बहुधा ऐसा देखा गया है कि मादा न मिलने के कारण नर आजन्म अविवाहित रह गया है पर उसने "समगोत्री" के संग जोड़ा नहीं बांधा है। इनके जोड़े स्थायी होते हैं।

काला तीतर ज्यादातर नदी के कछारों में पाया जाता है। इसके नर और मादा में थोड़ा-सा अन्तर है। नर का ऊपरी हिस्सा काला होता है जिस पर सफेद सीधी धारियां और चित्ते पड़े होते हैं, गले में कत्थई रंग का कंठा होता है, सीना काला तथा नीचे का भाग गहरा भूरा होता है जिसमें सफेद धारियां बनी होती हैं। डैने कत्थई रंग के होते हैं। मादा के ऊपरी हिस्से में काले की जगह कत्थई रंग होता है, गले का कंठा भूरा तथा निचला हिस्सा बादामी होता है।

स्वभाव में पूर्वोक्त दोनों किस्मों में कोई खास फर्क नहीं है। बोली दोनों की बड़ी तेज होती है, पर आवाज में भिन्नता है। जहां चितकबरा "पतीला", "पतीला" चिल्लाया करता है, वहां काला कहता है—'सुभान तेरी कुदरत', पर यथार्थ में ये क्या कहते हैं यह वे ही बता सकेंगे जो खग-भाषा के पंडित हैं।

शकुन विद्या के पंडितों का कहना है कि यात्रा-समाप्ति के समय तीतर किस ओर उड़ता है, इस पर यात्रा की सफलता-असफलता निर्भर करती है। डाक कहते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुर पैठत जो बाम ते, तीतर दक्षिण जाय,
कहथि 'डाक' शुभ शकुन यह, मिलतौ सब मन भाय ।

नगर में प्रवेश करते समय यदि तीतर वाम पार्श्व से दक्षिण पार्श्व की ओर उड़ता हुआ दृष्टिगोचर हो, तो समझिये कि निश्चय ही अभिलषित वस्तु की प्राप्ति होगी ।

भटतीतर तथा लवा

भटतीतर, जिसे अंग्रेजी में सेंडग्राउज़ कहते हैं, तीतर और फाखता की मिलीवट से बना हुआ एक पक्षी है जो एकान्त मैदान में गोल बांध कर अक्सर चरता हुआ नजर आता ह (चित्र संख्या : २८) । जंगल-झाड़ियों की अपेक्षा उसे खुला मैदान अधिक प्रिय है, शायद इसलिए कि खुले मैदान में शिकारियों को यह दूर ही से देख लेता है और उन्हें देखते ही उड़ जाता है ।

इसके नर और मादा के रंग में कुछ अन्तर है । नर का रंग बालू जैसा होता है तथा दुम के कुछ पर लम्बे होते हैं । गले पर हल्का पीलापन होता हैं। पेट कत्थई रंग का होता है । दुम और डैनों का बाहरी हिस्सा बादामी होता है । मादा बादामी रंग की होती है तथा नर की अपेक्षा अधिक चितकबरी । भटतीतर अपने बसेरे मैदान में बनाते हैं जहां छिछले गड्ढों में मादा अंडे देती है । वे गोल बांधकर रहते हैं ।

छोटे भटतीतर तो यहां के बारहमासी पक्षी हैं, पर बड़े भटतीतर शीतकाल में ही आते हैं और फिर जाड़ों के समाप्त होते-न-होते पहाड़ों की ओर लौट जाते हैं । भूरा गला, पेट के नीचे कालापन, पीठ पर पीले चिह्न, इनकी ये पहचान हैं ।

शिकारी पक्षियों में लवा सबसे छोटे हैं, छोटे तीतर के समान हैं । कद में प्रायः छः इंच के होते हैं । इनके वास-स्थान खेत के पास की झाड़ियां होती हैं जहां से निकल कर ये सुविधापूर्वक नाज के दाने चुग सकते हैं । धान के खेतों में ये जाल की सहायता से पकड़े जाते हैं ।

रंग इनका भूरा होता है और नीचे के हिस्से में छोटी-छोटी काली बिन्दियां होती हैं ।

मादा कद में नर से छोटी होती है तथा इसके माथे पर सफेद-काली धारी नहीं होती और न सीने पर काली बिन्दियां ही ।

झाड़ी के किसी छिछले गढ़े में मादा साल में दो बार अंडे देती है जिनकी संख्या १०-११ तक होती है । 'भारत-भारती' के कवि ने लिखा था—

तीतर, लवे, भेड़े, पतंगे, वे लड़ाते हैं कभी,
वे दूसरों के व्यर्थ झगड़े मोल लाते हैं कभी ।

पता नहीं राष्ट्रकवि की उपर्युक्त भर्त्सना से या कि जमाने की पलट से, तीतर और लवा के कद्रदान आज इस देश में से विदा हो रहे हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोहन चिड़िया

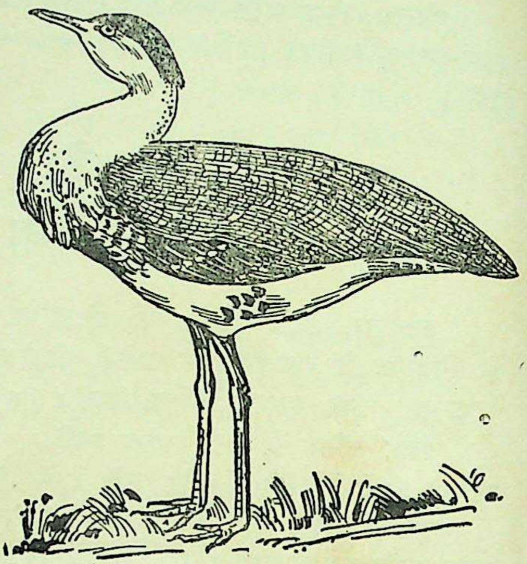

भारतीय शिकार के पक्षियों में हम उस पक्षी को नहीं भूल सकते हैं जिसे अंग्रेज़ी में ग्रेट इंडियन बस्टार्ड, पंजाब में तुगपर, दक्षिण में मालधोक तथा बुन्देलखंड के इलाकों में हुंकना अथवा 'सोहन चिड़िया' के नाम से पुकारते हैं (चित्र संख्या : २९) । यह पहाड़ों पर नहीं बल्कि समतल क्षेत्रों के खुले मैदान की झाड़ियों में पाया जाता है। दकन, मैसूर, राजस्थान, हरियाना, बुन्देलखंड के जंगलों में यह खास तौर पर मिलता है ।

कद में यह बहुत छोटे शुतुरमुर्ग जैसा और लगभग उतने ही वजन का; रंग में बदन का ऊपरी हिस्सा काली लकीरों से आच्छन्न बादामी तथा नीचे का सफेद होता है । सर के ऊपर काले रंग का तुर्रा इसका सौन्दर्य-वर्द्धन करता है। दांत काफी लम्बे होते हैं। उड़ने में यह तेज होता है, दौड़ने में और भी अधिक ।

नर और मादा की रूप-रेखा में कोई अन्तर नहीं है । हां, नर की अपेक्षा मादा कद में कुछ छोटी होती है ।

जोड़ा बांधने के समय नर गला फुला-फुला कर, पंख फैला कर ज़ोर से आवाज़ करता है और शायद इसी कारण से बुन्देलखंड के लोग इसे हुंकना नाम से पुकारते हैं । नर का बहुपत्नीत्व विख्यात है ।

घोंसला बनाना, अंडे देना आदि, सभी कामों में उसकी बटेर से बड़ी समानता है ।

खेद है कि शिकार का इतना सुन्दर पक्षी इस देश से क्रमशः अन्तर्हित होता जा रहा है । मांस-भक्षियों को इसका गोश्त अतिशय रुचिकर है और इनके वंश-विनाश का निस्सन्देह यही मुख्य कारण है ।

●

चकोर

ऐ बुलबुले गोइंदा व ए कब्के खिरामाँ,
मैं खुर कि ज़े मैं बाद हमेशा परो बालत ।

—सूफी कवि सनाई ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ६२
हंसावर-समूह

चित्र संख्या : ६३
काला हंस

चित्र संख्या : ६४
(नीचे बाएं)
चित्र संख्या : ६५
(नीचे दाएं)

नीलकण्ठ

टिटहरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

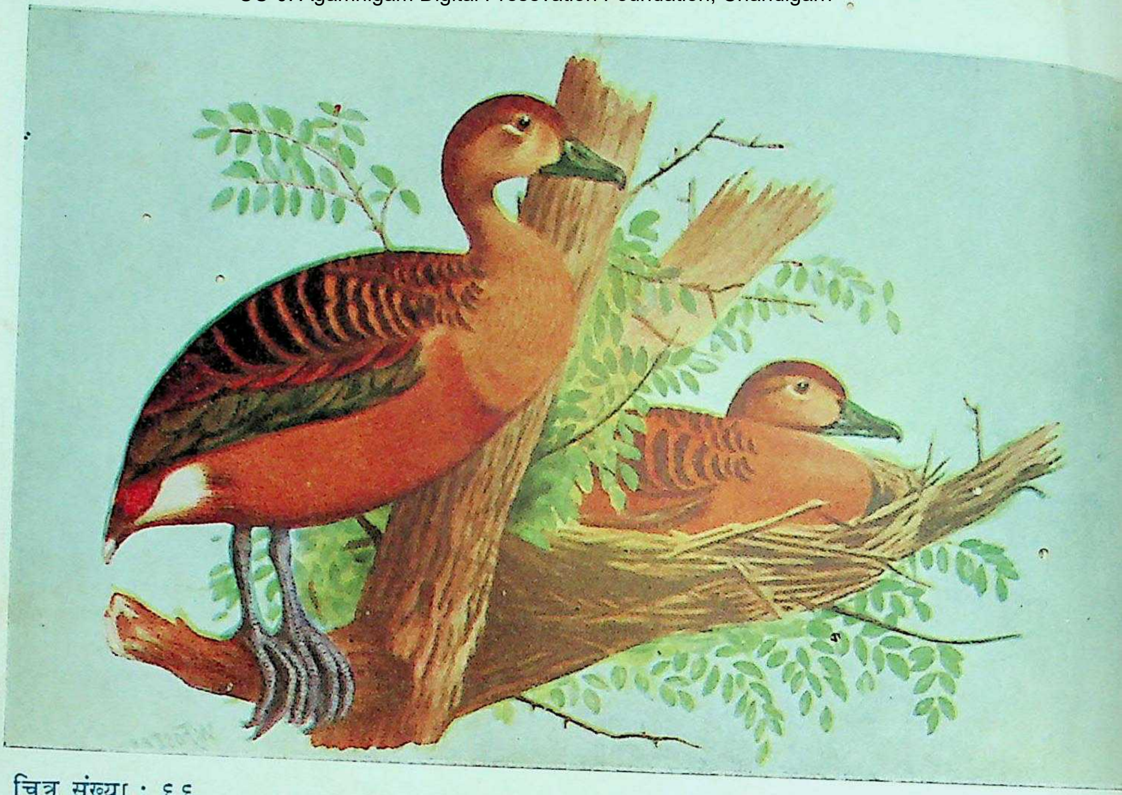

चित्र संख्या : ६६

सिलही

चित्र संख्या : ६७

नकटा

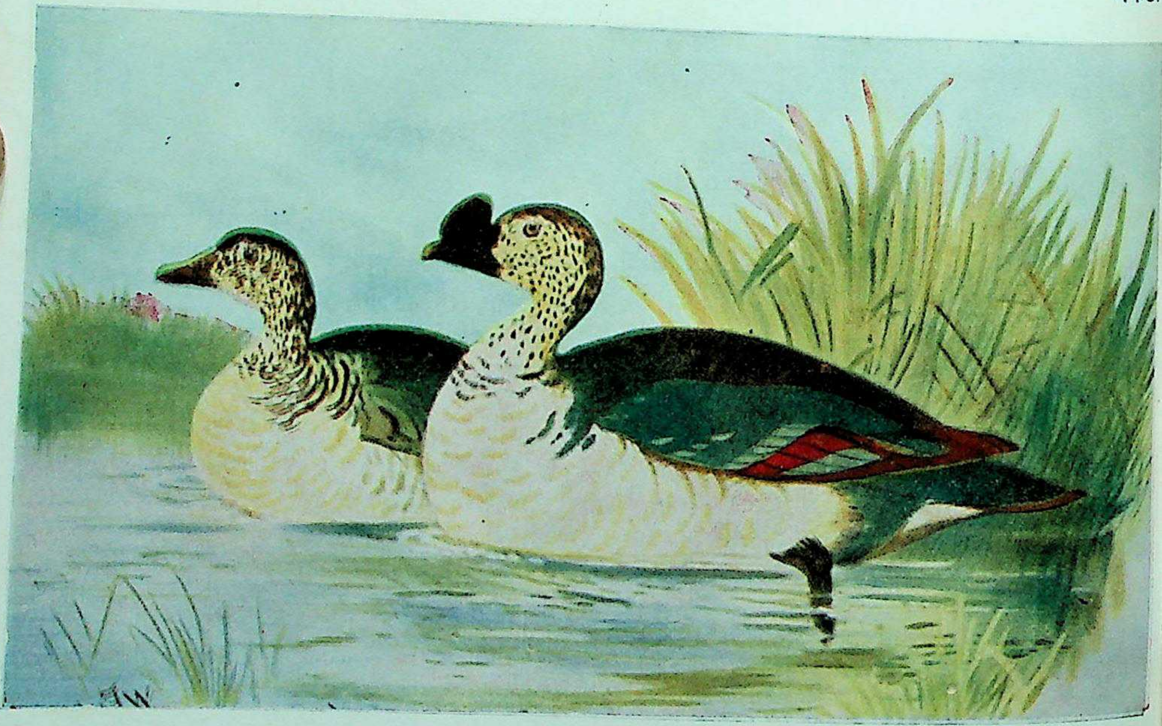

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—ऐ सुन्दर राग अलापने वाली बुलबुल और तेज चलने वाला कबक (चकोर), तू प्रेम में मस्त बना रह । प्रेम की यह मदिरा तेरे परों को हमेशा शक्ति देती रहेगी ।

औरों की क्या कहिए, निज रुचि ही एकता नहीं रखती,
चन्द्रामृत पी कर तू चकोरि, अंगार है चखती ।

जिसके सम्बन्ध में "साकेत" के कवि की यह उक्ति है वह एक अद्भुत पक्षी है जो शीतल चन्द्रमयूष का भी प्रेमी है, और जलते हुए अंगारे का भी । कहते हैं, आकाश में जब चांद उग आता है और उसकी धवल किरणें धरातल पर विकीर्ण हो जाती हैं, तो यह निर्निमेष नेत्रों से देर तक उसकी ओर देखता रहता है, मानो उसकी शीतलता का पान कर रहा हो । और प्रकृति की विडम्बना तो देखिए, दूसरी ओर जलते हुए अंगारों को भी यदि पा जाता है तो फौरन गले के नीचे उतार डालता है । इस देश के प्राचीन साहित्य में इसने अपनी इसी अनोखी प्रवृत्ति के कारण प्रमुख स्थान प्राप्त किया है । संस्कृत भाषा का शायद ही कोई कवि होगा जिसने अपने काव्य में चकोर की चर्चा न की हो । देखिए, महाकवि जयदेव ने, किस सुन्दर ढंग से इसकी चर्चा की है । भगवान कृष्ण राधा से कहते हैं—

वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी
हरति दरतिमिरमति घोरम् ।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयतु लोचनचकोरम् ।

—हे चारुशीले ! जरा बोलो तो सही, ताकि यह दन्तज्योत्स्ना खिल उठे तथा मेरे मन के तिमिर को मिटा दे, और—

सुधा-सम अधर-मधु, वदन-चन्द्रमा से
लगे लोल लोचन चकोरक बने से।

लोक गीतों में भी चकोर ने स्थान पाया है, यथा—

आसिन शरद जनावत जोर,
उगय चांदनी दुख बर जोर,
बोलल हे सखि, कीर-चकोर,
कहमा गेल मोरा नन्दकिशोर

चन्द्र-ज्योत्स्ना से यह अपनी प्यास बुझाता है कि नहीं, इसका मुझे ज्ञान नहीं । पर आग के छोटे-छोटे टुकड़ों को तो खाते मैंने स्वयं देखा है । एक अर्सा हुआ, मेरे एक मित्र ने एक चकोर पाल रखा था । मुझे विश्वास न था कि चकोर सचमुच ही अंगारों को खाता है, और मैंने एक बार उनसे अपने इस अविश्वास का जिक्र किया । उन्होंने मुझे विश्वास दिलाने को फौरन आग के कुछ टुकड़े मंगवाये और उसके सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रख दिए । मैं यह देख कर दंग रह गया कि वह उन टुकड़ों को क्षणों में ही गले के नीचे उतार गया ।

खैर, तो यह चकोर पक्षी है किस जाति का ?

आकार-प्रकार में यह बहुत कुछ तीतर से मिलता है । यह उसी जाति का एक पक्षी है, पर रंग में यह उससे भिन्न है । तीतर की तरह यह चितकबरा नहीं होता और न इसकी प्रकृति ही उसकी तरह लड़ाकू है । संसार के अधिकांश देशों—यूरोप, पश्चिमी तथा मध्य एशिया आदि—में इसकी चार उपजातियां पाई जाती हैं जिनके रंग-रूप में थोड़ी भिन्नता है । यूरोप में यह "ग्रीक-पार्ट्रिज" के नाम से मशहूर है ।

फारस तथा उसके पड़ोसी देशों में तो ये झुंड के झुंड पाये जाते हैं । डा० हेन्डरसन ने लिखा है—" यारकन्द में प्रायः दस-पन्द्रह मील चौड़ा एक क्षेत्र है जहां झुंड के झुंड चकोर रहते हैं । इन्हें पकड़ने में यारकन्द वाले बन्दूकों का इस्तेमाल पसन्द नहीं करते (अर्थात् हाथ से या जाल के सहारे पकड़ना ज्यादा पसन्द करते हैं ।)"

मेजर जॉन कहते हैं—"फारस का यह सबसे परिचित 'पार्ट्रिज' जाति का पक्षी है ।"

तिब्बत में १६,००० फुट की ऊंचाई तक यह प्राप्य है । चकोर की एक यह विशेषता है कि यह गर्म से गर्म इलाकों मे भी रहता है और शीतप्रधान देशों में भी । इस देश के उन घने जंगलों में, जहां काफी गर्मी पड़ती है, यह पाया जाता है; साथ ही, हिमालय के ठंडे प्रान्तरों में भी । जम्मू से श्रीनगर के रास्ते में आज से प्रायः तीस वर्ष पूर्व मैंने इनके अनेक झुंड देखे थे ।

चकोर के रंग में राख और बादाम के रंगों का सुखद सम्मिश्रण है, चेहरे पर कपोल से लेकर कंठ तक, आंखों को लेते हुए, एक गाढ़ा काला चक्कर होता है, पांख का अधिकांश हिस्सा बादामी होता है, पार्श्व-भागों पर काले तथा अखरोट के रंग की लकीरें रहती हैं । चक्कर के अन्दर का हिस्सा सफेद होता है और ठोड़ी पर एक काला बिन्दु रहता है । चोंच तथा पैर लाल रंग के तथा चंगुल बादामी होते हैं । नर के पांव की पिछली अंगुली के ऊपर का हिस्सा उभड़ा हुआ-सा होता है (चित्र संख्या : ३०; ५५) ।

ऐसे तो ये दल बांधकर—गिरोह मं—रहा करते हैं, पर जब प्रजनन-काल आता है तो इनके अलग-अलग जोड़े हो जाते हैं । अंडे देने का समय नीचे के प्रदेशों में अप्रैल से अगस्त तक और पहाड़ों पर अगस्त के बाद है । जमीन पर किसी पत्थर अथवा घास-फूस की आड़ में ये अंडे देते हैं जिनकी संख्या ८ से १२ तक होती है । अंडों के चारों ओर घास-फूस का एक घेरा डाल लेते हैं । इनकी उड्डीयन-शक्ति कमजोर होती है, अतएव थोड़ी दूर उड़ते हैं, बठ जाते हैं, फिर उड़ते ह—यही इनका नियम है ।

उत्तर-पश्चिम भारत में ये विशेष रूप से पाए जाते हैं । नेपाल तथा कश्मीर में भी ।

चकोर आसानी के साथ पाले जाते हैं तथा पालतू होकर ये उसी तरह पालने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले के साथ-साथ विचरते हैं जैसे कि पालतू कुत्त । तब इन्हें पिंजड़े में रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

यात्रा-काल में चकोर का बोलना शुभ माना गया है । डाक कहते हैं—

बाम भाग में बोल चकोर,
सन्मुख दाहिन बोले मोर,
कहथि "डाक" शकुन बर जोर,
बैसने लइ धनधाम बटोर ।

अर्थात्, बायीं ओर यदि चकोर और सामने तथा दाएं मोर बोलें, तो 'डाक' कहते हैं कि यात्रा का योग प्रबल है, बैठे-बैठे ही अपरिमित धन की प्राप्ति होगी। पता नहीं, हमारे देश के व्यापारी डाक के इस कथन का कहां तक उपयोग करते हैं, चकोर और मोर पाल-पाल कर रखते हैं या नहीं ।

चकोर इस बात की शिक्षा देते हैं कि हमें सुख तथा दुःख-ताप को समभाव से स्वीकार करना चाहिए, चकोर-सा ही हमें भी स्थितप्रज्ञ होना चाहिए । चन्द्रमयूष हुए तो क्या, और अंगार हुए तो क्या—हमारे लिए ये दोनों ही समान होने चाहिएं ।

पर जहां प्रेम का प्रश्न है, वह अपने प्रियतम के सामने बाकी सभी चीजों को तुच्छ मानता है—आज एक से, कल दूसरे से नेह लगाने वाला नहीं है । आखिर चन्द्र और सूर्य दोनों ही तो व्योम-मंडल के दीप्तिमान नक्षत्र हैं; पर चांद से प्रेम करके वह जाज्वल्यमान सूर्य की ओर नहीं दौड़ता । चकोर के लिए चन्द्रमा ही जीवन-प्राण है, रवि को वह शत्रु के समान ही समझता है—

ऊधौ तुम अति चतुर सुजान,
जे पहले रँगी स्याम रंग तिन्हें न चढ़ै रंग आन ।
द्वै लोचन जो विरद किए स्रुति गावत एक समान,
भेद चकोर कियो तिनहूँ में विधु प्रीतम, रिपु भान ।

मोर

शरत्काल का समय है । जल, थल, आकाश सभी स्वच्छ हो गए हैं । सहसा बृन्दारण्य में वंशी की ध्वनि जाग उठती है, गोपियां सुनती हैं और सोचती हैं—

बर्हापीड़ं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारम्
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्,
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै—
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः

—मोर मुकुट धारण किए, कानों में कनेर का फूल लगाए, सुवर्ण के समान प्रकाशमान पीताम्बर पहने और गले में वैजयन्ती माला धारण किए हुए नटवर वेश-धारी श्री कृष्ण ने बांसुरी के छिद्रों को अपने अधरामृत से पूर्ण करते हुए निज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरण-चिन्हों से सुशोभित वृन्दावन में ग्वालबालों के साथ उनके मुख से अपना सुयश सुनते हुए मालूम होता है कि प्रवेश किया है ।

(श्री मद्भागवत, १०।२१)

जिस पक्षी के पुच्छ को स्वयं भगवान श्री कृष्ण सर पर धारण करें वह अमरता क्यों न पाए ? तभी तो भारतीय भक्ति–साहित्य में जो स्थान इसे प्राप्त हुआ वह किसी अन्य पक्षी को नसीब न हो सका । कृष्ण साहित्य तो इससे भरा-पूरा है ही, अन्य साहित्यों में भी इसने उच्च स्थान पाया है ।

और सुनिए, एक अन्य जिज्ञासु कवि मोर से उसके अनुपम सौन्दर्य के तथा भाग्य के सम्बन्ध में क्या पूछता है—

केका कर्णामृतं ते सकुसुमकबरीकान्तिहाराः कलापाः
कंठच्छाया पुरारेर्गलरुचिरुचिरा सौहृदं मेघसंघैः
विश्वद्वेषिद्विजिह्वस्फुरदुरूपिशितैर्नित्यमाहारवृत्तिः
कैःपुण्यैः प्राप्तमेतत्सकलमपि सखे चित्रवृत्तं मयूर ।

—तेरी कूक कानों को अमृत के समान लगती है, कामिनी के जूड़ापाश में लगे हुए सुन्दर पुष्प-जाल की कान्ति उपहरण करने वाली तो तेरी पूंछ है, महादेव के कण्ठ के समान तेरी नीलिमा है, मेघों के साथ तेरी मैत्री है, सर्प, जिसका संसार मात्र से विद्वेष है, तेरे नित्य के आहार हैं । मित्र मयूर ! बता तो सही, किस पुण्य से तूने इन्हें प्राप्त किया ?

गरज यह कि इस देश के काव्य-कानन में क्रीड़ा करने वाले कवियों ने किसी-न-किसी प्रसंग में इस पक्षी की अवश्य ही चर्चा की है । काव्य में, उर्मिला की भांति, यह उपेक्षित न हुआ ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका सौन्दर्य-गुण ही इसका मुख्य कारण है । भगवान श्रीकृष्ण से लेकर छोटे-बड़े कवियों तक ने यदि इसकी कद्र की—इसे सर-आंखों पर चढ़ाया—तो कोई आश्चर्य नहीं और न यह कोई अनौचित्य अथवा पक्षपात की ही बात है । सौन्दर्य की पूजा कहां नहीं होती ! बकौल कीट्स के, सौन्दर्य में ही तो शाश्वत आनन्द है । सौन्दर्यपूर्ण वस्तुएं कभी शून्यता को प्राप्त नहीं हो सकती हैं—

A thing of beauty is a joy forever
Its loveliness increases; it will never
Perish into nothingness.

महाकवि माघ के शब्दों में, हम जितनी बार देखें, उतनी ही बार इनमें नवीनता का ही अनुभव करेंगे ।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः ।

तभी तो मोर के पंख ने एक बार बड़े गर्व-भरे शब्दों में उससे कहा था—हे मोर! तू भले ही हमें छोड़ दे, इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि इससे तेरा ही नुक्सान होगा—तेरी शोभा नष्ट होगी । हमारे लिए तो फिर भी राजा के मुकुट में ही स्थान रहेगा । जो क्षति होगी, तेरी—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्मात् विचित्र वपुषस्तव पृष्ठलग्नान्
कस्माद् विमुंचति भवान् यदि वा विमुंच
रे नीलकंठ गुरुहानिरियं तवैव
मौलौ पुनः क्षितिभृतो भवति स्थितिर्नः ।

पक्षियों में मोर अवश्य ही सर्वोपेक्षा सुन्दर है, मानो इसके सभी अंगों को किसी चतुर चितेरे ने बड़ी कुशलतापूर्वक अंकित किया हो ।

मोर के रूप-रंग का वर्णन करना निरर्थक ही नहीं, धृष्टता भी है । मोर को इस देश में कौन नहीं पहचानता ? लम्बी चित्रित पूंछ—जो नाचते वक्त गोल फलक-सी हो उठती है तथा जिसमें नीलम और फिरोजा की मानो हजार आंखें जगमगाने लगती हैं—सर पर लम्बी-सी सुन्दर कलंगी, गले में मखमली नीलापन—इस रूप को (चित्र संख्या : ३९; ४०) कौन भूल सकता है ? वर्षाकाल में जब आकाश में घने काले-काले मेघ उमड़ते हैं और गरजने लगते हैं, तो मोर का कुछ अजीब-सा हाल हो जाता है; वह निर्भय होकर बारम्बार नाचता है, कूकता है और समा बांध देता है । नाचता है, नाचता ही जाता है, घंटों नाचता रहता है (चित्र संख्या : ५७) । मोरनियां, जो स्वयं नाचती नहीं और न जिनका रूप-रंग ही नर जैसा होता है, न सर का तुर्रा उतना सुन्दर, न लंबी पूंछ ही होती है, उसके इर्द-गिर्द आकर खड़ी हो जाती हैं और वह नाचता है। यह उन दृश्यों में है जिसके अवलोकन से हम कभी अपने को वंचित रखना न चाहेंगे । दरअसल मोर और पावस का सम्बन्ध कुछ ऐसा अभिन्न है कि हम बिना मोर के पावस की कल्पना ही नहीं कर सकते । 'मोर बिनु पावस, कोकिल बिनु नहि मधुमास' । न जानें इन काले बादलों में क्या है कि मोर उसे देखते ही, उसका गर्जन सुनते ही, पागल-सा हो उठता है । पपीहे की तरह उसके जल का प्यासा नहीं, फिर भी उस पर सब कुछ निछावर करने को तैयार है । देखिए, वर्षाकाल का आरम्भ होते ही—

लता लागीं द्रुमन, लतानहू में कली लागीं,
कली लागीं भौंर भौंर आनंद मगन में,
गहन गहन, लागे गावन मयूर माला,
झहन झहन लागे रोम-रोम छन में ।

मोर के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है । उसका सारा शरीर, सर से लेकर दुम तक, अत्यन्त सुन्दर, पर पांव बड़े भद्दे होते हैं : किम्बदन्ती है कि मोर जब अपने पांवों पर नजर डालता है तो उत्साह-हीन होकर नाचना बन्द कर देता है । प्रकृति का यह नियम है कि वह सारी अच्छाइयों के भीतर एक बुराई, एक कमी डाल देती है । इसमें सन्देह नहीं कि मोर जैसे सुन्दर पक्षी को इस प्राकृतिक नियम का बुरी तरह शिकार बनना पड़ा है, इसकी कड़वी घूंट उसे भी पीनी पड़ी है । ऐसा सुन्दर शरीर और ऐसे कुरूप पांव ! अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि स्विनवर्न ने ठीक ही कहा था—

तूने नींद हमें दी पर स्वप्नों से पीड़ित,
कहा—नहीं आनन्द, रहे आनन्द-प्रीति भर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृदु झरने हैं रचे रुचिर सरिताओं के हित,
हाय, अन्त में किया उन्हें तीखा दे सागर !

अन्य पक्षियों की भांति मोर न तो पेड़ पर घोंसला बनाता है और न मोर और मोरनी का कोई जोड़ा ही होता है । अक्सर एक मोर के साथ-साथ अनेक मोरनियां, उसके इर्द-गिर्द नजर आती हैं और वह उनके बीच उसी तरह शोभायमान होता है जैसे कि हथनियों के बीच कोई विशाल हाथी ।

वर्षाकाल में मोर का मोरनियों के साथ विचरना एक ऐसा दृश्य है जो आंखों को बड़ा भला लगता है । पर, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, नाचता मोर ही है, मोरनी नहीं, और न मयूरी देखने में ही नर की तरह खूबसूरत होती है, फिर भी कल्पना के आधार पर हिन्दी साहित्य में मयूरी के नाचने का भी अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है ।

मोरनी झाड़ियों के बीच, जमीन पर (कभी-कभी टूटे-फूटे मकानों की छत पर भी) अंडे देती है जो संख्या में दो से छः तक होते हैं । ये हाथीदांत जैसे सफेद होते हैं। इन्हें केवल मादा ही सेती है । एक महीने के बाद बच्चे निकलते होते हैं । अंडा देने का समय जनवरी से अक्तूबर तक है ।

अपने बच्चों के प्रति मोरनी के हृदय में अगाध स्नेह होता है जिसकी मिसाल और किसी पक्षी में नहीं मिलती । मोर के बच्चों के सर पर की कलंगी का निकलना घोर कष्टप्रद है—मानव-शिशु के दांत निकलने की तरह—तथा बहुतेरे इस पीड़ा के सहने में असमर्थ होकर प्राण तक छोड़ देते हैं ।

कबूतर की तरह मोर भी बहुत जल्द पालतू हो जाता है । आपने दो-चार बार दाने चुगाए, फिर तो यह हर रोज आपके पास आकर दाने की प्रतीक्षा करने लगेगा तथा जब-तब अपने नृत्यों से आपका मनोरंजन भी करेगा । आपके घर-आंगन में विचरता फिरेगा ।

मोर की एक जबर्दस्त उपयोगिता भी है । यह सांपों का दुश्मन है । कीड़े-मकोड़े तो खाता ही है, सांप तक को निगल जाता है । अतएव जहां मोर होते हैं, सांप मुश्किल से नजर आते हैं । कहा भी है, 'अहि-कराल केकी भकै, मधुर अलापनि हारि ।' इस दृष्टि से मोर का पालना उपयोगी है, पर बाग के फूलों का—खास कर कलियों का—भी यह जबर्दस्त दुश्मन है । यह उनका संहार कर डालता है, उन्हें बड़े चाव से खाता है और वह भी भर-पेट । तार की जालियों से घिरे हुए किसी घर में इन्हें पालना ही इससे बचाव का उपाय है ।

भारतवर्ष के अधिकांश भागों में ये पाये जाते हैं । सिन्ध, उत्तर-पश्चिमीय सीमाप्रान्त तथा उत्तर-पूर्वीय असम में मोर के दर्शन दुर्लभ हैं । पर दूसरी तरफ राजस्थान, ब्रज तथा चित्रकूट के इलाकों में इनका बाहुल्य है; जहां जाइए, गिरोह के गिरोह नजर आएंगे । ब्रज के जंगलों का जैसे-जैसे संहार होता गया, मोरों की संख्या में भी कमी आती गई । फिर भी वृन्दावन में सवेरा होते ही हजारों मोर एक साथ बोलना शुरू कर देते हैं तथा नगर-निवासियों की नींद हराम हो जाती है; उन्हें बरबस ब्राह्ममुहूर्त में उठना पड़ जाता है ।

आज से लगभग सवा सौ साल पहले मेजर स्लिमन ने ब्रज की यात्रा की थी और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा था—"इस इलाके के गावों में मोर भरे पड़े हैं । मैंने सड़क के किनारे की एक झोंपड़ी के पास ४९ मोर एक साथ दाना चुगते हुए देखे थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो यहां के निवासियों के संग, इनकी बड़ी मैत्री है ।"

भगवान कृष्ण की लीलाभूमि व्रज तथा अड़ोस-पड़ोस के प्रदेश राजस्थान में मोरों का इतनी बड़ी संख्या में होना आश्चर्य की बात नहीं है, पर चित्रकूट में पता नहीं इनकी इतनी संख्या क्योंकर हुई । श्री रामचन्द्र की जीवन-लीला में इन्होंने कोई प्रमुख हिस्सा नहीं बँटाया, फिर भी चित्रकूट के पहाड़ और वन इन्हें सदा से प्यारे लगते रहे हैं । वनवास के दिनों में चित्रकूट पर निवास करते हुए श्री रामचन्द्र ने वर्षारम्भ होते ही लक्ष्मण से कहा था—

'लछिमन देखहु मोरगन नाचत वारिद पेखि ।'

नदी और झील के इलाके मोर को ज्यादा पसंद हैं और सन्ध्या होने के पहले झुंड के झुंड मोर इनके किनारों पर पानी पीने को आ जुटते हैं ।

पहाड़ों पर ये कम नजर आते हैं, खासकर उन पहाड़ों पर जहां सर्दी अधिक पड़ती है । पांच-छः हजार फुट से ऊपर तो ये कतई नजर नहीं आते । श्रीलंका, बर्मा और अफ्रीका में भी ये बहुतायत से पाए जाते हैं । अफ्रीका का श्वेत-मयूर जगद्विख्यात है । इसका रंग बिल्कुल सफेद होता है, मानो इसके पर ढाका के मलमल के बने हुए हों या चमकदार रेशम के । पश्चिम भारत में भी कहीं-कहीं ये पाये गए हैं ।

हर देश के मोर एक-से नहीं होते । मसलन विएत नाम में पाये जाने वाले मोरों की गर्दन काली होती है । यह जापान में उपलब्ध न होकर भी "जापानी मोर" के नाम से मशहूर है ।

जावा के मोर की चोटी औरों से भिन्न होती है, रंग में भी फर्क है । असम के मोर में नीलापन कम, हरापन और सुनहलापन अधिक होता है ।

यूरोप में मोर का प्रवेश सिकन्दर बादशाह के ज़माने में हुआ । ऐसे तो ईसा से ५०० वर्ष पूर्व प्राचीन यूनान के एक कवि अरिस्टोफ़ेन के काव्य में मोर का उल्लेख आता है, पर विद्वानों का मत है कि भारत से लौटते समय सिकन्दर कुछ मोर साथ लेता गया और उनसे ही मोर-वंश का विस्तार समस्त यूरोप में हुआ । फिर तो मध्ययुगीन यूरोप के देशों में कोई भी वह दावत सफल नहीं मानी जाने लगी जिसमें मोर का मांस न हो । मानव-क्रूरता को तो देखिए, मोर जैसे सुन्दर, कलापूर्ण पक्षी को भी उसने अपने आहार की सामग्री बना डाला !

मोरों का पूर्व से व्यापारियों के द्वारा पश्चिम ले जाया जाना बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेंट) से भी सिद्ध होता है । उसमें लिखा है, कि बादशाह सुलेमान के शासनकाल में प्रति तीसरे वर्ष पूर्व के जहाज सोना, चांदी, हाथी दांत, बन्दर तथा मोर लाया करते थे ।

११वीं सदी में ईराक आदि देशों में भी भारत से मोर ला कर मोर की नसल तैयार करने की चेष्टा हुई, पर ये मोर भारत के मोरों जैसे सुन्दर न हो सके ।

संक्षेप में मोर की यही कहानी है । हमें इस बात का गौरव है कि उसके जैसा सुन्दर पक्षी मुख्यतः हमारे देश का निवासी है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

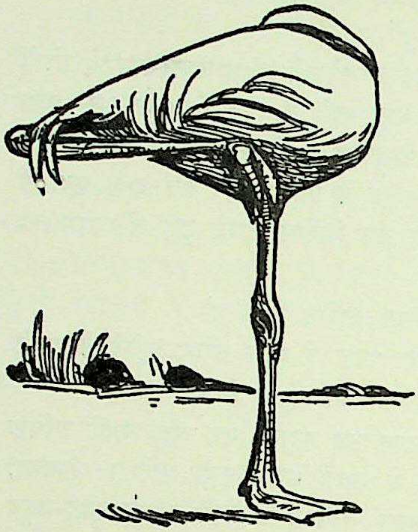

शीतकाल के पत्नी

कहां, कहो, आवास तुम्हारा, किस सुदूर पर्वत के पार—
कैसे सर, कैसी सरिताएं, करते जिनमें विहग विहार ?
प्रणय-भावयुत क्रीड़ाओं में, रहते खग क्या रत, लवलीन,
क्या न विचरते वधिक वहां हैं छद्म-कार्य में परम प्रवीण ?
मानसरोवर-सा तज कर सर, तजकर वह स्वर्गीय प्रदेश,
ताल-तलैयों का आकर्षण खींच तुम्हें लाया इस देश !
क्यों ? बोलो, पावन विहंगवर ! हिम पर्वत के वासी, धीर,
उपजाये उर कौन भाव ये, शारदीय सर, सरित समीर ?
किसके नयन-किलकिले-से यह, हुआ ग्रसित मन का तव मीन,
किस विहगी की मिलन-प्रतीक्षा के विहंग, तुम हुए अधीन ?

शरद्काल के कुछ दिन बीतते-न-बीतते शीतकाल का पूर्वाभास मिलने लगता है : पश्चिम पवन में एक अजीब स्फूर्तिदायिनी ठंडक आ जाती है, सूर्य की किरणें प्रिय लगने लगती हैं । सुबह दूर्वादलों पर मोती की बिछी हुई झालरें चमकने लगती हैं और आधी रात के व्यतीत होते ही चादर ओढ़ने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, हल्का-सा जाड़ा लगने लगता है। तभी हम समझ जाते हैं कि अब शीतकाल का प्रादुर्भाव निकट है तथा उसके स्वागत के गीत गाने लगते हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में जब हम कहते हैं—

आमरा बेधेछि काशेर गुच्छ,
आमरा गेथेछि शेफालिमाला,
नवीन धानेर मंजरी दिये साजिये एनेछि डाला ।
एसो गो शारद लक्खी,
तोमार शुभ्र मेघेर रथे,
एसो निर्मल नील पथे,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ६८
गल पक्षी आकाश में

गल पक्षी का जोड़ा
चित्र संख्या : ६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

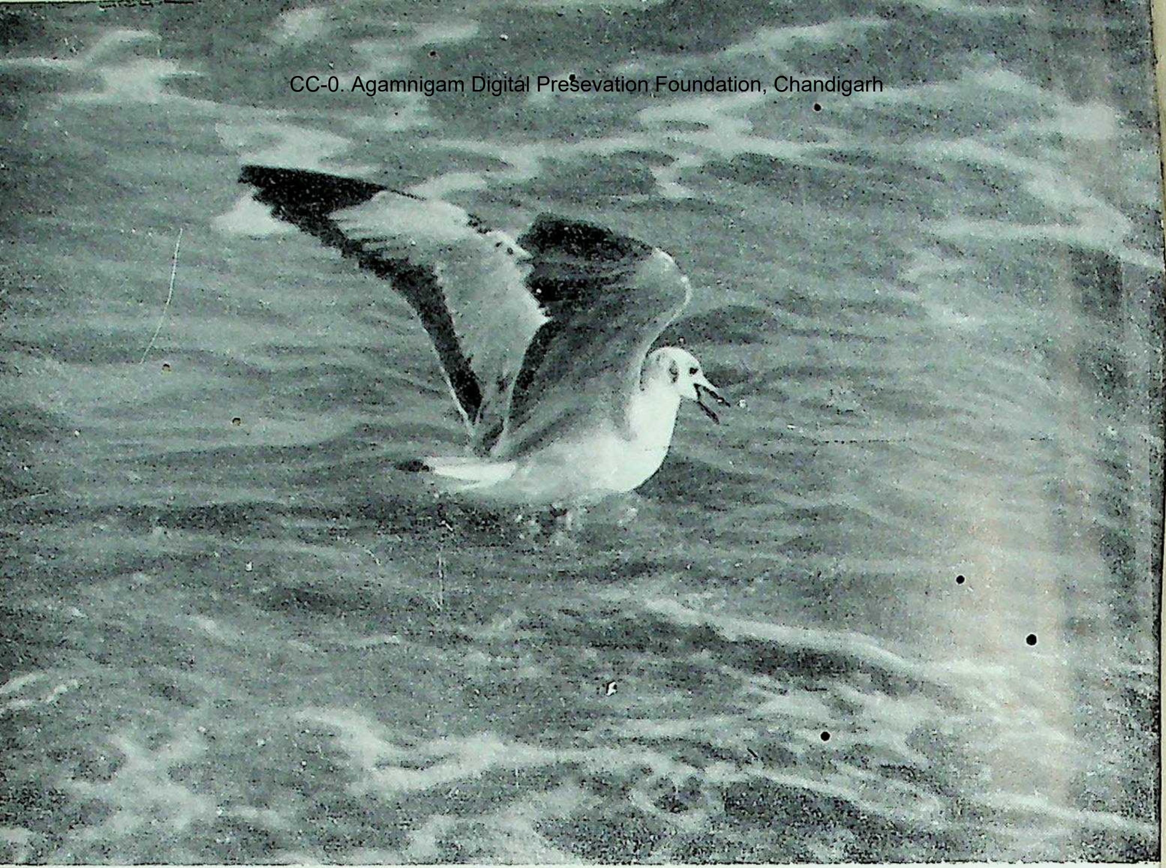

चित्र संख्या : ७०

गल पानी में तैरते हुए

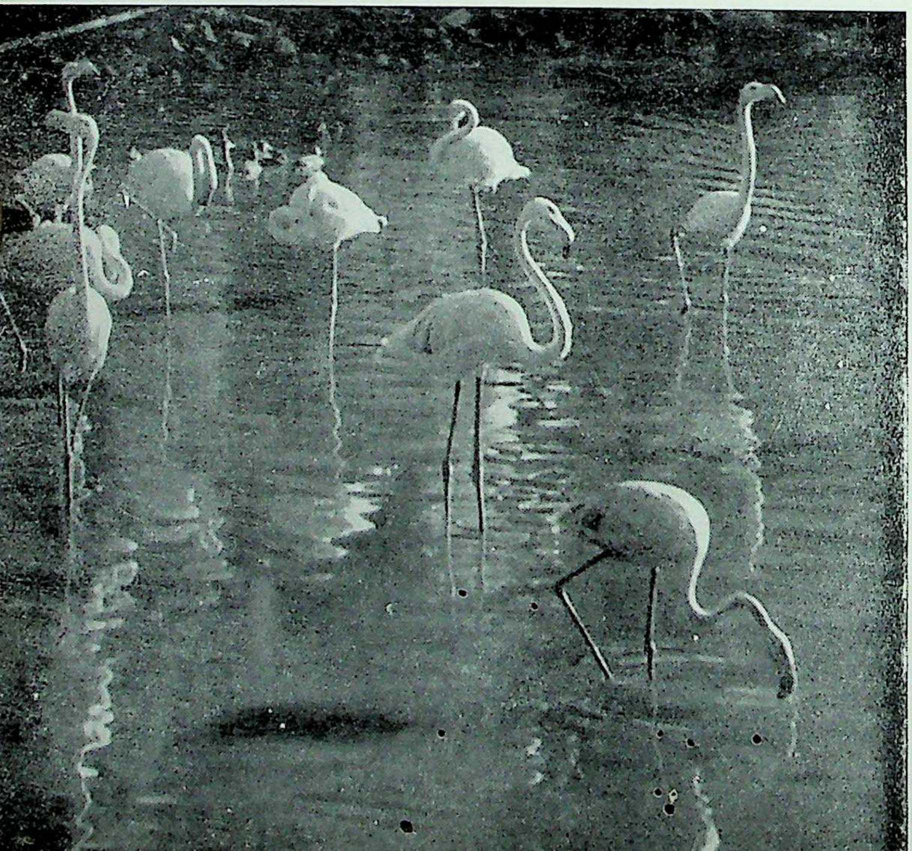

हंसावर समूह

चित्र संख्या : ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एसो धौत श्यामल आलो, झलमल,
वन, गिरि, पर्वते,
ऐसो मुकुट परिया श्वेत शतदल
शीतल शिशिर डाला !
झरा मालतीर फूले,
आसन बिछानो निभृत कुंजे,
भरा गंगार कूले।

तो मानों इस स्वागत-गान को सुनकर शरद् काल के आते ही नवीन धान की मंजरियों से सुसज्जित डालों से आर्कषित होकर सर्वप्रथम दो-चार छोटे पक्षी पहाड़ों से यहां उतर आते हैं और हमारे बाग-बगीचों में पश्चिम समीर की पहली लहर के साथ-साथ ही एकाएक दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

लहतोरा––इनमें लहतोरा मुख्य है (चित्र संख्या : ४१) जिसके सम्बन्ध में पक्षी-विज्ञान के अनुभवी ज्ञाता कर्नल कनिंघम ने 'कुछ भारतीय मित्र और परिचित' नामक अपनी एक पुस्तक (१९०३) में बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है कि लहतोरों की परिचित ध्वनि कानों में पड़ते ही मनुष्य यह समझ जाता है कि वे आ पहुँचे, अब दुख-ताप की जगह शीघ्र ही उत्तरी शीतल पवन हमारे शरीर को स्फूर्ति प्रदान करेगी और मह उस गर्मी से परित्राण पायेंगे जिसने सावन-भादों में हमें परेशान कर रक्खा था।

पर यह लहतोरा, जिसे कुछ लोग लहटोरा भी कहते हैं, खंजन जैसा कोई प्रिय पक्षी नहीं है। यह शिकारी चिड़िया है जिसे अंग्रेजी में 'कसाई चिड़िया' के नाम से भी पुकारते हैं, क्योंकि यह झींगुर आदि छोटे-छोटे कीड़-मकोड़ों को तो खाता ही है छोटे-छोटे पक्षियों को भी बड़ी बेरहमी के साथ छापा मार कर पकड़ लेता है तथा उन्हें चीर-फाड़ कर हजम कर जाता है, और सख्त बदन होने पर उसे पेड़ के कांटों में फँसा कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। यही नहीं, अपने घोंसले के पास कांटेदार झाड़ी में यह बहुतेरे कीड़े-मकोड़ों को पकड़ कर कांटों में भोजन के लिए टांग कर रखे रहता है जो एक खासे बूचड़खाने का दृश्य उपस्थित करता है (चित्र संख्या : ३९)। कीड़े-मकोड़े ही नहीं, छोटे-छोटे पक्षियों के शिशु भी बहुधा कांटों से टँगे दृष्टिगोचर होते हैं। निस्सन्देह क्रूरता की पराकाष्ठा है इस पक्षी में।

उत्तर भारत में इसकी तीन उपजातियां पायी जाती हैं जिनमें दुधिया सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कद में औरों की अपेक्षा यह बड़ा, मैना-जैसा, होता है तथा रंग में भूरा, पर नीचे का हिस्सा और डैनों के अनेक पर सफेद होने के कारण, दूर से, खासकर उड्डीयमान अवस्था में, यह श्वेत प्रतीत होता है और शायद इसलिए लोग इसे दुधिया कहते ह।

दूसरी उपजाति—पचनक—का कद बुलबुल जैसा, रंग सफेद, पीठ पर कत्थई होता है। तीसरी उपजाति—मटिया या कजला—की पीठ भी कत्थई रंग की होती है, पर पूंछ पर सफेदी नहीं होती। चोंच तीनों की अत्यन्त कठोर, मजबूत तथा शिकरे की तरह टेढ़ी होती है।

बबूल के कांटेदार वृक्ष इसे ज्यादा पसन्द हैं। कारण स्पष्ट है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

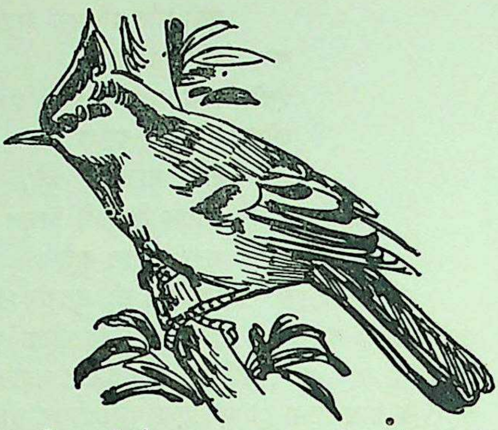

रामगँगरा—हवा में शीतलता के आते ही एक दूसरे प्रकार के पक्षी, झुंड के झुंड, पहाड़ों से उतर कर हमारे बाग-बगीचों, मैदानों में छा जाते हैं। वे हैं 'रामगँगरा', जिनका दूसरा नाम फुदकी भी है। यह चार-पांच इंच की एक छोटी-सी चिड़िया है जो पेड़ों पर रहना अधिक पसन्द करती है। हां, कीड़े-मकोड़ों की तलाश में ज़मीन पर भी अक्सर घूमती रहती है। इसका सर, गर्दन और छाती चमकीली, काले रंग की, होती है। गाल और नीचे का हिस्सा सफेद होता है, ऊपर का कजई। चोंच काली और पैर स्लेटी रंग के होते हैं। नर और मादा का रूपरेखा में कोई अन्तर नहीं होता। रामगँगरा उन चिड़ियों में है जिन्हें सुन्दरता का वरदान प्राप्त है। बोली भी इसकी प्यारी है। ग्रीष्म-काल का आभास पाते ही यह उत्तर की ओर, पहाड़ों को, चल देती है, हमारे बाग-बगीचों को सूना कर जाती है।

सहेली—सहेली भी हमारे शीतकाल के अतिथि-पक्षियों में है (चित्र संख्या : ६०)। जाड़ा आया नहीं कि सहेली आ पहुँची। यह अधिकतर गोल बना कर रहती हैं जिनमें एक-दो नर, बाकी मादाएं हुआ करती हैं। इसीलिए लोगों ने इनका एक नाम सहेली और दूसरा नाम 'सातसखी' रखा है। कद में यह गौरैया जैसी होती है। नर की आधी पीठ का ऊपरी हिस्सा और गले तक का निचला हिस्सा काला, डैनों को छोड़कर बदन का बाकी हिस्सा चटक लाल और डैने काले होते हैं। मादा का रूप अधिकांशतः नर जैसा होता है, सिवाय इसके कि नर के बदन पर का लाल स्थल मादा में पीत वर्ण का हो जाता है। कीड़े-मकोड़े इसके भी आहार हैं।

सहेली का ही एक छोटा उपजाति है—राजालाल। इसके शरीर का अधिकांश हिस्सा मटमैले रंग का होता है, सिर्फ छाती पर एक लाल धारी होती है; पूंछ और डैनों के ज्यादा पर लाल होते हैं। मादा की ठोड़ी काली होती है और परों में से कुछ जर्द रंग के होते हैं। यह झुंड बांध कर रहती है और अपने सौन्दर्य पर इतराती फिरती है। कहीं जमकर नहीं बैठती : आज यहां, कल वहां, आज इस बाग में, कल उस बाग में। यही इसका किस्सा है और यही इसकी प्रणाली है।

थिरथिरा—'थर-थर कँपनी' या 'थिरथिरा' भी हमारे यहां जाड़ों के साथ-साथ ही आती है और वसन्त में पुनः पर्वतों के उस पार चल देती है। 'कातिक की रात, थोड़ी-थोड़ी सियरात', ऐसे ही दिनों में इसका आगमन हमारे बाग-बगीचों में होता है। कद में यह छः इंच से ज्यादा नहीं, नर धूमिल, काले वर्ण का होता है। जिस समय आश्विन के अन्त और कार्तिक के शुरू में यह इस देश में आती है, इसका रंग मटमैला रहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

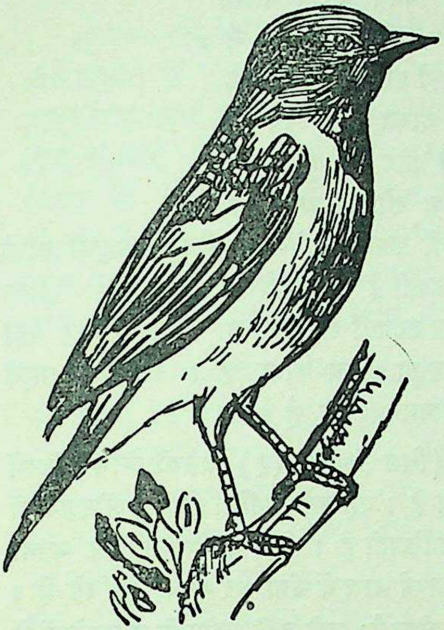

है, पर कुछ ही दिनों के बाद इसकी काया पलट हो जाती है और इसके नये-नये क़ाले रंग के पर उग आते हैं। पर मादा का रंग बादामी ही बना रहता है। दुम को यह हमेशा हिलाती रहती है और शायद इसी कारण इसका नाम थिरथिरा पड़ा है।

शरद् ऋतु में जब जल, थल और आकाश स्वच्छ हो जाते हैं, हमारी नदियां और सरोवर भी एक अद्भुत शोभा को प्राप्त होते हैं। पावस की उन्मत्त तरंगों के स्थान पर मन्द-मन्द धाराएं मन्थर गति से प्रवाहित होने लगती हैं। जल पंकहीन होकर श्याम रूप धारण कर लेता है और स्वच्छ दर्पण के समान हो जाता है जिसमें नीलाकाश और तटवर्ती वृक्ष और उनकी टहनियां प्रतिबिम्बित रहती हैं। नव-विकसित पद्मपुष्पों से उसका तट भी अतिशय शोभाशाली हो जाता है। महाकवि बाल्मीकि के शब्दों में शारदीया सरिता क्षीणकाय होकर भी एक अपर्व प्रभा विस्तारित करती है, ऐसी लगती है मानो नव वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, तन्वंगी. कोई नवप्रसूतिका हो!

सर-सरिताओं के तट भी पंक-विहीन, स्वच्छ, हो जाते हैं। सूर्य की किरणों में सिकता के लघु कण चमकते हैं मानों हीरा के छोटे-छोटे कण हों।

बड़ी-बड़ी झीलों के उभय कूलों पर हरे धान के पौधे लहराने लगते हैं तथा नाना प्रकार के कतकी, गजकेसर, तुलसी-फल, कान्हर, लालसर, ललदेइया, बासमती धान[1] फूट पड़ते हैं, जिन्हें देखकर ग्राम्य बालाएं उमंग-भरे मन से कहने लगती हैं—

अगहन हे सखि, सारि लबधि गेल,
फुटि गेल सभ रंग धानू,

तथा पवन उनके दानों की सुरभि चतुर्दिक फैलाने लगता है, तो ये (झील, सर-सरित, आदि) जल-पक्षियों को बारम्बार अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। कविवर पंत की यह उक्ति कि—

न जाने सौरभ के मिस कौन,
संदेशा मुझे भेजता मौन,

इन पक्षियों पर पूरी तरह चरितार्थ होने लगती है। और तब ये पक्षी हिमालय के विविध प्रान्तों से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं—

कातिक के आवत ही धानन के डारन पै,
लाख-लाख फूटि आये फूल रात भर मैं,

१—मिथिला में उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार के धान।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दर सुवास जाको पवन चुराय चल्यो,
खबर जनायो जाय पंछिन कै घर मै ।
दक्खिन दिशा को धाये पांतिन रचाय खग,
आये गगन बीच गावत एक स्वर मै,
छाये चहुं ओर मच्यो शोर कल-कूजन सों,
चोंच दै खवावैं कोक कोकिन अधर मै ।

गरज यह कि हिमालय की गोद, यानी कश्मीर, तिब्बत, चीन के पहाड़ी प्रदेशों सेँ ये चिड़ियां फौरन दक्षिण की ओर उड़ चलती हैं और रातोंरात भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में, सर, सरिताओं, झीलों के बीच या तटवर्ती खेतों में, छा जाती हैं और वहाँ उनके अविराम कल-कूजन से एक शोर-सा मच जाता है। सब से पहले तटवर्ती चहा तथा चुपका पक्षियों का आगमन होता है।

चहा—चहा एक छोटी-सी चिड़िया है (चित्र संख्या : ६१) जिसकी विभिन्न किस्में हैं और जो पानी के किनारे रहना पसन्द करती है। यह बड़ी शर्मीली होती है और हमारी आहट पाकर फौरन उड़कर किसी झाड़ी में जा छिपती है। फिर भी शिकारी इसे अपना निशाना बना ही डालते हैं और बहेलिये इसे अपने जाल में फँसा कर शहरों में बेंचते हैं। कहते हैं, खाने में इसका गोश्त बड़ा स्वादिष्ट होता है; यही नहीं, यूरोप के अनेक देशों में यह अंधविश्वास प्रचलित है कि चहा के मांस-भक्षण से मनुष्य के दांत सोने के हो जाते हैं।

कहते हैं, सूर्य की तेज़ धूप इसे पसन्द नहीं, इसी से दोपहर में यह धान के खेतों अथवा पौधों की छाया में छिप जाती है, और गोधूली के समय बाहर निकल कर कीचड़ वाले स्थानों में आ बैठती है। चाँदनी इसे अतिशय प्रिय है; चाँदनी से उजले खेतों अथवा जलाशय के समीपवर्ती स्थानों में यह आनन्द के साथ आहार-विहार करती है। शिकारी को देखकर बजाय इसके कि यह दूसरे पक्षी की भांति भाग खड़ी हो, दृढ़ता से जमीन से चिपक जाती है। यदि उड़ती भी है तो थोड़ी देर में पुनः वहीं लौट आती है।

यह १०-११ इंच की छोटी-सी चितकबरी चिड़िया है जिसके नर और मादा में कोई भेद नहीं है। इसकी पीठ सफेद पट्टियों तथा धारियों से चित्रित काले रंग की होती है। डैने सफेद धारियों से युक्त गाढ़े भूरे रंग के होते हैं। नीचे का समस्त हिस्सा सफेद, और दुम काली होती है। कद और वर्ण भेद से, इसकी भी कई श्रेणियां या उप-जातियां हैं, पर स्वभाव प्रायः सबका एक जैसा ही है।

इसे आप अक्सर जल के किनारे छिछली जगहों पर बैठी हुई देखेंगे। इसकी चोंच की एक खास बनावट है जिसके द्वारा यह कीचड़ से छोटे-मोटे कीड़ों को तो पकड़ लेती है, पर कीच छन कर अलग निकल जाता है। गर्मियों के शुरू होते ही ये चहा पहाड़ों की ओर चल देती है, पर कुछ रुक भी जाती हैं जो ग्रीष्म-ताप के बढ़ने पर ही उत्तर की यात्रा करती हैं। कई वर्ष हुए हमारे एक मित्र के बगीचे में गर्मी के दिनों में भी इनका एक जोड़ा एक झाड़ी के पास हमेशा बैठा या उड़ता हुआ नजर आता था। अन्वेषण से पता चला कि झाड़ियों की ओट में मादा ने दो अंडे—जो छोटे और धारीदार हुआ करते हैं—दे रक्खे थे। अंडों से बच्चों के निकलने तथा उनके पर जम जाने के बाद एक दिन बड़े सवेरे उन चारों ने उत्तर की राह पकड़ी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुपका—चहे से मिलती-जुलती एक छोटी चिड़िया है जिसे अंग्रेजी में 'सैंडपाइपर' और हिन्दी में 'चुपका' कहते हैं। यह भी जल के किनारे का पक्षी है। कद इसका प्रायः आठ इंच होता है, ऊपरी हिस्सा सफेद चित्तियों से भरा, भूरे रंग का होता है और नीचे का सफेद। इसकी चोंच चहे से भिन्न, नुकीली होती है। कीचड़ की अपेक्षा जलाशयों—ताल-तलैयों—का साफ-सुथरा किनारा इसे अधिक रुचिकर है जहां के शान्त वातावरण में एकाकी विचरता हुआ यह कीड़ों-मकोड़ों को ढूंढता फिरता है। आगन्तुक की आहट पाकर उड़ खड़ा होता है, पर फिर लौटकर अपने पुराने स्थान पर ही आ बैठता है।

बटेर—मांस-भक्षियों को चहा बहुत प्रिय है पर उससे भी अधिक प्रिय वह छोटा-सा पक्षी है जो जाड़ों में हजारों की संख्या में उत्तर-पश्चिम दिशा से यहां आ पहुँचता है और फसल से लदे हुए खेतों तथा छोटी झाड़ियों में आनन्द के साथ उछलता फिरता है। धूप इसे बर्दाश्त नहीं, अतएव पौधों की छाया में, झुरमुटों में, अधिक काल व्यतीत कर वसन्त के आते ही पुनः अपने प्यारे वतन को लौट जाता है। यह है बटेर जिसकी कई उपजातियां हैं और वर्ण-भेद भी। रूप-रंग में तीतर से इसकी काफी समानता है। यही नहीं, दोनों का गोश्त भी सफेद रंग का ही होता है—पर जहां तीतर गर्मियां भी हमारे देश में ही बिताता है, चहा ग्रीष्मकाल के शुरू होते ही पुनः पहाड़ी इलाकों की ओर चल देती है।

बड़े कद के बटेर को घाघस बटेर कहते हैं जिसके नर और मादा में किंचित् अन्तर है। इसके ऊपर का भाग भूरा होता है, डैने पर कत्थई धारियां, गले पर सफेदी दुम गाढ़े कत्थई रंग की। मादा के गले पर लंगरनुमा काला चिह्न नहीं रहता जो नर के होता है, पर उसकी छाती पर काली चित्तियां अवश्य होती हैं। चोंच इसकी स्लेटी भूरे रंग की तथा पांव पीले होते हैं।

छोटे कद के बटेर को चिनिंग बटेर कहते हैं जिसका सीना सफेद न होकर काले रंग का होता है।

बटेर हिन्दुस्तान से अरब तक मिलते हैं। स्वभाव से ये डरपोक होते हैं तथा आदमी की नज़र से हमेशा ओझल रहना चाहते हैं। धान के खेत इन्हें अत्यधिक प्रिय हैं और इन खेतों में लगाये गये जालों में ये सैकड़ों की संख्या में फँसते रहते हैं। खाने के काम में तो ये आते ही हैं, लड़ाने के काम में भी आते हैं। शौकीन लोग बुलबुल की तरह ही इन्हें पालते हैं और लड़ाया करते हैं। लड़ाने के काम में लाये जाने वाले बटेरों को ब्राह्ममुहूर्त में ही गर्म जल से नहलाया जाता है, फिर इनके बदन की मालिश की जाती है। इन्हें साहसी बनाने और इनमें स्फूर्ति लाने के लिए अनेक तरीके करने होते हैं। महीने-दो महीने में ये काफी लड़ाके बन जाते हैं और फिर तो ऐसे लड़ते हैं मानों दो पहलवानों की कुश्ती हो रही हो। लखनऊ आदि शहरों में एक समय था जब कि इनके दंगल हुआ करते थे तथा लोग इन पर हजारों की बाजियां लगाते थे। आज से प्रायः ४०-४५ वर्ष पहले हमारे यहां भी घर-घर में बटेर पाले जाते थे और उनकी लड़ाइयां हुआ करती थीं। पर आज के परिवर्तित समय में बटेर लड़ाने की यह प्रथा खत्म-सी हो चली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखने में गौरैये से इसका काफ़ी समानता है ।

बटेर से भी छोटी एक चिड़िया है जिसे बिहार में बगेड़ी (बटेरी ?) कहते ह । कद में यह गौरैये से छोटी तथा भूरे रंग की होती है जिसके पंखों पर काले चित्ते, पेट पर सफेदी होती है । यह एक ऐसी चिड़िया है जो सैकड़ों-हजारों की तादाद में खेतों तथा सरपत की झाड़ियों में उड़ती फिरती है । बहेलिये इसे जाल में फँसा कर बजारों में बेंचते हैं । यह भोज्य पक्षी है । जाड़ों के समाप्त होते ही यह झुंड-का-झुंड पहाड़ों की ओर चल देता हैं ।

बटेर उन पक्षियों में है जिनके बच्चे अंडों से निकलते ही चलना शुरू कर देते हैं तथा जिनके शरीर पर जन्म-काल से ही पर उगे होते हैं । मोर, मुर्गी, तीतर, बटेर आदि के पक्षी-शिशुओं की यह एक विशेषता है । थल पर रहने वाली चिड़ियों की तरह बटेर भी अंडे जमीन पर ही, किसी झुरमुट की ओट में देती है ।

बतख—इन तटवर्ती पक्षियों के बाद जल में रहने वाली उन बतखों का आगमन होता है जो गर्मियों में मानसरोवर आदि पहाड़ी झीलों में निवास करती हैं, पर शीत-काल के आते ही हमारे देश की झीलों अथवा नदियों में आ पहुँचती हैं ।

इनकी यात्रा विशेषतः रात में होती है । गोधूली अथवा अर्धनिशा में यदि आप गौर से देखेंगे तो सुदूर आकाश में आपको इनकी कतारें दिखाई देंगी, मानो कोई कारवां जा रहा हो । ये जलपक्षी हजारों की संख्या में कलरव करते हुए उड़ते नजर आते हैं । कभी-कभी तो ये इतनी ऊंचाई से जाते हैं कि इनका कूजन ही कर्ण-गोचर होता है, ये दिखाई नहीं देते । यही समय है जब कि इन झीलों के समीपवर्ती धान के खेत दानों से लद जाते हैं । इनसे आकर्षित होकर बतखें इन झीलों में उतर पड़ती हैं और तमाम जाड़ा यहीं बिताती हैं । बहुधा इनकी संख्या लाखों तक होती है । बहेलियों के जालों में फँसकर इनमें से बहुतेरी बाजारों में बिकती भी हैं और बहुतेरी बन्दूक का निशाना भी बनती हैं, फिर भी ये इन झीलों में डटी रहती हैं । हाँ, जब-तब समीपवर्ती झीलों में सैर को चली जाती हैं, पर पुनः लौटकर अपनी झील में आ पहुँचती हैं । कुछ ऐसी भी हैं—जिनकी संख्या अधिक नहीं होती—जो गर्मियाँ भी इन्हीं झीलों में बिता डालती हैं । इन में मुख्य वे हैं जिन्हें हम चैती, तिदारी, बुड़ार, सवन, सीखपर, सुरखाब, हंसावर आदि नामों से पुकारते हैं ।

जब इनके दल कलरव करते हुए आकाश-मार्ग से हिमालय की ओर से विभिन्न झीलों की ओर अग्रसर होते हैं तो इनका कूजन कानों को अत्यन्त प्रिय लगता है। एक अंग्रेज पक्षी-प्रेमी ह्यूम के शब्दों में—

"झुंड के झुंड इन पक्षियों का आकाश में उड़ते हुए कूजन करना अत्यन्त कर्णप्रिय प्रतीत होता है । बहुत कम शिकारी ऐसे होंगे जो उनके संगीत से आह्लादित न हो उठें ।"

बिहार राज्य में, खासकर हिमालय के समीपवर्ती उत्तर बिहार में ऐसी झीलों की बहुतायत है, पर अफसोस ! कि इन झीलों से नहर निकाल कर जलपक्षियों के इन क्रीड़ास्थलों का खात्मा किया जा रहा है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चैती—यह कद में प्रायः १५ इंच की होती है (चित्र संख्या : ५३)। नर और मादा के रंगों में अन्तर होता है। नर का सर और गर्दन का ऊपरी हिस्सा कत्थई रंग का होता है। गर्दन के पिछले हिस्से तथा पीठ में काली और सफेद धारियां होती हैं। डैने भूरे होते हैं और उन पर चमकीली, हरी तथा काली धारियां बनी होती हैं। पेट और सीना सफेद होते हैं।

मादा की पीठ का ऊपरी भाग, दुम तथा सारे ऊपरी हिस्से गहरे भूरे रंग के होते हैं। सीने पर चित्तियां काली न होकर भूरी होती हैं। अन्य बतखों की भांति ही चैती के पैर के अँगूठे भी जुड़े हुए होते हैं। पानी में यह डुबकियां भी लगाती है, खासकर जख्मी होने पर।

तिदारी—चैती से बड़ा होता है (चित्र संख्या : ४९)। नर की गर्दन और सर का रंग चमकीला हरा, पीठ का चित्रित भूरा, दुम काली और भूरी होती है। डैने का रंग मिश्रित भूरा, स्लेटी, नीला और सफेद होता है तथा सीने पर सफेद, पेट पर कत्थई रंग होते हैं। इसकी चोंच और बतखों से अधिक लम्बी और चिपटी हुई होती है।

मादा का रंग धूमिल होता है : बदन का भूरा चितकबरा, पेट का कत्थई।

बहुधा ताल-तलैयों की कीचड़ में यह कीड़ों-मकोड़ों की तलाश में घूमा करता है।

बुड़ार—इस जाति की बतखें ज्यादा मशहूर हैं। इनकी तीन किस्में हैं—बुड़ार (चित्र संख्या : ५०) नर, लालसर (चित्र संख्या : ५१) और करछिया।

बुड़ार ज्यादातर गहरे और साफ जल में रहता है तथा निपुण पनडुब्बा है। इसका आहार मुख्यतः पानी में उगे हुए पौधों की जड़ें होती हैं। यह तिदारी से कद में छोटा होता है और सुस्त भी। अधिकतर रात में यह खाने की तलाश में घूमता रहता है। इसके नर का सर तथा गर्दन खैरे रंग की, सीना और दुम के ऊपर-नीचे के हिस्से काले होते हैं। अंग के शेष हिस्से पीलापन लिए हुए स्लेटी रंग के होते हैं। पेट सफेद होता है। डैने भूरे होते हैं।

मादा के रंग में थोड़ा-सा फर्क रहता है।

लालसर का सर लाल होता है, करछिया का पेट सफेद।

उत्तर बिहार की झीलों में ये बहुतायत से पाये जाते हैं।

सवन—यह हंस की श्रेणी की एक बतख है जो देखने में काफी सुन्दर होती है। कद में प्रायः ३० इंच की होती है, सर सफेद होता है, गरदन भूरी होती है, ऊपरी हिस्सा राख के रंग का, पीठ और कन्धों पर पीलापन युक्त खड़ी धारियां, डैने भूरे जिनके किनारे काले, दुम हलकी स्लेटी, सीना सफेद, चोंच पीली, पैर गुलाबी—मोटे तौर पर इसकी यही रूपरेखा है।

तालाब और झील की अपेक्षा नदी का किनारा इसे अधिक प्रिय है।

सीखपर—यह देखने में सबसे अधिक सुन्दर होता है तथा दुम के बीच के दो पर सीख जैसे लम्बे होने के कारण इसका नाम सीखपर पड़ गया है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कद में यह (चित्र संख्या : ५२) प्रायः दो फुट का होता है, दुम काफी लम्बी होती है। नर का सर और गला गाढ़े भूरे रंग का, बदन पर तरह-तरह की काली, सफेद और हरी धारियां, दुम भूरी और बादामी होती है। पैर स्लेटी रंग के होते हैं। मादा की गर्दन पर भूरी चित्तियां होती हैं, बदन के नीचे के सभी हिस्से सफेद होते हैं, पीठ और डैने स्लेटी लिए हुए भूरे रंग के होते हैं।

अधिकांशतः ये पानी में ही रहते हैं। सूखी जमीन पर शायद ही कभी आते हों। ये एक साथ लाखों की तादाद में आकाश-मार्ग से चलते हैं तथा इनकी रफ्तार बड़ी तेज होती है।

सुरखाब––ये पांत बांध कर नहीं चलते। अधिकतर जोड़ा बांध कर नदी या तालाब के किनारे रहते हैं (चित्र संख्या : ४३)। कद में प्रायः २६ इंच के होते हैं। नर का सारा बदन सुनहला या नारंगी भूरे रंग का होता है, सर और गर्दन बादामी रंग की। गले के चारों ओर एक काली कंठी होती है। पीठ का पिछला भाग और दुम का रंग काला होता है। डैने पर काले, हरे, सफेद-आदि कई रंग हुआ करते हैं। मादा के गले में कंठी नहीं होती। चोंच दोनों की काली होती है।

सुरखाब के प्रति कविवर राकेश की ये पंक्तियां इस पक्षी के वास्तविक स्वरूप को अंकित करती हैं––

हे प्रफुल्ल चम्पक प्रसून-से प्रिय विहंग, हे कृष्ण-चंचु नत,
सिक्त सलिल-से, पद्म-रेणु से सिंदूरित सर्वांग कांतिमत्!

सुरखाब के पर कई रंगों से चित्रित होने के कारण स्वभावतः बड़े सुन्दर लगते हैं और कई देशों में लोग इन्हें सर पर धारण भी करते हैं––'सुरखाब का पर लगाना' कहावत मशहूर है। यह बड़प्पन का चिह्न माना जाता है।

सुरखाब को चकई-चकवा या कोक-कोकी भी कहते हैं। साहित्य में इनके दाम्पत्य-प्रेम का बार-बार जिक्र आया है। महाकवि वाल्मीकि ने इन्हें 'स्मर-प्रिय' कहा है––

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः
स्मरप्रियैः पद्मरजोवकीर्णैः
महानदीनां पुलिनोपयातैः
क्रीडन्ति हंसाः सहचक्रवाकैः।

––बड़ी पांखवाले, गृहागत, कामी, कमल की धूल से भरे हुए, महानदी के तट पर आए हुए चक्रवाकों के साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं।

रात में इनके नर और मादा एक-दूसरे से विलग हो जाते हैं, क्रन्दन करते हैं मानों भगवान भास्कर से प्रार्थना करते हों कि वह उदित होकर इनका पुनर्मिलन करायें।

काव्य में इनके निशाकालीन विरह-क्रन्दन की चर्चा स्थान-स्थान पर आई है। सूर्य को अस्ताचलगामी होते देखकर एक करुण-हृदय कवि ने उसके आने वाली विरह-वेदना का ध्यान करके उन्हें पूर्व से ही इन शब्दों में ढाढ़स बँधाया है––

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हंस युगल काश्मीर की एक झील में
चित्र संख्या : ७३

चित्र संख्या : ७२
हंसों की जलक्रीड़ा

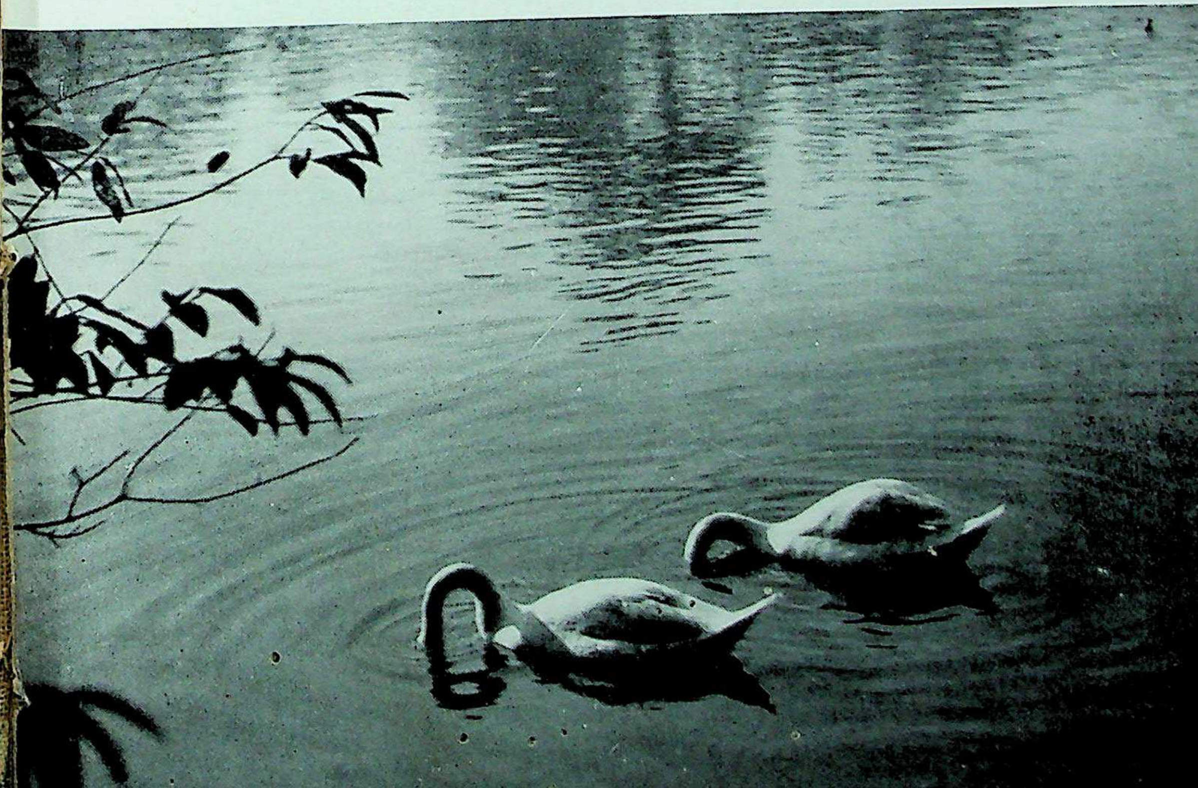

CC-0. Jamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

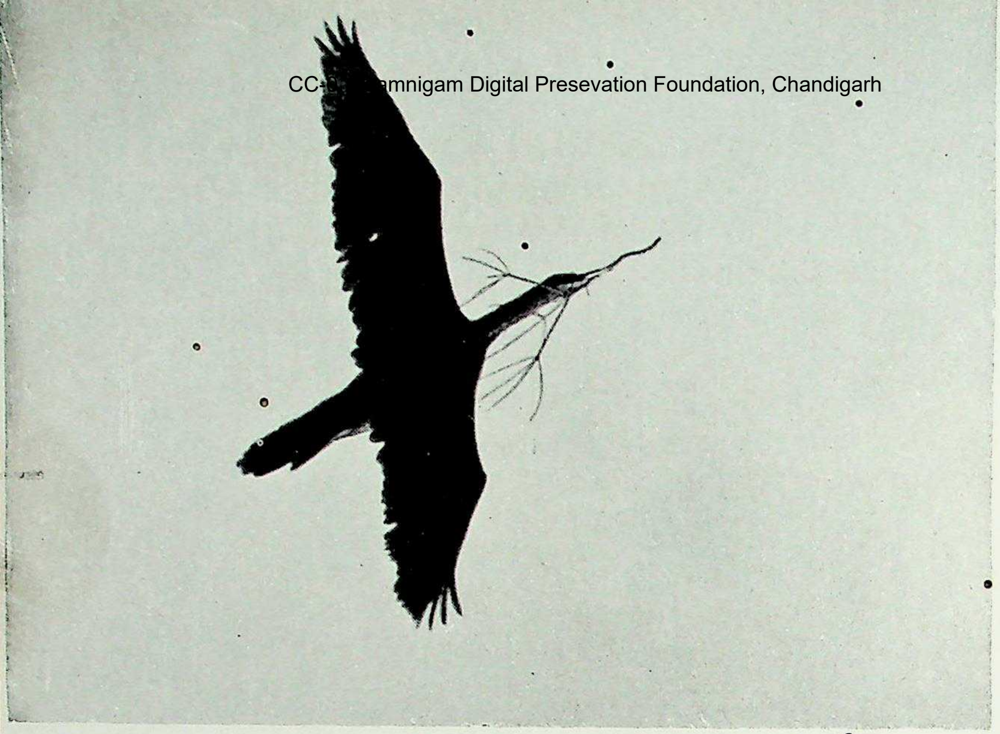

पनकौआ
तिनका ले
जाते हुए

चित्र
संख्या : ७४

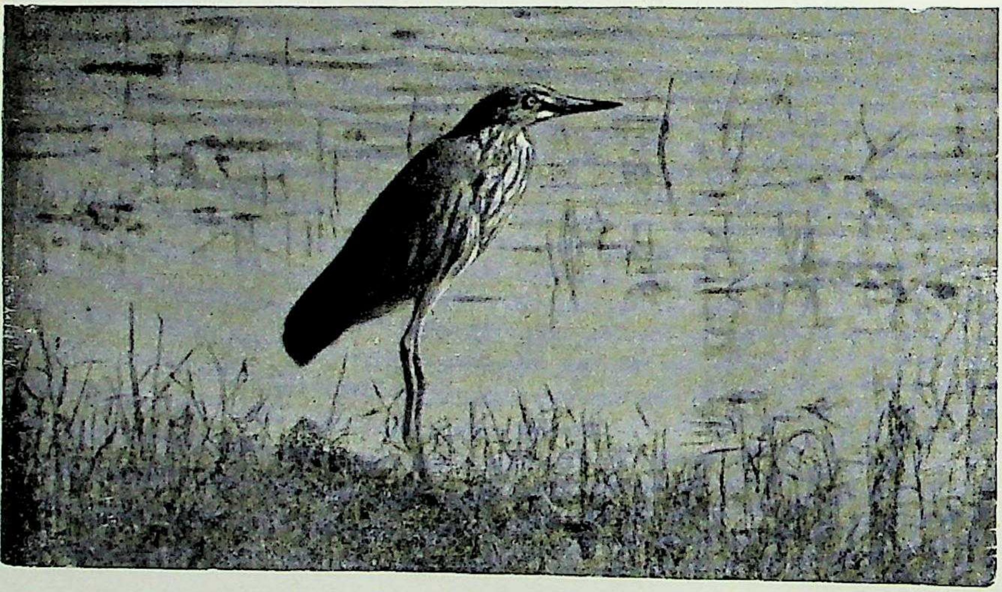

बगुला
सरोवर के
किनारे

चित्र
संख्या : ७५

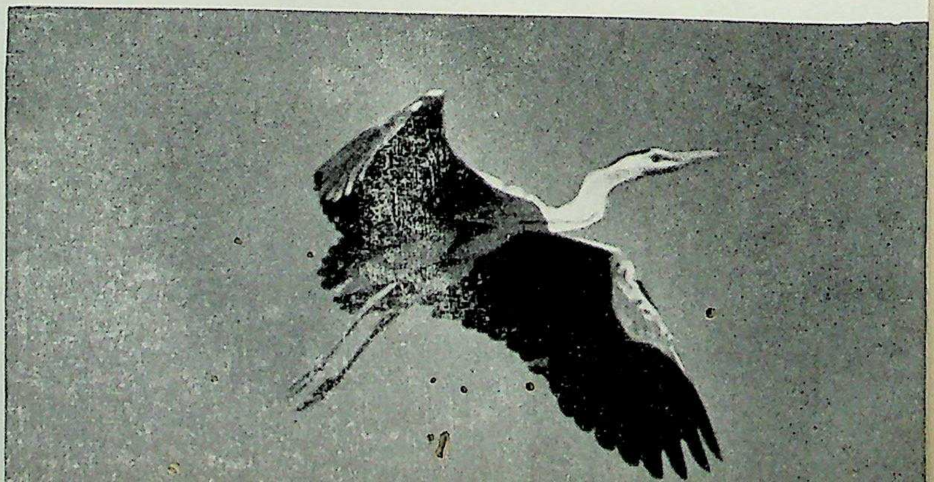

बगुला
आकाश में

चित्र
संख्या : ७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तंगतोऽयमरविन्दवनैकबन्धुर्भास्वान्न लंघयति कोऽपि विधिप्रणीतम्
हे चक्र ! धैर्यमवलम्ब्य विमुंच शोकं धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ।

—हे चकवे ! यह सूर्य अस्त हो रहा है, अतः तुम्हें अपनी प्राण-प्रिया का विरह सहन करना पड़ेगा, क्योंकि विधि के विधान को कोई नहीं टाल सकता है । इसलिए तू धैर्य धर, दुःखी न हो,—धीर-वीर ही विपत्तियों को पार कर सकते हैं, दीन-हीन मनवाले नहीं ।

चक्रवाक सम्बन्धी इस धारणा को, कि रात में नर और मादा अलग-अलग हो जाते हैं तथा एक दूसरे का आह्वान करते-करते रात बिताते हैं, कई लोगों ने गलत बतलाया है । पर यह धारणा वास्तविक है, काल्पनिक नहीं । 'डक्स एंड देयर अलाईज़' पुस्तक (१९२१) के प्रणेता मि० स्टुअर्ट ने अनुभव के बल पर लिखा है—

"रात्रिकाल में, दाना चुंगते हुए, ये पक्षी एक-दूसरे से विलग हो जाते हैं तथा एक-दूसरे को पुकारते हुए-से प्रतीत होते हैं ।"

झीलों तथा सरिताओं में ही नहीं, बाग के कृत्रिम जलाशयों में भी इनकी यही प्रणाली है ।

'स्माल गेम शूटिंग इन बंगाल' (१८९९) का लेखक लिखता है—

"शीतकाल की रात में नदी से सफर करते हुए थोड़ी-थोड़ी देर पर 'कांको, कांको' की ध्वनि वहिगत होते किसने नहीं सुनी है ? ऐसा लगता है कि नदी के एक तट से यह आवाज आती है, फिर दूसरे से उन्हीं शब्दों में कोई उत्तर देता है ।"

कवियों के कल्पना-जगत में इस पक्षी ने ऊंचा स्थान पाया है ।

चकई-चकवा के सम्बन्ध में एक यह भी धारणा है कि ये वर्षाकाल में ही पहाड़ों से उतर कर यहां आ पहुँचते हैं, शीतागम की प्रतीक्षा नहीं करते । महाकवि बिहारी-लाल ने तभी तो लिखा है—

पावस घन अँधियार महुँ रह्यो भेद नहि आन,
रात द्योस जान्यौ परतु लखि चकई चकवान ।

और कवि सेवक ने कहा है—

दिनरैन की संधि न बूझिबे की मति कोक तमी चुरवान लगी,
नदिया नद लौं उमड़ी लतिका, तरु तंसेन पै गुरवान लगी ।

शिकोहाबाद के एक शायर मुनीर ने फर्माया है—

रुत है बरसात की बहुत प्यारी,
मौज-ज़न झीलें नद्दियां सारी !
कोकिला, बगले, कोयले, ताऊस,
अपनी तानें सुनाते हैं प्यारी ।
क़ाज़ें, मुरग़ाबियां, बतें, सुरख़ाब,
झीलों के साथ करते हैं चारी ।

गरज यह कि सुरखाब उन जल पक्षियों (क्रौंच आदि) में है जो बरसात के दिनों में भी हमारे यहां पाये जाते हैं । पर इतना अवश्य है कि शरद् ऋतु के आने पर ही ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं—कामक्रीड़ा में संलग्न पाये जाते हैं। महाकवि वाल्मीकि के देखते हुए एक बहेलिये ने काम-क्रीड़ा-रत एक क्रौंच को अपने बाण का शिकार बना डाला था जिसके परिणाम-स्वरूप महर्षि के मुख से आप-से-आप शाप-सूचक 'मा निषाद' वाला श्लोक निकल पड़ा था जो परम विख्यात है।

चक्रवाक के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

चक्रवाक, बक, खग समुदाई, देखत बनइ बरनि नहिं जाई।

और इसमें सन्देह नहीं कि यह एक अतिशय श्रेष्ठ सुन्दर पक्षियों में है। शारदीय सरिता-तट के चक्रवाक और क्रौंच शोभा बढ़ाने वाले पक्षियों में हैं—

कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत,
कहुँ कारंडव उड़त, कहूँ जल-कुक्कुट धावत,
चक्रवाक कहुँ बसत, कहूँ बक ध्यान लगावत,
शुक, पिक, जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत,
कहुँ तट पै नाचत मोर, बहु शोर विविध पंछी करत,
जलपान न्हान करि सुखभरे, तट सोभा सब जिय धरत।

(भारतेन्दु : यमुना-छवि)

गल—यह मुख्यतः समुद्र का पक्षी है (चित्र संख्या : ६८; ६९; ७०)—अंग्रेजी में इसे "गल" और हिन्दी में गंगाचील कहते हैं। यह अधिकांशतः विलायत में पाया जाता है, पर जाड़े के दिनों में हमारे यहां की नदियों, झीलों और तालाबों के किनारे भी झुंड का झुंड आ पहुँचता है और ग्रीष्म ऋतु के आरंभ-काल तक रहता है। भारत में इसे 'घोमरा' भी कहते हैं, पर इसका सामुद्रिक नाम 'गल' ही सर्वत्र, देहातों में भी, प्रचलित है। इसकी पीठ और डैने राख के रंग के, सर, गर्दन और दुम सफेद रंग की होती है। डैनों के कुछ पंखों की नोक पर कालापन रहता है। गर्मियों में सर और गर्दन का रंग कत्थई में परिवर्तित हो जाता है। चोंच और पेट गाढ़े लाल रंग के होते हैं। दक्षिण भारत के समुद्री इलाकों में, खासकर समुद्र-तट पर, यह बहुतायत से पाया जाता है। देखने में सुन्दर होता है।

हंसावर—यह भी हमारे यहां शरद्काल के साथ-साथ आने वाले पक्षी हैं (चित्र संख्या : ७१) तथा जाड़े भर रहते हैं। देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हैं। सर, गर्दन बदन और दुम के कुछ भाग सफेद रहते हैं जिनमें गुलाबी झलक रहती है, डैने लाल होते हैं, चोंच गुलाबी होती है, पैर भी लाल ही होते हैं। टांगें बड़ी और लम्बी होती हैं। अधिकतर गहरे पानी में कीड़े-मकोड़े तथा काई की तलाश करते रहते हैं जिन्हें ये अपना आहार बनाते हैं।

कविवर राकेश ने निम्न पंक्तियों में बड़े सुन्दर ढंग पर इनका भी वर्णन किया है—

छिछले पानी में एक चरण के बल पर,
लम्बी ग्रीवा को मोड़ खड़े दलदल पर,
पंखों के नरम लबादे श्वेत, अबीरी,
आंखों की पुतली अरनि सुमन-सी पीली,

* * *

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हंसावर नहीं, खिले सरसी में पंकज ।

'हंसावर नहीं, खिले सरसी में पंकज'—जलस्थित हंसावर वास्तव में दूर से खिले हुए गुलाबी कमलों की याद दिलाते हैं। हंस, जिसके सम्बन्ध में श्रुति ने कहा है—"हंस के समान जल में निर्लेप रहकर विहार करने वाला योगी प्राण के संयमन में कुशल है", तथा जो मुक्ता और दूध को ही अपना आहार बनाता है तथा जिसमें जल से दूध को विलग करने की क्षमता है—'हंसैर्यथाक्षीरमिवाम्बुमध्यात्,'—वह, आर्या है कि, कश्मीर तक ही आता है, आगे नहीं बढ़ता[1]। पर उसकी बिरादरी का यह पक्षी—हंसावर—शरद्काल के आते ही हमारा अतिथि होता है और हम इसे देखकर ही मराल के उस अमित सौन्दर्य की कल्पना कर लेते हैं जिसकी हमारे भारतीय साहित्यकारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है तथा जिसके सम्बन्ध में महाकवि कालिदास ने 'ऋतुसंहार' में लिखा है—

संपन्नशालिनिचयावृतभूतलानि
स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि ।

---

१ पक्षिशास्त्र के कई पंडितों का कहना है कि जिसे हम राजहंस के नाम से पुकारते हैं तथा जिसके सम्बन्ध में महाकवि कालिदास ने लिखा है—

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलिन्ध्रामबन्ध्यम्
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः
आ कैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ।

वह बिल्कुल सफेद नहीं धूसर-मिश्रित है। अमरकोश में राजहंस का परिचय इस प्रकार दिया है—राजहंस वे हैं जिनका शरीर 'सित' तथा चरण और नेत्र 'लोहितवर्ण' के होते हैं—'राजहंसास्तु ते चक्षुचरणैर्लोहितैः सिताः'। अब प्रश्न यह है कि 'सित वर्ण' किसे कहते हैं।

शब्दार्णव में लिखा है कि 'सित' रंग कदली कुसुम के सदृश है। कदली कुसुम—केले का फूल—स्पष्ट है कि सम्पूर्ण स्वच्छ, धवल-श्वेत नहीं होता, सफेदी के साथ-साथ अन्य रंगों का भी इसमें सम्मिश्रण है। अतएव 'सित' से यहां तात्पर्य दूध जैसी सफेदी से नहीं है, वरन् उस सफेदी से है जिसमें और रंगों की भी झलक होती है। हां, अधिकांशतः सफ़ेदी अवश्य होती है।

गरज यह कि उस पक्षी को ही, जिसकी सफेदी धूसर-पिंगल-मिश्रित है, तथा जिसके मस्तक, कंठ, शरीर और पूंछ का निचला हिस्सा बिलकुल श्वेत, पर मस्तक के नीचे जिसके दो काली चौड़ी धारियां हैं, उसे ही कुछ लोग राजहंस मानते हैं। इसकी आंखें कमल जैसी लाल तथा पांव भी लाल ही होते हैं। तिब्बत तथा लदाख के आसपास की झीलों के किनारे ये एक बड़ी संख्या में अंडा देते पाये गये हैं। अन्यत्र दिये गये एक चित्र में (चित्र संख्या : ६२) तिब्बत-स्थित एक झील के आसपास इन्हीं का झुंड है।

पर इसमें मतान्तर है और दृढ़तापूर्वक यह कहना, कि यही वह क्षीर-नीर-बिवेकी हंस है जिसका मेघदूत में उल्लेख है, कठिन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हंसै ससारसकुलैः प्रतिनादितानि
सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ।।

अर्थात्, धरती धान के खेतों से सम्पन्न है; गायें शान्तिपूर्वक विचर रही हैं; हंस और सारस बोल रहे हैं; सभी कुछ जन-मन को मुग्ध करने वाला है ।

कौन बताये कि मानसरोवर के वे हंस, जो मुक्ता चुंग-चुंग कर ही अपना पेट भरते हैं—

हंस, छोड़ आये कहां मुक्ताओं का देश ?—

(साकेत)

रक्त-मांस के बने हुए वास्तविक पक्षी हैं या कवि की कोरी कल्पना ही ?

* * * *

जाड़े के मौसम में हमारे यहां उत्तर अर्थात् पहाड़ी प्रदेशों से आने वाले पक्षियों में जिनकी ऊपर चर्चा की गयी है, वे ही मुख्य हैं। इनके अलावा भी कुछ हैं, पर वे नगण्य हैं । खंजन का जिक्र एक स्वतन्त्र लेख में किया गया है, अतएव उसकी यहां उल्लेख नहीं है ।

बहुधा पूर्वोक्त जल-पक्षियों को देखकर हमारे हृदय में इनके रोमानी जीवन का ध्यान हो आता है, और मन में ये प्रश्न आप-से-आप आ जाते हैं—

शीतकाल के अतिथि हमारे !
जल-विहार-रत हे सुपर्ण-खग,
रहते जो नित पंख पसारे,
चक्रवाक हे ! हंसावर हे !
युग्म लालसर ! वेश सँवारे,
हिम पर्वत के बीच, दिव्यतम,
कौन झील आवास तुम्हारे ?

पक्षियों का ऋतुविशेष में स्थान-परिवर्तन भी एक दिलचस्प विषय है। ऋतु-परिवर्तन-काल में एक से दूसरे देश को जाते समय ये पक्षी जिस रफ्तार से रोज़ उड़ा करते हैं उससे कहीं ज्यादा रफ्तार से उड़ते हैं । इसके कई कारण हैं । एक तो उन्हें दूर की यात्रा करनी पड़ती है जिसे वे कम से कम समय में तय करना चाहते हैं; दूसरे, वे आकाश में काफी ऊँचाई पर उड़ते हैं जहां हवा का वेग नीचे की अपेक्षा ज्यादा तेज रहता है और उसके साथ उड़ने में आप-से-आप तेज़ होती जाती है । नीचे तथा ऊपर की हवा के वेग में कितना अन्तर है, यह देखिए—

ऊंचाई (फुट)	वायु-वेग (मील प्रति घंटा)
जमीन के ऊपर	११
३००	२५
१,०००	३०
१०,०००	६५
३०,०००	१००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट है कि एक पक्षी यदि १,००० फुट पर उड़ता है तो जमीन की ऊंचाई से अपनी उड़ान में वह १० मील प्रति घंटा अधिक की रफ्तार हासिल कर लेता है ।

तात्पर्य यह कि दूर देश का यात्री-पक्षी साधारण, नित्य-प्रति की उड़ान से काफी अधिक तेजी से उड़ता है । मसलन, आमतौर पर २९ से ३५ मील प्रति घंटा के वेग से उड़ने वाला अबाबील स्थानान्तरित होते हुए ३८–४० मील तथा टिट्टिभ, जिसकी साधारण रफ्तार ३० से ४० मील प्रति घंटा है, ३७ से ४५ मील प्रति घंटे के हिसाब से रास्ता तय करता है ।

आश्चर्य की बात है कि ये पक्षी एक निश्चित समय पर एक जगह से दूसरी जगह—कभी-कभी हजारों मील दूर––आ पहुँचते हैं, मानो उनकी यात्रा का समय और पहुँचने का दिन पहले से तय हो । यही नहीं, यह भी देखा गया है कि अमुक पक्षी साल-बसाल अमुक स्थान पर ही, शीतकाल के आते-न-आते, आ पहुँचता है । पहचान के लिए गले में किसी वस्तु—छल्ले आदि को पहनाकर पक्षि-शास्त्र के विशेषज्ञों ने इस बात की जांच की है ।

इनकी यात्राएं ज्यादातर उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण से उत्तर की ओर हुआ करती हैं । इनमें इन्हें हजारों मील तक की दूरी तय करनी पड़ती है । कहते हैं, सबसे लम्बी यात्रा वह है जो आर्कटिक इलाकों के कुररी पक्षी को जाड़ों में अन्टार्टिक प्रदेशों को—जहां उन दिनों ग्रीष्मऋतु बनी होती है—और फिर गर्मियों में अन्टार्टिक से वापस आर्कटिक इलाकों को करनी पड़ती है । ११,००० मील के इस सफर को वह बहुत थोड़े समय में तय कर लेता है ।

भोजन की सुविधा ही इन पक्षियों के स्थानान्तरण का मूल कारण है । यह भी देखा गया है कि ऐसे पक्षी वहीं पर घर बनाना और अंडे देना अधिक पसन्द करते हैं जहां ठंडक ज्यादा होती है । इसीलिए हमारे यहां जो पक्षी शीतकाल में हिमालय की ओर से उड़कर आते हैं वे घोंसले यहां नहीं बनाते, बल्कि लौटकर हिमालय के किसी भाग में ही बनाते तथा जनन-क्रिया सम्पन्न करते हैं । हिमालय की झीलों—लदाख की पेंगौंग, कराकोरम के दक्षिण रावण तथा मानसरोवर, ल्हासा के समीपवर्ती पालती आदि—के आस-पास यात्रियों ने लाखों की संख्या में ऐसे जल-पक्षियों को ग्रीष्मकाल में एकत्र पाया है । एशियाटिक रिसर्चेज़, खंड १२ (१८१६) के पृष्ठ ४६६ पर एक सज्जन का बयान है—

"जल के चारों ओर जंगली भूरी बतखों के छोटे-बड़े पर बिखरे हुए थे । ये बतखें सयानी तथा कम उम्र की, दोनों—मुझे देखते ही झील के भीतर चली गयीं । इनकी संख्या तथा इनकी बीट की मात्रा से मुझे लगा कि ये यहां काफी बड़ी संख्या में प्रति वर्ष आती तथा अड़ोस-पड़ोस की चट्टानों के बीच अंडे दिया करती हैं ।"

अत्यधिक सर्दी तथा बर्फ गिरने के कारण वे दक्षिण की ओर भले ही चली आयें, पर तीन चार महीने यहां रह कर, धान के खेतों में जी भर दाना चुग कर अन्त में देह में वासन्ती हवा के लगते ही उन्हें अपने पुराने घर की याद आ जाती है और तब वे हिमालय की ओर लौट चलती हैं । जब इनके चलने के दिन आते हैं तो इनमें एक खलबली-सी मच जाती है, किसी अज्ञात प्रेरणा से ये बेचैन-सी हो उठती हैं । डा० टामसन् के शब्दों में—

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"जब तक वे चल नहीं पड़तीं, उनमें बेचैनी फैली रहती है । हेमंत में वापस जाने से पहले उनमें बेचैनी का होना इस देश में सर्वविदित है ।"

जब दल के दल ये पक्षी हिमालय से दक्षिण की ओर रवाना होते हैं, तो ऐसा देखा गया है कि इनके दल का नेतृत्व नवजात—दो तीन मास की उम्रवाले—पक्षी करते हैं; बड़ी उम्रवाले इनका अनुसरण करते हैं, पर लौटती बार इसके ठीक विपरीत, जो उम्र में बड़े होते हैं, वे अपने निर्वाचित स्थल पर पहले पहुँचते हैं, बाकी पीछे, शायद इसलिए कि उन्हें आगे पहुँच कर घर तैयार करना रहता है ताकि निश्चित समय पर मादा अंडे देने में समर्थ हो सके ।

दल की नेतागिरी करते हुए जब विहग-कुमार दक्षिण देश की ओर आते हैं तो पथ के अज्ञात होने पर भी वे अपने मार्ग से तिलमात्र भी विचलित नहीं होते । अन्तःकरण की प्रेरणा ही उन्हें ठीक उस रास्ते से ले आती है जिससे होकर उनके पूर्वज न जाने कितने वर्षों से इस देश की यात्रा करते रहे हैं । ये अपने निश्चित समय पर यहां आ पहुँचते हैं : कुछ तो आते समय रास्ते में रुकते हैं, कहीं दो चार दिन, कहीं हफ्तों, और कुछ बगैर यात्रा-भंग किए हुए सीधे अपने निर्दिष्ट स्थान पर आ पहुँचते हैं । हिमालय के कतिपय स्थानों पर यात्रियों ने ऐसे पड़ाव देखे हैं जहां ये पक्षी दो-चार-दस रोज ठहर कर विश्राम करते हैं और तब आगे अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते हैं । इनमें जो कमजोर होते हैं, वे कभी-कभी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पहले ही हिम्मत हार बैठते हैं । हिमालय के कई यात्रियों का कहना है कि उन्होंने हिमालय-स्थित उन झीलों से, जिनकी चर्चा ऊपर आ चुकी है, मीलों दूर कई ऐसे थके हुए, शक्तिहीन पक्षियों को बेबसी की अवस्था में बैठे पाया था । ऐसे ही किसी यात्री की दयनीय दशा पर आंसू गिराते हुए उर्दू के एक शायर ने कहा था—

किस्मत पे उस मुसाफिरे-बेकस के रोइए,
जो थक गया हो राह में मंजिल के सामने ।

इनके पथ भी एक प्रकार से निर्धारित हैं; हिमालय के ऊँचे शिखरों के ऊपर से न जाकर ये घाटियों के रास्ते से चलते हैं । ऐसी ही एक घाटी 'क्रौंचरन्ध्र' है जिसे कालिदास ने 'मेघदूत' में 'हंसद्वार' कहा है— यह कुमायूं जिले में 'नीतीघाटी' के नाम से मशहूर है तथा इससे होकर तिब्बत के यात्री आया-जाया करते हैं—

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्—
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम् ।

ऋतु-परिवर्तन के होते ही पक्षी स्थानान्तरण की तैयारियां करने लगते हैं । फिर जब कूच का डंका बजने का समय समीप आता है, तो वे एक जगह एकत्र हो जाते हैं, जैसा कि अन्यत्र दिये गये एक चित्र से परिलक्षित होता है (चित्र संख्या : ३८) । जब उनके गिरोह में सभी पक्षी आकर इकट्ठे हो जाते हैं—भूले-भटके तक आ पहुँचते हैं—तथा वतन की याद उन्हें सताने लगती है, तो वे एक दिन—पता नहीं किसी शुभ-मुहूर्त्त पर या यों ही—झुंड-से उड़ चलते हैं ।

इन पक्षी-यात्रियों के भी दो भेद हैं—एक वे जो निशाकाल में अपना सफर तय करते हैं, दूसरे वे जो कि दिवा-यात्री हैं ।

State Museum,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन पक्षियों के पास 'स्पीडमीटर'—रफ्तार जांचने का यन्त्र— नहीं होता, फिर भी ये बड़े नियम के साथ अपनी उड़ान पूरी करते हैं । जल की जिन बतखों की ऊपर चर्चा की गई है, वे औसतन ४० से ५० मील तक प्रति घंटे उड़ती हैं । अगर हवा अनुकूल रही हो तो ६० मील प्रति घंटे तक भी उड़ती हैं । दिन-रात में ६ से ११ घंटे तक ये उड़ती रहती हैं । एक उड़ान में टिकरी १६० मील तक, वनकुक्कुट २५० से ३०० मील तक तथा टिटहरी ११ घंटे में ५५० मील तक उड़ती हुई पायी गई है । पूर्व देशीय सुनहली प्लामर (टिटहरी) को समुद्र पार करते समय एक ही उड़ान में २०० मील का रास्ता तय करते हुए देखा गया है । जापान में पाये जाने वाले चहा पक्षी शीतकाल के दिन पूर्वी आस्ट्रेलिया एवं तस्मानिया में बिताते हैं और दोनों देशों के बीच की तीन हजार मील की दूरी एक ही उड़ान में पार कर लेते हैं । १,३०० से लेकर ३,००० फुट तक की ऊंचाई पर से देश-विदेश की सैर करने वाले ये पक्षी, उड़ते देखे गये हैं । भारतवर्ष के शीत-कालीन पक्षी, जो उत्तर से आते हैं, अधिकतर तिब्बत, साइबेरिया और कश्मीर से, उनका पथ-प्रदर्शन ब्रह्मपुत्र तथा सिन्धु नदियों की धाराएं करती हैं । एक चैती बतख—जिसे १९२९ की जुलाई में पश्चिमी साइबेरिया के किसी हिस्से में छल्ला पहना दिया गया था—उसी वर्ष के दिसम्बर महीने में उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में पायी गयी थी । हिमालय के नंगापर्वत आदि उच्च शृंगों की यात्रा करने वाले साहसी यात्रियों का कहना है कि उन्होंने १७,००० से लेकर २७,००० फुट तक की ऊंचाई पर इन पक्षियों को देखा है । यही नहीं, २३,००० फुट पर उन्हें कौए तक देखने को मिले हैं । इन बातों से यह स्पष्ट है कि ये पक्षी यदि चाहें तो काफी ऊंचे उड़ सकते हैं । यही कारण है कि हिमालय की ऊंची चोटियों की तनिक भी परवाह न करके ये प्रतिवर्ष यहां आ पहुँचते हैं ।

खंजन

वर्षा विगत शरद ऋतु आई,
लछमन देखहु परम सुहाई ।

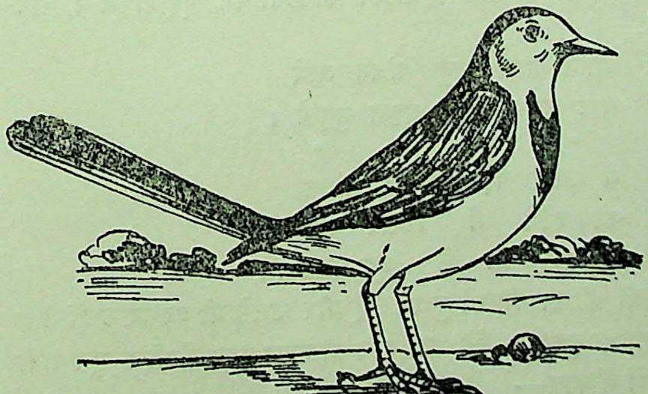

वर्षा काल का अन्त हुआ, आकाश के काले-काले मेघ, जो आषाढ़ से ही किसी सुदूर देश से आकर छाये हुए थे, कभी फट कर व्योम के किसी कोने में जा छिपते थे, कभी लौट कर सारे व्योम-मंडल पर छा जाते थे तथा गरज-गरज कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना बरसते थे कि जल-थल में कोई अन्तर न रह जाता था, जल से भरे हुए अन्तरिक्ष में दिन-रात झूमते फिरते थे।

वे किसी और देश को चले गए; आकाश स्वच्छ, धोया-धोया-सा, अत्यन्त निर्मल, दीखने लगा, पथ-पगडंडियों का जल और कीच व्योम में अगस्त्य तारे के उगते ही ऐसा सूखा मानो उसने इन्हें सोख ही लिया हो। चारों ओर कास के रुपहले फूल खिल आये, सरोवर के तट पर वे ऐसे लगते हैं मानो वयोवृद्ध श्वेत-जटाधारी योगी-मुनि जल के किनारे ध्यानस्थ बैठे हों तथा सृष्टि-सम्बन्धी शाश्वत प्रश्नों का समाधान ढूंढ रहे हों—

तट पर चारों ओर सरोवर के हैं पुष्पित,
शत-सहस्र घन श्वेत कास अति भाव-मग्न-से,
लीन ध्यान में बैठे मानो वृद्ध तपस्वी,
सदियों के 'कोऽहं', 'कस्त्वं' का प्रश्न-भार ले।

आकाश में शरदेन्दु उग आया। जिस ओर देखिए, चन्द्र-ज्योत्स्ना दूध की भांति श्वेत और निर्मल बिखरी पड़ी है।

चन्द्रोदय होते ही जंगल के चकोर दल बांध-बांध कर शरदेन्दु की ओर ऐसे देख रहे हैं मानो वन के मुनिगण श्री रामचन्द्र को निहार रहे हों—

मुनि समूह मँह बैठे सन्मुख सबकी ओर,
सरद इन्दु तन चितवत मानहुं निकर चकोर।

देखते-देखते दशहरा आ गया। चारों और प्राकृतिक फूलों के, मालती और माधवी के, बन्दनवार टँग गये। और इस शुभ अवसर पर न जाने कहां से उतर आये, नीले, अति सुन्दर पर वाले पक्षी नीलकंठ, और जहां-तहां विचरने लगे। इनका दर्शन इस अवसर पर अतिशय शुभ माना गया है तथा इन्हें ही देखकर कविवर बिहारीलाल ने कहा था—

काल्हि दसहरा बीतिहै, धरि मूरख जिय लाज,
दुर्‌यौ फिरत कत द्रुमनि में नीलकंठ, बिनु काज!

और इनके साथ-साथ ही अगणित खंजन, कद में अति छोटे, गौरैया जैसे, देखने में अति सुन्दर, सुहावने, उत्तर दिशा से—शायद पहाड़ों से—आ कर छा गये; जहां देखिए, पूंछ को तेजी से हिलाते हुए, किसी प्रेम-गर्विता की चंचला आंखों की तरह, नदी और सरोवरों के तट पर, पगडंडियों पर, खेतों में, मकान की छतों पर, गृह-प्रांगण में, बाग-बगीचों में घूमने लगे—

जानि शरद ऋतु खंजन आये
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये।

* * * *

ये उतर पड़े शत-शत खंजन,
कोने-कोने में बिखर गये,
ये भव-भूतल के दृग-रंजन।

रमणी के सुन्दर नेत्रों की सी जिसमें सुन्दरता है और उससे भी बढ़कर उन्हीं जैसी चपलता, उसकी याद महात्मा सूरदास जैसे सन्तकवि को मरण-काल में भी न भूल पायी और उन्होंने दर्द-भरे शब्दों में कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ७७ सारस

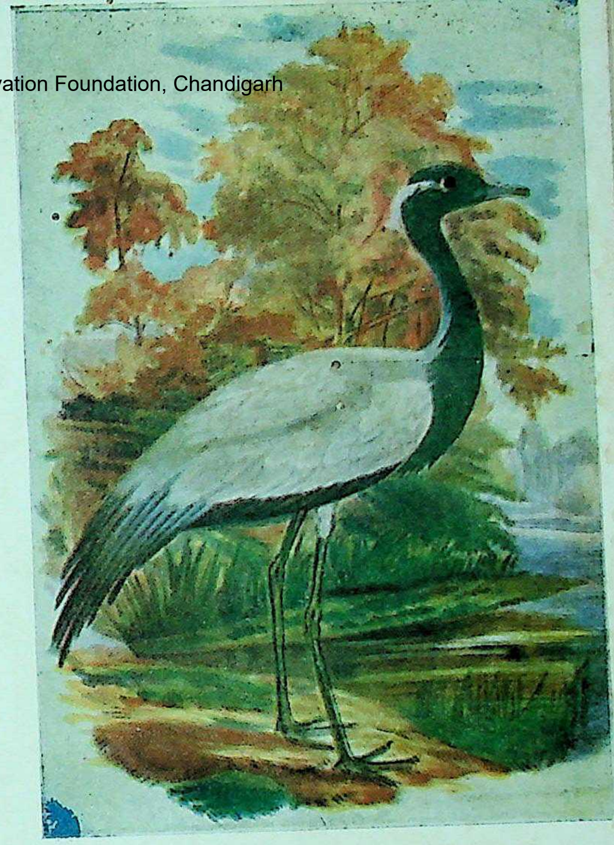

चित्र संख्या : ७८ करकरा (छोटा सारस)

चित्र संख्या : ७९ चीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ८०
मोर-चीर

चित्र संख्या : ८१
मोनल

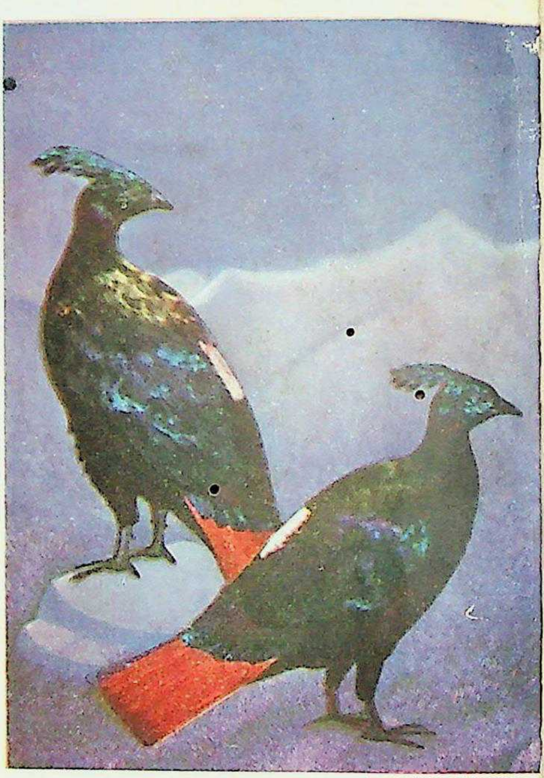

चित्र संख्या : ८२ वनमुर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खंजन नैन, रूप-रस माते,
उड़ि-उड़ि जात, निकट श्रवनन के, उलटि-पुलटि ताटंक फँदाते ।

साहित्य में इतना उच्च स्थान प्राप्त करने वाली यह छोटी-सी चिड़िया आखिर है कौन ? पाठकों के हृदय में यह प्रश्न आप-से-आप जाग्रत हो उठना स्वाभाविक है। तो सुनिये, खंजन—खंजरीट, खिड़लिच—के सम्बन्ध में दो चार बातें ।

इस देश में पायी जाने वाली चिड़ियों में एक छोटी-सी चिड़िया है जिसे धोबिन कहते हैं । यह यहां की बारहमासी चिड़ियों में नहीं है, शरद ऋतु के साथ-साथ आती है और वसन्त समाप्त होते-न-होते पहाड़ों की ओर चल देती है । वहीं, हिमालय की गोद में, पत्थरों के बीच, यह अपना घोंसला बनाती है, अंडे, जिनकी संख्या साधारणतः पांच होती है, देती है तथा सन्तान को पाल-पोस कर इस लायक कर देती है कि वह वर्षा समाप्त होते ही नीचे उतर आयें । इसकी लम्बाई ज्यादा से ज्यादा आठ इंच की होती है । इनमें कुछ ऐसी हैं जिनका रंग ऊपर नीला-हरा और भूरा होता है, नीचे पीला । दुम का मध्य का भाग काला, छोर सफेद होते हैं । गला भी सफेद ही होता है । वसन्त-काल में नर का गला मध्य भाग में बिल्कुल काला हो जाता है । भौंहें सफेद होती हैं । दूसरे प्रकार की धोबिन वह है जिसके नीचे का वर्ण सफेद होता है, गला कुछ काला होता है । बाकी पर भूरे होते हैं। दोनों ही प्रकार की धोबिन की पूंछ लम्बी होती है जिसे वह बारम्बार हिलाती रहती है । यही नहीं, गिरगिट की तरह अपना रंग भी बदलती रहती है—फर्क इतना है कि जहां गिरगिट दिन में कई बार रंग बदलता है, यह साल में कई बार । इसके पर गिर पड़ते हैं और फिर दूसरे, भिन्न रंग के उग आते हैं । यह इसकी विशेषता है । इसे किसी झील के किनारे रहना ज्यादा पसन्द है, जहां सर्द जमीन में पाये जाने वाले छोटे-छोटे कीड़ों को पकड़-पकड़ कर यह खाती रहती है ।

खंजन, धोबिन जाति की ही चिड़िया है और इसके मुख्यतः चार भेद हैं—सफेद, चितकबरी, भूरी और पीली । प्रकृति सबकी एक है । सबमें देखने में चितकबरी ज्यादा खूबसूरत होती है । नर के शरीर का ऊपरी हिस्सा राख के रंग का और नीचे का सफेद, सर के ऊपर का हिस्सा काला होता है, तथा छाती पर एक काला चन्द्राकार चित्ता रहता है । डैने काले होते हैं, जिन पर सफेद धारियां बनी होती हैं । किन्तु उनके सिरे पर सफेदी रहती है । गर्मी आते ही नर का सारा वक्ष-स्थल चमकीला काला हो जाता है, मादा का धूमिल । आंख की पुतलियां भूरी तथा चोंच और पांव काले होते हैं । खंजन उन पक्षियों में है जो देखने में आंखों को बड़े प्यारे लगते हैं ।

खंजन साल में कई बार अपना रंग बदलते रहते हैं—कभी काला सफेद होता है, कभी सफेद काला । इनकी चंचलता जगविख्यात है और साहित्य में इसकी जगह-जगह पर चर्चा है ।

घने जंगलों में खंजन शायद ही नजर आयें । ये अधिकतर जल के किनारे अथवा खेत-खलिहान में, पगडंडियों पर या मानव-आवास के बीच, गोशाला, घर के आंगन आदि स्थानों में अपनी दुम हिलाते हुए घूमते रहते हैं । कहते हैं, हस्त नक्षत्र में खंजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का इस देश में प्रथम आगमन होता है । प्रथम दर्शन के सम्बन्ध में जनश्रुति एवं ज्योतिष का विचार है कि यदि भांडार के कोने में, हस्त नक्षत्र में, पहली बार वह दृष्टिगोचर हो तो देखने वाले को उस वर्ष धन प्राप्त होता है; इसी तरह यदि ईशान कोण में देखे तो वह मृत्यु को प्राप्त होता है । इसी तरह के विचार अन्य कोणों तथा दिशाओं के सम्बन्ध में भी हैं । हाथी के मस्तक अथवा गोबर के किसी टीले पर इसे देखना सबसे शुभ माना गया है, सांप के मस्तक पर भी । हस्त नक्षत्र के बीत जाने पर खंजन दर्शन का कोई फल नहीं होता ।

ग्रीष्म काल के आते ही खंजन इस देश से चल देते हैं । गर्मी और बरसात ये पहाड़ों पर या हिमालय की घाटियों में बिताते हैं, वहीं अंडे देते हैं और जब शरद् ऋतु का पुनः आगमन होता है, भूमि पारिजात के पुष्पों से आच्छन्न हो जाती है, तो इस देश में ये पुनः आ पहुँचते हैं । अक्सर ऐसा हुआ है कि किसी दिन प्रातः काल सैकड़ों खंजन एकाएक चारों ओर घूमते हुए नजर आने लगे हैं जब कि पिछले दिन कहीं एक भी दृष्टिगोचर नहीं थे । इनका सहसा रातभर में इस तरह आकर चारों ओर छा जाना भी एक रहस्य की बात है ।

शरद् काल में खंजरीट का प्रथम दर्शन हमारे हृदय में एक अद्भुत आह्लाद पैदा करता है और हम उत्सुकतापूर्वक गुलाब के फूलों से लदे उस मौसम की प्रतीक्षा करने लगते हैं, जब भ्रमरावलियां गुनगुनाती हुई पद्म-पुष्पों से पराग चुरा-चुरा कर अपने घर भरने लगती हैं, कुलांगनाएं एक दूसरी से कहती हैं—

(१)

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मनभाये ।
फैला उनके तन का आतप मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहां, ये हंस यहां उड़ छाये ।
कर के ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बन्धूक सुहाये ।

(मैथिलीशरण गुप्त)

(२)

चुरा-चुरा कर मेरी ही आंखों को खंजन !
बनी बिहगि, तू भव-भूतल के हित दृग-रंजन ।
मेरे नेत्र, लौट आ मेरे पास आज तू,
पलक सेज पर आ कर मेरी, चिर-बिराज तू ।
मेरे नेत्र, लौट आ मेरे पास आज तू ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीलकंठ

समुद्र-मंथन से निकले हुए विष को भगवान शंकर ने अपने गले में रख लिया, अतएव वे नीलकंठ कहलाए। परन्तु नीलकंठ पक्षी ने बगैर विष-पान के ही नीलकंठ संज्ञा प्राप्त कर ली। यही नहीं, वह महादेव की कृपा का भाजन भी बन गया। तभी तो दशहरे के अवसर पर उसका दर्शन अत्यन्त शुभ माना गया। लोग दशहरे के दिन प्रातःकाल से ही नीलकंठ के दर्शन के लिए घर के आस-पास अपनी नज़र दौड़ाने लगते हैं—

नीलकंठ कौं दरस को, दुर्यौ फिरत चहुं ओर,
दीठि दसहरा दिवस कौ, पुन्य परब लखि भोर।

नीलकंठ का दर्शन पाकर लोग अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। कारण लोक-कहावतों के स्रष्टा डाक के शब्दों में सुनिये—

नीलकंठ कर दर्शन होए,
मन वांछित फल पावै सोए।

फारसी के भी किसी शायर ने कहा है—

दशहरे रोज़ फ़र्रुख़ अंजुमन दये अस्त,
पये लंका सवारी रामचन्द्र अस्त,
बदीदे नीलकंठी हिन्दुआरा,
तमाशे बाग बोस्तां दिलपसन्द अस्त।

इसके दर्शन से हमारे सौभाग्य में वृद्धि हो या न हो, पर इसमें शक नहीं कि देखने में यह एक अत्यन्त सुन्दर पक्षी है। जब यह अपने दोनों पंखों को फैला कर उड़ता है, तो इसके चमकीले पंखों से अनोखा सौन्दर्य टपक पड़ता है। ये कई रंग के होते हैं पर इनमें नीले रंग की प्रधानता होती है। स्वर्ग के पक्षी की तरह इसे भी अपनी सुन्दरता के कारण बहुधा प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। कवि बायरन ने इटली को सम्बोधित करके कहा था—

इटली, इटली, हाय मिला वर,
सांघातिक यह सुन्दरता का।

जैसे इटली को अपने अनुपम सौन्दर्य के कारण बारम्बार बाहरी आक्रमणकारियों की चोट बर्दाश्त करनी पड़ी थी—उसकी सुन्दरता ने उन्हें उसे जीतने के लिए प्रोत्साहित किया था, वैसे ही "न्यूगिनी के स्वर्ग पक्षी' तथा हमारे देश के नीलकंठ भी अपने सुन्दर परों के लिए तीर अथवा बन्दूक के शिकार होते आये हैं। इनके परों को लोग—मुख्यतः अंग्रेज आदि—अपने बन्धु-बान्धवों को उपहार के रूप में भेजते हैं।

देखने में जो सुन्दर होता है उसका दिल या प्रकृति भी सुन्दर हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। कम से कम नीलकंठ के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि देखने में यह जैसा सुन्दर है, स्वभाव में नहीं। इसकी बोली कर्कश है और स्वभाव झगड़ालू। जब देखिए, कटे हुए अनाज के खेतों में ये एक-दूसरे से लड़ रहे हैं, कुश्ती मची हुई है, जोरों में चंचु-प्रहार चल रहे हैं, शोर मचा हुआ है। ये इनके रोजमर्रा के किस्से हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मादा को देखकर यह तरह-तरह के करिश्मे दिखाता है, उड़कर सीधे आसमान की ओर चला जाता है, फिर डैने बन्द कर नीचे की ओर ऐसे गिरता है मानो प्राणहीन हो गया हो, पर जमीन तक पहुंचते-न-पहुंचते पुनः उड़कर खड़ा होता है । ऐसी अनेक लीलाएं दिखा-दिखा कर वह मादा के मन को वश में कर लेता है, जोड़ा बांधता है, और तब दोनों मिलकर गृह-निर्माण—घोंसला बनाने में लग जाते हैं । इसके अंडा देने का समय मार्च से जुलाई तक है । वैसे नाम तो इसका नीलकंठ है पर इसका कंठ नीला नहीं होता, पंख नीले होते हैं जो खुलने पर अत्यन्त सुन्दर लगते हैं । इसके सर के बीचों-बीच एक आसमानी चित्ती होती है और वहां से पीठ तक का रंग भूरा होता है । तत्पश्चात् हरी और आसमानी लकीरें । डैने और दुम पर भी शुरू में आसमानी, फिर हल्का नीला और अन्त में गहरा नीला रंग होता है । कई रंगों में रंगा हुआ इसका शरीर देखने में बहुत ही सुन्दर लगता है । नर और मादा की रूप-रेखा में कोई अन्तर नहीं है ।

फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़े, टिड्डी, झींगुर, गुबरैला, चुहिया, मेढक, सांप आदि—इसके आहार हैं । इनकी खोज में यह चुपचाप बैठा हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो मिट्टी की मूर्ति हो, पर शिकार को देखते ही बिजली की तरह उस पर झपट्टा मारता है और उसे पकड़ कर खा जाता है । सूर्यास्त के पूर्व बहुधा टेलीग्राफ के तार पर ये ध्यानमुद्रा में बैठे हुए नजर आते हैं ।

नीलकंठ ऐसी जगहों पर बैठना अधिक पसन्द करता है जहां से वह चारों ओर बगैर किसी रुकावट के अपनी नजर दौड़ा सके, उड़ कर कीड़ों को पकड़ सके (चित्र संख्या : ६४) । कहावत मशहूर है—

नीलकंठ कीरा भखै करै बधिक को काम ।

कुररी या टिटहरी

गोस्वामी तुलसीदास ने "विलपत ज्यों कुररी की नाईं" लिख कर जन-समाज की इस धारणा को, कि कुररियां निशा-काल में क्रन्दन करती हैं, और भी पुष्ट कर दिया । श्री मुकुटधर पांडेय की कल्पना शायद तुलसीदास की इस पंक्ति से ही एक दिन सहसा सजग हो उठी थी और आज से प्रायः ३०-३५ वर्ष पहले उन्होंने दिन भर सुदूर खेतों में दाना चुगने के बाद महानदी के गर्भ में विश्राम करने वाली कुररी के प्रति ये सुन्दर पंक्तियां लिखी थीं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बता मुझे ऐ विहग[1] विदेशी अपने जी की बात
पिछड़ा था तू कहां, आ रहा जो कर इतनी रात ?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द
अन्य विहग भी निज खोलों में सोते हैं सानन्द ।
इस नीरव घटिका में उड़ता है तू चिन्तित-गात,
पिछड़ा था तू कहाँ, हुई क्यों तुझको इतनी रात ?

* * * *

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप,
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या है, किसका परिताप ?
किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग ?
जला रही है तुझको अथवा प्रिय वियोग की आग ?

महाकवि कालिदास ने भी, रघुवंश में, कुररी-क्रन्दन का उल्लेख किया है, यथा—

तथेति तस्याः प्रतिगृह्यवाचं
रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते,
सा मुक्त कंठं व्यसनातिभारा-
च्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः ।

पर प्रश्न यह है कि आखिर यह कुररी है कौन-सा पक्षी ? श्री पारसनाथ सिंह ने "पक्षी-परिचय" नामक अपनी पुस्तक में टिटहरी (चित्र संख्या ६५) को कुररी माना है । किन्तु कुंअर सुरेशसिंह के विचार में यह टिटहरी से भिन्न एक पक्षी है । उनके ख्याल से यह एक स्वतन्त्र पक्षी है जिसे अंग्रेजी में 'टर्न' नाम से पुकारते हैं । टर्न की अनेक किस्में हैं जो झील और नदी के तटों पर बैठी रहती हैं, मछली का आभास पाकर उड़ती हैं और झपट्टा मार कर उसे पकड़ लेती हैं । मुख्य किस्में दो हैं—एक बड़ी और दूसरी छोटी । बड़ी का कद प्रायः १६ इंच का होता है, इसके सारे शरीर का रंग हल्का स्लेटी होता है, नीचे का हिस्सा अत्यधिक हल्का । ग्रीष्म ऋतु में सर का कुछ हिस्सा गाढ़ा काला हो जाता है, मानो कोई मखमली टोपी हो । चोंच लम्बी होती है तथा पैर के अंगूठे बतखों जैसे जुड़े होते हैं । यही कारण है कि यह पेड़ों पर न बैठ कर जमीन पर ही बैठी रहती है । हां, पर बतख जैसे पैर पाकर भी यह पानी में तैरना नहीं जानती । इसकी दुम और डैने काफी लम्बे होते हैं ।

छोटी टर्न के नीचे का तमाम हिस्सा भी काला होता है । हां, प्रसव के बाद कुछ दिनों के लिए इसके काले रंग में गाढ़ी सफेदी आ जाती है ।

अंडे नदी के किनारे या किसी निर्जन टापू पर जमीन में देती है तथा बैठी हुई उनकी निगरानी करती रहती है ।

ये झुंड-की-झुंड एक साथ रहती हैं । शाम के वक्त अक्सर पानी के ऊपर सटी हुई ये मछली की ताक में उड़ती रहती हैं । संसार के अधिकांश देशों में इनकी कोई-न-कोई

१. कुररी अधिकतर जाड़े के दिनों में ही इस देश में देखी जाती है, बाकी दिनों में नहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किस्म पाई जाती है । इन्हीं में एक सामुद्रिक कुररी भी है जो समुद्र के तट पर ही विशेषतः नजर आती है । कुछ किस्में ऐसी हैं जो गर्मियों में ठंडे देशों को चल देती हैं, कुछ, जो संख्या में बहुत है, गर्मियों में भी उष्ण प्रदेशों में ही रह कर अंडे देती हैं ।

बम्बई के प्रायः १७०० मील दक्षिण सेसिल द्वीप समूह (Seychelles Islands) में हज़ारों की तादाद में कई किस्म की कुररियाँ पायी जाती हैं—काली, सफेद, गुलाबी आदि । इन में एक ऐसी जाति भी है जिस के सर पर तुर्रा होता है । यह भारत के भी कई समुद्र-तटवर्ती भागों में पायी जाती है ।

जैसा कि पहले कह आये हैं, ये नदी, झील या समुद्र के निर्जन सिकतामय तटों पर अंडे देती हैं। एक साथ झुंड-के-झुंड अंडे देती तथा उन्हें बैठी सेती रहती हैं । संयोगवश वहां यदि आप कभी पहुंच जाएं तो देखेंगे कि आपकी उपस्थिति ने एक तहलका मचा डाला है। अंडे सेती हुई ये चिड़ियां सहसा उड़ पड़ेंगी । जल के ऊपर उड़ते हुए पक्षियों का झुंड भी फौरन वहां आ उपस्थित होगा और फिर तो वे सभी मिलकर आपके सर के ऊपर मंडराना तथा एक विचित्र प्रकार का क्रन्दन करना शुरू कर देंगी और थोड़ी देर में आप वहां से स्वयं ही चल पड़ेंगे। "विलपत ज्यों कुररी की नाईं" से अभिप्राय क्या इसी क्रन्दन से है ?

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध, अध्याय ७, में अवधूतोपाख्यान की चर्चा है । महाराज यदु से अवधूत कहते हैं—

हे राजन्। मेरे अनेक गुरु हैं जिन्हें मैंने अपनी बुद्धि से स्वीकार किया है……… उनके नाम सुनो—

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, पतंग, मधुमक्खी, हाथी, मधुहारी, हरिण, मीन, पिंगलावेश्या, कुरर पक्षी……

और फिर आगे चल कर यह बताते हैं कि उन्होंने कुरर पक्षी (स्त्री०—कुररी) से क्या सीखा—

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्
अनन्त सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ।
सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ।

—अर्थात् (कुरर पक्षी से मैंने यह सीखा है कि) मनुष्यों को जो-जो चीजें अतिशय प्रिय हैं उनका संचय करना ही उनके दुःख का कारण है । ऐसा जानकर अकिंचन भाव से रहने वाला (असंग्रही) असीम सुख का भागी होता है। एक कुरर पक्षी को, जो चोंच म मांस लिए हुए था, कुछ अन्य बलवान पक्षियों ने देखा। इन पक्षियों के पास मांस नहीं था। उन्होंने कुरर को बहुत मारा, तब उसने उस मांस को त्याग दिया और शान्ति प्राप्त की ।

टीकाकारों ने यहां कुरर पक्षी से चील की श्रेणी के एक पक्षी का आशय माना है, चूंकि चोंच में मांस लेकर उड़ने वाला, मांस का शौकीन पक्षी चील ही है जिसके सम्बन्ध में गालिब की यह उक्ति मशहूर है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिरमो-दाम अपने पास कहां ?
चील के घोंसले में मांस कहां ?

कुररी को मछली का शौक तो जरूर है, पर मांस का शौक है कि नहीं, यह हमारे वे पाठक ही बता सकेंगे जिन्हें कुररियों का सान्निध्य प्राप्त हो। महाकवि वाल्मीकि ने रामायण में इसका जिक्र इस प्रकार किया है—

द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशनाः
भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौंचाश्च कुररैः सह।

तो क्या कुररी चील की जाति का ही कोई पक्षी है ? स्वभावतः उपर्युक्त पंक्तियां पढ़ कर यह प्रश्न हमारे मस्तिष्क में जाग्रत होता है।

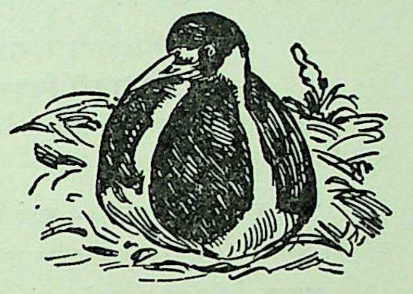

कुछ लोगों का कहना है कि कुररी और कोई पक्षी नहीं टिटहरी ही है, जो तमाम रात करुण-क्रन्दन करती रहती है। कभी-कभी तो इसके विलाप से हमारी नींद तक हराम हो जाती है। इसकी बोली में रोनेपन का इतना आभास है कि लोग इसका बोलना अशुभ तक मानने लगे हैं। टिटहरी भी पानी के किनारे रहने वाली चिड़िया है, जिसका कद बारह-तेरह इंच से अधिक नहीं होता। इसके सर, गर्दन और सीना काले होते हैं, नीचे का हिस्सा सफेद। गर्दन पर दोनों ओर दो सफेद धारियां होती हैं, जो ऊपर आंखों तक चली जाती हैं। पूंछ और डैनों में भी सफेद धारियां रहती हैं। इसकी चोंच लाल, आंख की पुतली कत्थई और पैर पीले होते हैं। पीठ और डैने लाल और हरेपन की चमक लिए हुए होते हैं। बदन दुबला होता है और इसी लिए कभी-कभी अत्यन्त क्षीण शरीर वालों की उपमा टिटहरी से दी जाती है। पर इसका प्रयोग बुरे भाव में होता है, अच्छे में नहीं।

टिटहरियों में ही एक छोटी जाति की, तेज उड़ने वाली, टिटहरी होती है जिसके सर पर एक चोटी होती है। एक तीसरी जाति भी है जिसकी चोंच लाल नहीं, पीले रंग की होती है।

टिटहरी की आदतें बहुत कुछ पूर्वोक्त टर्न पक्षी से मिलती हैं—जल के किनारे खुली रेती में अंडे देना, किसी के आने पर उड़ कर शोर मचाना आदि-आदि। मनष्य को देखकर कभी-कभी यह उसके आगे-आगे दौड़ने लगती है; निकटस्थ होने पर आवाज करती हुई उड़ पड़ती है। पर कुछ ही क्षणों में पुनः पूर्ववत् जमीन पर दौड़ना शुरू कर देती है।

शिकारियों के लिए यह एक बड़ा विघ्नकारक पक्षी है। जहां किसी शिकारी को किसी टिटहरी ने देखा झट शोर मचाना शुरू कर देती है। यही नहीं, उड़कर शिकार—शेर, चीते, भालू, घड़ियाल आदि—के पास फौरन पहुंच जाती है और जोर से चिल्लाना आरम्भ कर देती है, जिससे वे सतर्क हो जाते हैं, समझ जाते हैं कि कोई शिकारी निकटस्थ है, और आत्मरक्षा में संलग्न हो जाते हैं। शिकारी इसीलिए टिटहरी को बड़ी नफरत की निगाह से देखते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कटे हुए खेत तथा वे स्थान जहां से जल हट गया हो, पर नमी मौजूद हो, इसे अधिक पसन्द हैं । छोटे कीड़े-मकोड़े इसके आहार हैं । रात में शायद इसे नींद नहीं आती क्योंकि सारी रात यह बोलती रहती है। कौन जाने किसकी विरह-व्यथा में !

टिटहरी सोते समय अपने पांवों को ऊपर की ओर कर के सोती है । कहते हैं, एक बार किसी ने उससे इसका कारण पूछा तो उसने बड़े गर्व के साथ उत्तर दिया कि मूर्ख! तुझे पता नहीं आकाश गिरने वाला है! उसे मेरे सिवाय कौन दूसरा थाम सकेगा? उसे रोकने को ही तो मैं अपने पांव ऊपर की ओर रखती हूं । ऊपर की ओर पांव करके सोने के कारण ही संस्कृत में इसे 'उत्पादशयन' या 'उत्तानपाद' भी कहते हैं— 'टिट्टिभस्तु कटूक्काण उत्पादशयनोहन्तुकः ।' पर प्रश्न यह है कि क्या टिट्टिभ (टिटहरी) रात में सोते भी हैं। "राजनिघण्टु" कहता है—

टिट्टिभीपीतपादश्च सदालुता नृजागरः
निशाचरी चित्रपक्षी जलशायी सुचेतना ।

यदि यह निशाचरी है, तथा 'सुचेतना'—सदा जाग्रत और सतर्क, तो फिर सोती कब है? कैप्टेन लेगी लिखते हैं—

"यह रात में बड़ी सतर्क—रहने वाली चिड़िया है, अपनी आवाज से सोयी हुई वन की प्रकृति को जगा कर भयभीत कर देने वाली है।"

सम्भव है कि यह नींद में न होकर पांव ऊपर करके विश्राम-मात्र कर लेती हो या वह इसकी श्वान-निद्रा हो। पक्षीतत्वविद् 'ईहा' महोदय का कथन है कि किसी ने आज तक टिटहरी को निद्रित अवस्था में नहीं पाया ।

पूर्वोक्त श्लोक में टिट्टिभ की स्वभावगत प्रवृत्तियों का उल्लेख है—'सदालुता' नर और मादा का पृथक-पृथक विचरण करना जाहिर करता है; नृजागर एवं निशाचरी है; चित्रपक्षी है: शरीर पर इसके चित्रांकण जैसा वर्ण-विन्यास है; जलशायी है: जल से घिरी जगहों, टापू आदि, इसका निवास स्थल है; तथा 'सचेतना'—हमेशा सतर्क रहने वाला पक्षी है: कभी गाफिल नहीं होता। दिन हो या रात, आगन्तुक को देखते ही टिट्टिट-टिट्टिट करता हुआ यह भाग खड़ा होता है। पंचतन्त्र में टिट्टिभ (टिटहरी) के सम्बन्ध में एक रोचक कथा है, जो इस प्रकार है:

किसी समुद्र के तट पर एक टिट्टिभ-दम्पति रहा करता था। प्रसवकाल के निकट होने पर टिट्टिभी ने एक दिन टिट्टिभ से कहा—अब मेरा प्रसवकाल समीप है, अतएव एक सुरक्षित स्थान ढूंढो जहां मैं अंडे दे सकूं। टिट्टिभ बोला—समुद्र तट से बढ़िया कौन-सा स्थान हो सकता है, यहीं अंडे दो। पर टिट्टिभी को यह बात पसन्द न आयी, बोली—समुद्र में ज्वार-भाटा आता रहता है, मेरे अंडों को वहा ले जाएगा। टिट्टिभ ने अहंकार भरे शब्दों में कहा—समुद्र की क्या मजाल कि वह मेरे अंडों का अपहरण करे।

समुद्र के कानों में उसके ये अहंकार-भरे शब्द आए। उसने सोचा, ठीक ही कहा है, कि यह संसार अहंकारियों से भरा हुआ है—

उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भंगभयाद्दिवः
स्वचित्तकल्पितो गर्वः कस्य नात्रापि विध्यते ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

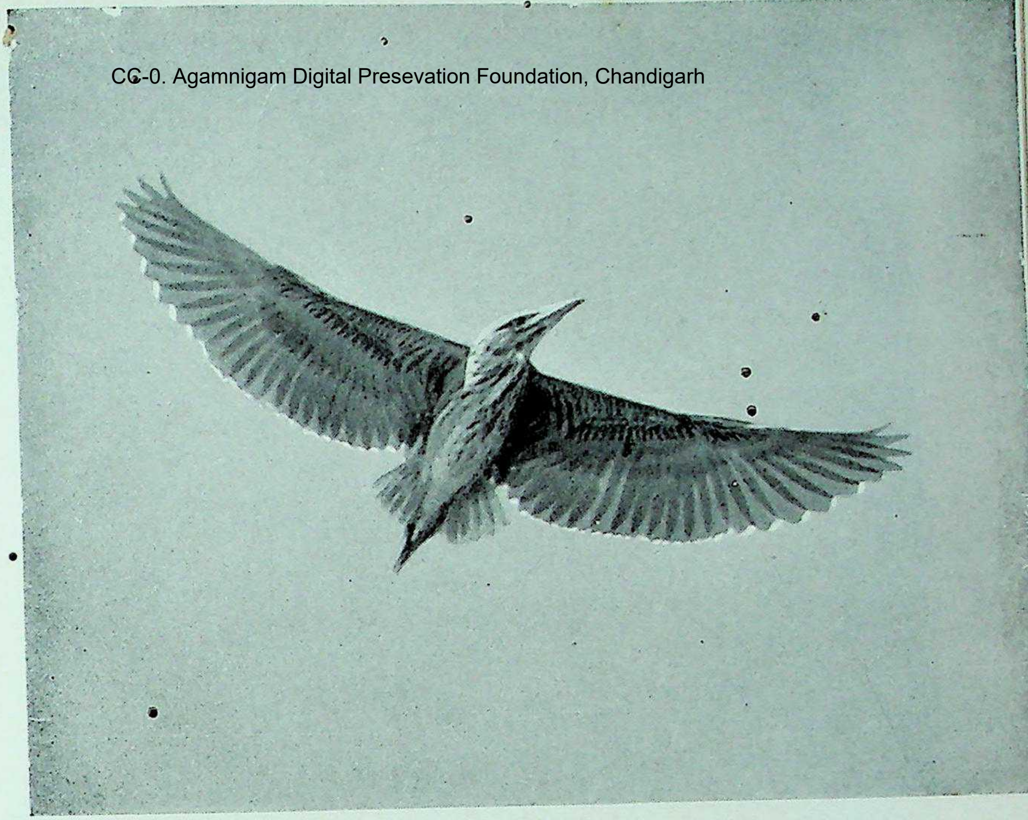

बगुला उड़ते हुए

चित्र संख्या : ८३

निशा बगुलों की जोड़ी

चित्र संख्या : ८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ८५ बगुले का बच्चा, आकाश में

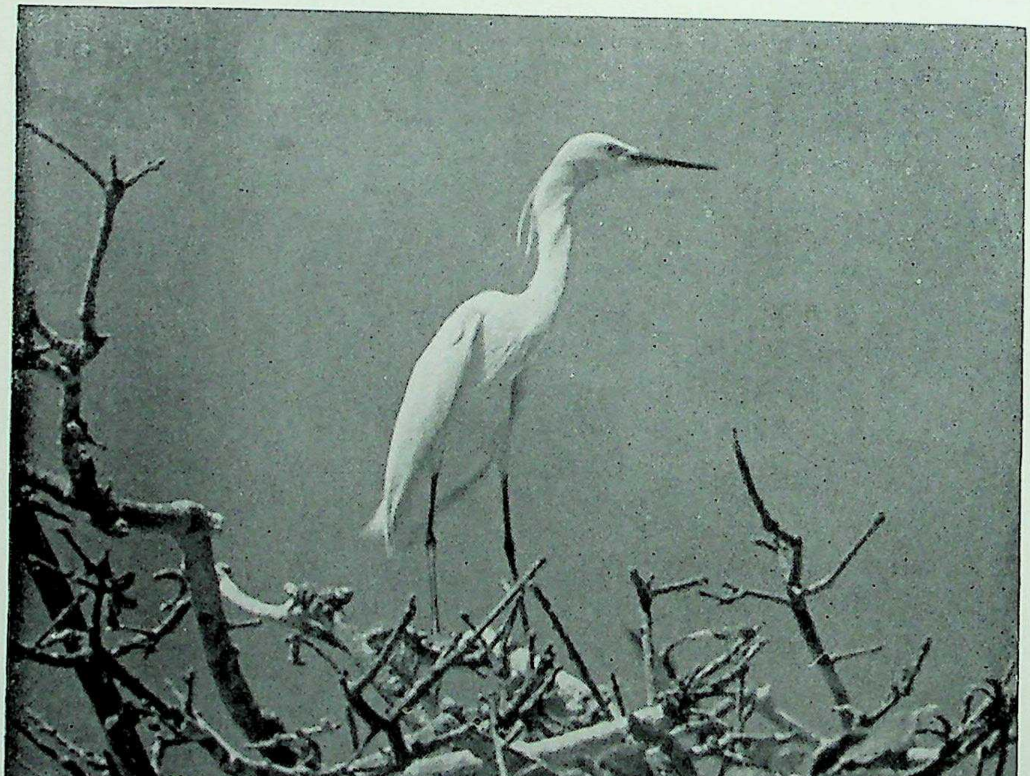

चित्र संख्या : ८६ श्वेत बगुला, शिकार की टोह में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—आकाश के पतन की आशंका से टिट्टिभ अपने पांवों को ऊपर करके सोता है। इस संसार में किस मनुष्य को अपने चित्त से कल्पना किया हुआ अहंकार नहीं है ?

अन्त में टिट्टिभ की बात ही रही तथा टिट्टिभी ने समुद्र-तट पर अंडे दिए। समुद्र उसके अहंकार को बर्दाश्त न कर सका, पूर्णिमा के दिन सारे अंडों को बहा ले गया।

टिट्टिभी दुखी होकर सिसकियां भरने लगी, फिर पति पर क्रोधित हो कर बरस पड़ी। टिट्टिभ ने कोई दूसरा उपाय न देखकर पक्षी-कुल-सम्राट गरुड़ के पास जाकर अपनी दुःख-गाथा कह सुनाई। गरुड़ ने भगवान विष्णु से इसकी फरियाद की। गरुड़ उनका प्रिय वाहन ठहरा, वह किस तरह उसकी अवहेलना करें। सो अन्त में समुद्र को भर्त्सनाएं सुननी पड़ीं। यही नहीं, टिट्टिभी के अपहृत अंडे भी उसे लौटाने पड़े। उसका मान-मर्दन हुआ। वह भी एक छोटे-से पक्षी के द्वारा—

पश्य, टिट्टिभमात्रेण समुद्रो व्याकुलीकृतः।

एक पक्षी के कारण महासमुद्र तक को अपमान का घूंट पीना पड़ा। पर जैसा कि किसी कवि ने कहा है, सब में सुहागिन वही है जिसे प्रियतम का प्यार प्राप्त है। गरुड़ न केवल भगवान का वाहन है, वह उनकी असीम कृपा का भाजन भी है। फिर ऐसा हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

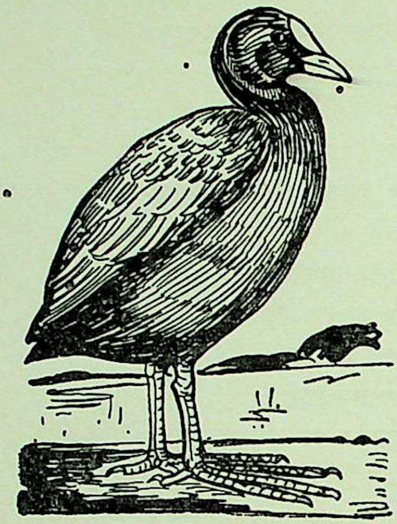

जल-तट के पक्षी

"शीतकाल के पक्षी"—शीर्षक लेख में हमने उन जल-पक्षियों की चर्चा की है जो जाड़ों में दल-के-दल पहाड़ों की ओर से यहां, इस देश की विभिन्न झीलों में, उतरते हैं और हजारों, लाखों की संख्या में छा जाते हैं। फिर वसंत के आते-आते पहाड़ों को लौट जाते हैं। पर इनके साथ-साथ इन झीलों में कुछ ऐसे जल-पक्षी भी निवास करते हैं जो इनकी तरह "जालपाद" होकर भी इनसे प्रकृति में भी भिन्न हैं, और रूप-रेखा में भी। ये सभी नल-कुक्कुट वंश के पक्षी हैं जिनका उल्लेख महाभारत के वन पर्व में आया है—कादण्डैश्चक्रवाकैश्चकुरैर्जलकुक्कुटैः। सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थों में भी जल-पक्षियों में जल-कुक्कुट का उल्लेख आया है तथा ग्रन्थकर्ता ने इन्हें जालपाद, जालाकार पांव वाले कहा है, जैसा कि जल में तैरने वाले सभी पक्षियों के पांव हुआ करते हैं। इनकी एक नहीं, अनेक किस्में हैं, रंग-रूप में भिन्नता है, फिर भी प्रकृति-सादृश्य के कारण ये सभी जल-मुर्ग की श्रेणी में ही रखे गये हैं।

अन्य जल पक्षियों में और इनमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि ये जलचारी भी हैं, भू-चारी भी। जल-थल दोनों ही इनके समान रूप से निवास-स्थल हैं। झील-तालाब आदि जलाशयों के इर्द-गिर्द की झाड़ियों में, सरपत आदि के झुरमुट में, ये एकान्त जीवन बिताते हैं। आस-पास के धान के खेतों में विचरते हैं, कभी समीप की वृक्ष-शाखाओं पर बैठकर वायु-पान करते हैं। कभी जल में तैरते हैं और किसी आगन्तुक को देखते ही जल में ऐसी डुबकी लगाते हैं कि फिर इनके अस्तित्व का पता लगना मुश्किल हो जाता है। हां, पानी से ये जब-तब सर निकाल कर देख लेते हैं कि आगन्तुक है या चला गया; तब फिर ये पानी में डुबकी लगाते हैं।

जल के बाहर घास में या झाड़ियों में, ये इस प्रकार छिपे रहते हैं कि हमें तब तक इनका आभास नहीं मिल पाता, जब तक कि ये हमारे पांव की आहट पा कर सहसा तेजी से झुरमुट से निकल कर जलाशय की ओर दौड़ नहीं पड़ते, जल में कूद नहीं पड़ते। इनमें तेजी ऐसी होती है कि क्षणभर में ही ये झाड़ी से निकलते हुए दिखाई देकर न जाने किस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर चले जाते हैं। फिर पल मात्र म वृक्ष-शाखा पर बैठे हुए नजर आकर दूसरे क्षण जलाशय के तट पर दीख पड़ते हैं—और तीसरे क्षण जल के भीतर। ऐसी फुर्ती शायद ही किसी और जाति के पक्षी में हो।

इनकी रूप-रेखा मुर्गे की-सी न होते हुए भी इनका नाम जल-कुक्कुट क्यों पड़ा, यह प्रश्न स्वभावतः हमारे मन में आता है। अंग्रेजी में भी इन्हें इडियन मूरहेन (भारतवर्षीय जल-मुर्गी), वाटर कॉक (जलमुर्ग), पर्पल मूरहेन (बैंगनी रंग की जल-मुर्गी) आदि नामों से पुकारते हैं।

दोनों के स्वभाव में सादृश्य ही इसका कारण प्रतीत होता है। मुर्गे की तरह ही ये भी अपनी दुम ऊंची करके रखते हैं, तेज़ी से इधर-उधर घूमते हैं तथा आसानी से उड़ने में असमर्थ हैं, पांव के नाखून से पृथ्वी कुरेद कर खाने की चीज़ों की खोज करते हैं तथा पंजों की चोट से अपने दुश्मन को परास्त करने की चेष्टा करते हैं। इनके नवजात शिशु भी मुर्ग की भांति ही जन्म-धारण करते ही चारों ओर दौड़ना शुरू कर देते हैं—इन सारी बातों में मुर्ग-जाति के पक्षियों से इनकी गहरी समानता है।

चपलता की दृष्टि से इनमें सबसे श्रेष्ठ वह है जिसका पेट सफेद, शरीर का बाकी हिस्सा गाढ़ा खैरा होता है, जो दूर से देखने में काला-सा लगता है। शैशव-काल में यह धूसर वर्ण का सा लगता है। नर और मादा में कोई भेद नहीं है। संस्कृत में इसके कई नाम हैं—अत्यूह, कालकंठ, मासंग, सितिकंठ, कटाचुर आदि। इसके तीव्र कंठस्वर के सम्बन्ध में संस्कृत का एक श्लोक है—

प्रावृट्काले सुखीभूत्वा कोवा कुत्र न गच्छति।
इति वदति दात्यूह : कोवा कोवा क्ववा क्ववा।

कैप्टेन लेगी (१८८०) ने लिखा है—

"वैसे तो मेरे लिए अपने यूरोपीय पाठकों को शब्दों द्वारा इन पक्षियों की आवाज को ठीक-ठीक समझाना बहुत मुश्किल है, परन्तु वे शुरू में कुछ धीरे-धीरे कौर-कौर का शब्द करते हैं और फिर जोर-जोर से और कुछ आवाज को तोड़ते हुए कौर वक-वक कौर वक-वक करते हैं। फिर ये शब्द कूर-कूर-कूर की गहरी आवाज में परिवर्तित हो जाते हैं जो धीरे-धीरे खत्म होते दिखायी देते हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि बहुत अधिक थकावट के कारण पक्षी का गला अचानक बैठ-सा गया है।"

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ८, अध्याय २, का एक श्लोक है—

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि,
जलकुक्कुट कोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम्।

जल-कुक्कुट जाति के यहां दो पक्षियों का उल्लेख है, कोयष्टि तथा दात्यूह। प्रस्तुत पक्षी ही दात्यूह है जिसे जल-कौआ भी कहते हैं। बरसात में यह इतना शोर मचाता है कि आदमी इसकी आवाज से ऊब जाता है।

कहीं-कहीं इसे 'बंस मुर्गी' भी कहते हैं, क्योंकि बंसवारियों में रहना इसे बहुत पसंद है। कोयष्टि को अंग्रेजी में जल-मुर्ग के नाम से पुकारते हैं। इसके शरीर का रंग धूसर है जिस पर गाढ़ी रेखाएं बनी होती हैं, जनन-ऋतु के आते ही नर के रंग में फर्क आ जाता है—धूसर मिश्रित कृष्णाभ में बदल जाता है। यही नहीं, सर पर इसके एक शृंग-सा उग जाता है जो जनन-ऋतु के साथ-साथ ही फिर गायब भी हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

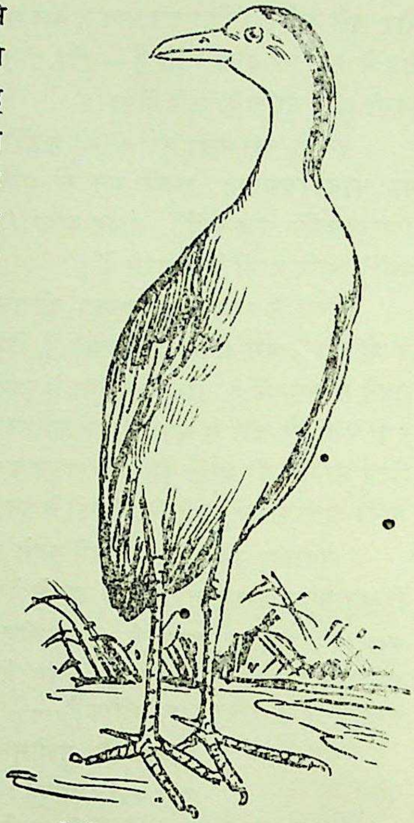

बंगाल में इसे 'कोड़ा पाखी' के नाम से पुकारते हैं। राज्य के पूर्वीय हिस्से में इसे मुर्गे की तरह पालते हैं, मुर्गे की ही तरह यह खूब लड़ता भी है। घास-पात आदि से घिरी जगहों में ही यह रहता है। साधारणतः ऐसी जगहों पर, जहां मनुष्य का पहुंचना कठिन रहता है, वर्षाकाल में यह बहुधा अपने घोंसले में ऊँचे बोल कर में अपनी उपस्थिति का परिचय देता रहता है। अपने आहार की तलाश में यह अधिकतर दिन में नहीं, शाम को ही निकलता है। जल-भरे धान के खेतों में यह ऐसे समय अक्सर नज़र आएगा।

कारण्डव भी, जिसका उल्लेख उपर्युक्त श्लोक में है, एक ऐसा पक्षी है जो जल में बतखों के साथ मिला रहता है, साथ ही जलाशय के निकटवर्ती घास-फूस तथा झाड़ियों में भी विचरण करता है। इसके सारे बदन का रंग स्लेटी काला होता है तथा डैनों में किनारे पर सफेदी होती है। आंखें लाल होती हैं, माथे पर सफेद-सा टीका रहता है, जिसकी वजह से कुछ लोग इसे टीका पक्षी के नाम से भी पुकारते हैं। कद में १६ इंच से अधिक नहीं होता। पैर और उसकी अंगुलियां बहुत लम्बी होती हैं।

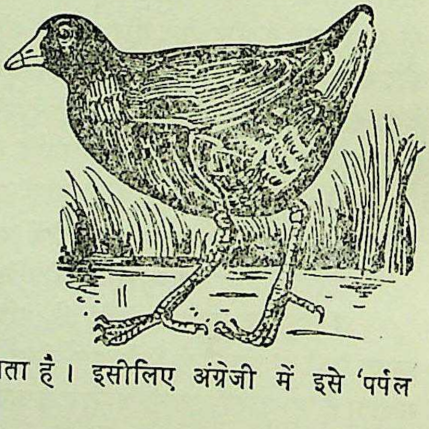

अंग्रेजी में इसे 'कूट' और हिन्दी में टिकरी कहते हैं। टिकरी से मिलता-जुलता एक पक्षी है खेमा या जल बोदरी। बंगला में इसे बूड़ी पाखी कहते हैं। डुबकी लेने में यह अत्यन्त कुशल होता है। इसकी देह का बैंगनीपन रंग लिये हुए स्लेटी है, सीना गाढ़ा नीलापन लिए तथा सर इसका बादामी स्लेटी रंग का होता है। आंखे रक्त वर्ण, चोंच गाढ़े लाल रंग की होती हैं। धूप में इसका बदन चमकता हुआ बड़ा ही सुन्दर लगता है। इसीलिए अंग्रेजी में इसे 'पर्पल मूरहेन' के नाम से पुकारते हैं।

यह दल बांध कर रहने वाली चिड़िया है। खेमों को आप अक्सर पानी के ऊपर मालाकार रूप में तैरते हुये पायेंगे। स्वच्छ जल की अपेक्षा घास-पात, सेवार आदि से भरे हुए तालाब इन्हें अधिक पसंद हैं। इनके मुख्य आहार भी वे ही हैं और इसीलिए धान के खेतों में घुसकर ये काफी नुक्सान पहुंचाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक और पक्षी है जिसे अंग्रेजी में 'मूरहेन' कहते हैं। इसे आप ज्यादातर छोटी-मोटी ताल-तलैयों में, सड़कों के किनारे जलभरे गढ़ों में पायेंगे। रंग इसका कुछ-कुछ काला पीठ पर पीलापन तथा इसकी पूंछ के अंत भाग में सादी धारी होती है। आम तौर पर जल-मुर्गी के नाम से ही यह विख्यात है।

जल-कुक्कुट वंशीय पक्षी-समूह का संक्षेप में यही इतिवृत्त है। ये सभी रूप-रंग में भिन्न होकर भी स्वभाव में अधिकांशतः एक-से होते हैं, यह आरम्भ में कहा जा चुका है। वर्षा के प्रारम्भिक दिनों में जोड़ा बांधते तथा घास-पात के बीच या जलाशय के समीपवर्ती वृक्षों के कोटर में अंडा देते हैं अथवा तालाब के भीतर उगे हुए पौधों के सहारे घोंसला बनाकर। इनके घोंसले कुरूप तथा अंडे एक-से न होकर कई प्रकार के, लम्बे-चौड़े, होते हैं।

इनके अलावा भी कई और पक्षी हैं जो देखने में, और प्रकृति में भी, इनसे भिन्न हैं, पर जिनका निवास जल और थल दोनों में ही है। सबसे प्रमुख सिलही (चित्र संख्या : ६६) नामक बतख है जो यहां की बारहमासी चिड़ियों में है। कद में प्रायः १७ इंच की, सर, गर्दन, सीना और पैर लाल, चोंच भूरे रंग की होती हैं। टांगें बड़ी होती हैं जिनके द्वारा यह आसानी से पहचानी जा सकती है। घास-पात से भरे हुए तालाब इसे ज्यादा पसंद हैं, स्वच्छ जल की सरिताएं अथवा सरोवर नहीं। किनारे के बबूल आदि वृक्षों पर यह बसेरा बनाती है। खूब तैराक होती है तथा उड़ते समय सीटी की-सी सुरीली आवाज करती है जिसके कारण अंग्रेजी में इसे 'ह्विसलिंग टील' के नाम से पुकारते हैं। जून से सितम्बर के बीच यह अंडे देती हैं जो शुरू में खूब सफेद होते हैं, पर पीछे चलकर मटमैले हो जाते हैं।

दूसरा पक्षी नकटा (चित्र संखया : ६७) है, जिसकी गणना बड़ी बतखों में की जा सकती है। इसके नर की चोंच के ऊपर काला-सा कुछ उठा हुआ होता है, जिसके कारण यह नकटा नाम से प्रसिद्ध है। इसके ऊपर का सारा हिस्सा काला होता है, नीचे का सफेद। सर और गर्दन पर काली चित्तियां होती हैं। चोंच काली, पैर स्लेटी रंग के होते हैं। मादा की चोंच पर कोई उठी हुई चीज नहीं होती। यह ज्यादातर बड़े तालाबों में रहता है। बरसात के दिनों में किनारे के किसी दरख्त पर घोंसला बनाकर अंडे देता है जिनकी संख्या १०-१२ या इससे भी अधिक होती है। आहार मुख्यतः घास-पात, पौधों की जड़ और धान है। जल के छोटे कीड़े भी खा लेता है।

बानवर भी तालाबों में रहने वाले पक्षी हैं, जिनके सर और गर्दन पर 'पर' नहीं होते। रंग इनका नीलापन लिए हुए काला, काले बदन पर सफेद भूरी तथा स्लेटी धारियां, बिन्दियां और चिन्ह भी बने होते हैं। चोंच और पैर भी काले ही होते हैं। लम्बी चोंच, लम्बी गर्दन--ये इनकी खास पहचान है। पानी के भीतर से अपनी लम्बी गर्दन निकाल कर चारों ओर देखते हुए तैरते हैं, बीच-बीच में डुबकी लगा लेते हैं। इनका खास आहार मछलियां हैं। झुंड बांधकर रहते हैं। वर्षाकाल में तटवर्ती वृक्षों पर ये घोंसले बनाते तथा अंडे देते हैं। कद में ये प्रायः तीन फुट के होते हैं। तालाब के किनारे तरु-शाखाओं पर ये अक्सर बैठे हुए नजर आयेंगे।

बानवर की आदतों से मिलती-जुलती आदतों वाली एक चिड़िया है जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'पनकौआ' (चित्र संख्या : ७४) के नाम से पुकारते हैं यह काली बतखों के रंग की होती है । शरीर का रंग चमकीला काला, लम्बी सख्त दुम तथा चोंच कुछ टेढ़ी-सी होती है । गले के नीचे एक श्वेत चिन्ह होता है । नर और मादा में कोई अन्तर नहीं होता ।

जल में डुबकियां लगाने में पन कौए को निपुता प्राप्त है। जल के भीतर मछलियों का पीछा करना और उन्हें पकड़-पकड़ कर खाना इसका रोज दिन का काम है । तालाब, झील आदि इसके निवास-स्थल हैं ।

जल-कुक्कुट की तरह जल-कपोत भी तालाबों में रहने वाले पक्षी हैं, पर फर्क इतना है कि ये उन्हीं झीलों अथवा तालाबों में रहते हैं जो कमल, कुमुदिनी, सिंघाड़ा आदि पौधों से भरा होता है, स्वच्छ सरोवर में नहीं । तटवर्ती घास-फूस के झुरमुट भी इन्हें पसन्द नहीं है । ये ज्यादातर जल-पौधों—कमल आदि के पत्तों पर चला करते हैं और कभी-कभी उन्हीं पर अंडे भी दे डालते हैं । जल में तैरना और डुबकियां लगाना भी इन्हें आता जरूर है, पर इन्हें अधिक प्रिय है पत्तों पर चलना, और इसीलिए ये स्वच्छ जल वाले सरोवरों में रहना पसंद नहीं करते । इनकी अंगुलियों की बनावट इनके पद्म-पत्र पर खड़े होने अथवा एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर चलने में सहायक होती है । झील अथवा सरोवर में ये कभी तो कमल आदि के पत्तों पर खड़े मिलेंगे या कभी जल के इन पौधों की ओट में झुरमुट में छिपे हुए, जहां से जब-तब गर्दन ऊंची करके चारों ओर देखते भी रहते हैं ।

जल-कपोत के नर-मादा भी ज्यादातर एक साथ ही रहा करते हैं । किसी-किसी सरोवर या झील में इनके एक-दो नहीं पचासों जोड़े जहां-तहां जल-विहार करते हुए नज़र आयेंगे अथवा पत्तों की झुरमुट में छिपे हुए ।

इनमें उड़ने की शक्ति अधिक नहीं, और इसीलिए जब ये किसी आगन्तुक को देख कर उड़ने लगते हैं तो थोड़ी दूर जाकर ही पुनः पत्तों पर चलना शुरू कर देते हैं ।

इनकी दो किस्में हैं : एक वह जिसका सर, गर्दन तथा छाती चमकदार काली, पीठ और डैने काई लगे हुए पीतल के रंग के, पूंछ पर कत्थई-लाली होती है । दूसरा वह जिसकी पूंछ लम्बी होती है तथा रंग में स्वच्छ सफेदी और चाकलेट जैसा कत्थई पन होता है । सर का अगला भाग तथा गर्दन का निचला हिस्सा सफेद, पेट, पीठ तथा दुम के लम्बे पर चाकलेटी रंग के होते हैं । दुम के परों का आकार लम्बा हंसुआ जैसा होता है । गर्दन का ऊपरी हिस्सा पीले रंग का होता है ।

दोनों के स्वभाव में कोई खास अन्तर नहीं है, और न नर और मादा की रूप-रेखा में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही। पांव के अंगूठे देखने में मकड़ी जैसे लगते हैं। किसी जल-पौधे के ऊपर या कभी-कभी जल की सतह पर ही ये वर्षाकाल में घोंसला बनाते हैं। अंडों पर तरह-तरह की विभिन्न वर्ण की रेखाएं बनी होती हैं। अंडे संख्या में अधिकांशतः चार होते हैं। ये अपने घोंसले को पानी में नाव की तरह खेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भी ले जाते हुए देखे गये हैं।

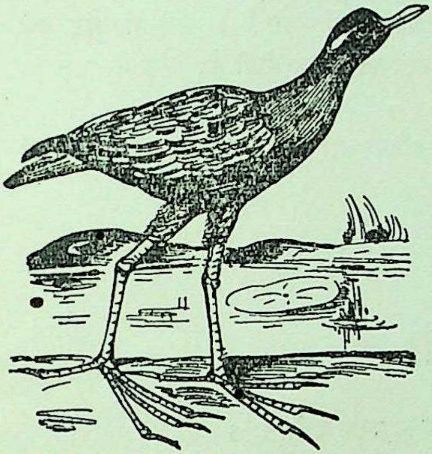

बंगाल में इन्हें जल-पिपि तथा बोल-चाल की हिन्दी में 'पिही' अथवा पिहुआ कहते हैं। सारे देश में उपलब्ध हैं। कद ये तीतर जैसे होते हैं।

पेलिकन नाम का एक-जल पक्षी है जो संसार-प्रसिद्ध है। इसे हिन्दी में हवासिल तथा बंगला में 'गगन-बेड़' अथवा 'गगन-भेरी' के नाम से पुकारते है। कहते हैं संस्कृत भाषा का 'प्लव' नामक पक्षी भी यही है—प्लस्तु गात्र संप्लवः (अभिधान चिन्तामणि)।

पर हवासिल इस देश का बारहमासी पक्षी नहीं है। शीत काल में इसे अधिकतर समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में, जैसे कि बंगाल के सुन्दरवन के इलाके में, झुंड में देखा जाता है। मद्रास के भी कई स्थानों में यह पाया गया है, घोंसले बनाकर अंडे देता हुआ भी।

हवासिल जहां भी रहते हैं झंड में रहते हैं। इनके गांव-के-गांव बसे हुए पाये जाते हैं। बर्मा में सितांग नदी के आस-पास के जंगलों में, झीलों में, फैला हुआ इनका एक उपनिवेश है जिसमें करोड़ों की संख्या में ये निवास करते पाये गये हैं। कद में यह गृद्ध से भी बड़ा, लम्बी गर्दन तथा छोटे लेकिन मजबूत जालीदार पांव वाला पक्षी है। इसकी चोंच बहुत लम्बी, मोटी तथा चपटी-सी होती है जिसके नीचे एक नीले रंग की बढ़ने-घटने वाली

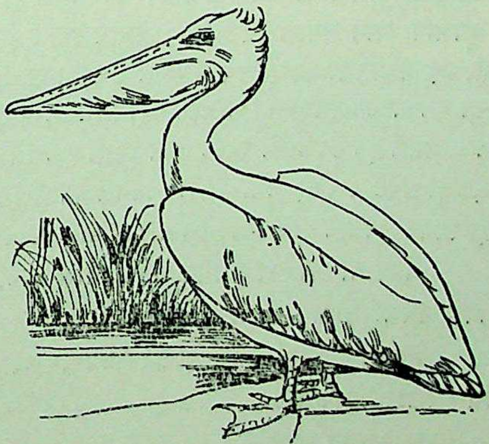

चमड़े की बड़ी-सी थैली बनी होती है। पेलिकन की यह खास चीज है, जो किसी और पक्षी में नहीं पायी जाती। पेट के निचले हिस्से में सफेदी, पीठ पर कत्थई रंग होता है। चोंच के ऊपरी हिस्सों में, नीलापन लिय हुये काले रंग के धब्ब बने होते ह।

ये उड़ने में बहादुर हैं तथा जब आकाश में उड़ते रहते हैं तो इनके गतिशील सुदृढ़ डैनों से एक प्रकार की सीटी की-सी आवाज निकलती रहती है। सम्भव है इनका 'गगन भेरी' नाम इसी कारण से पड़ा हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये मत्स्यभक्षी पक्षी हैं तथा जल में मछली पकड़ने का इनका तरीका भी बड़ा रोचक है। समुद्र में जिस तरह दर्जनों की संख्या में मछुए मछली पकड़ते हैं, उसी तरह ये भी कई एक साथ मिलकर डैनों की चोट देते हुए आगे बढ़ते हैं और इस तरह मछलियों को गहरे जल से छिछले पानी की ओर जाने को बाध्य करते हैं। फिर जल में डूब कर चोंच को पानी की सतह पर खोले हुए तिरते हैं। मछलियां आपसे आप इस चंचु-जाल में आ फंसती हैं।

बतखों की तरह ये भी कतार बांधकर आकाश में उड़ते हैं। ऊंचे वृक्ष पर दल बांधकर घोंसले बनाते हैं। अंडों की संख्या अधिकतर तीन होती है; रंग में वे सफेद होते हैं।

पेलिकन की चर्बी से निकला हुआ तेल गठिया आदि रोगों के लिए बड़ा गुणकारी माना गया है।

बगला

पश्य लक्ष्मण ! पम्पायां बकः परम धार्मिकः ।

भगवान रामचन्द्र ने लक्ष्मण को बगले को दिखा कर कहा था। परम धार्मिकः—इसका मतलब यह नहीं कि बगला सचमुच ही पक्षियों में बड़ा धार्मिक है, बल्कि इस संज्ञा का प्रयोग व्यंग्यात्मक रूप से किया गया है। जिस प्रकार नदी या सरोवर के निर्जन एवं शान्त तट पर योगी ध्यान लगाकर बैठा करते हैं, उसी प्रकार बगला भी जल के किनारे चुपचाप ध्यान लगाकर बैठता है; अन्तर इतना है कि जहां योगी भगवान का ध्यान करते हैं, यह मछलियों का (चित्र संख्या : ७५)। शान्त भाव से बैठे रहने के कारण मछलियों को इसकी उपस्थिति का आभास नहीं मिलता, वे तट की ओर स्वच्छन्दतापूर्वक, निर्भय हो कर, आती हैं। बगले का ध्यान तभी टूटता है। शिकार को पास आया देख कर वह उसको एक ही झपट में पकड़ लेता है और निगल जाता है। योगियों जैसी उसकी मुद्रा को देखकर ही शायद भगवान राम ने लक्ष्मण से कहा था—पश्य लक्ष्मण ! पम्पायां बकः परम धार्मिकः।

आज भी ऊपर से धार्मिक बनने वाले लोगों को, मुंह में राम बगल में छूरीवालों को "बगला भगत" के नाम से पुकारते हैं।

तात्पर्य यह कि अडिग होकर लक्ष्य पर ध्यान जमाना बगले का प्रधान गुण है। जिस प्रकार "काकचेष्टा" प्रसिद्ध है, उसी तरह "बको ध्यानं" भी ख्यातिप्राप्त है। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए बगले का यह गुण मानव मात्र के लिए अनुकरणीय है। कितने कर्मठ हैं ये बगले ! किसी सरिता, सरोवर या झील के किनारे जाइए, तो आप देखेंगे कि दिन-दिन भर सैकड़ों बगले चारों ओर से अपने ध्यान को समेट कर, चित्तवृत्ति का निरोध करके, चुपचाप अपनी कठोर साधना में संलग्न हैं। उन्हें न तो आकाश के काले-काले, किसी श्यामांगी के लहराते केशों-से बादल ही आकर्षित करते हैं, न वन-उपवन की पराग से भरी हुई, रस से ओतप्रोत, कुसुम-कलिका ही। न उन्हें अमराइयों से प्यार है, न आम्र-मंजरी-मदिरा की प्यास है, और न बाग के सुमधुर फलों की ही भूख है। पीले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

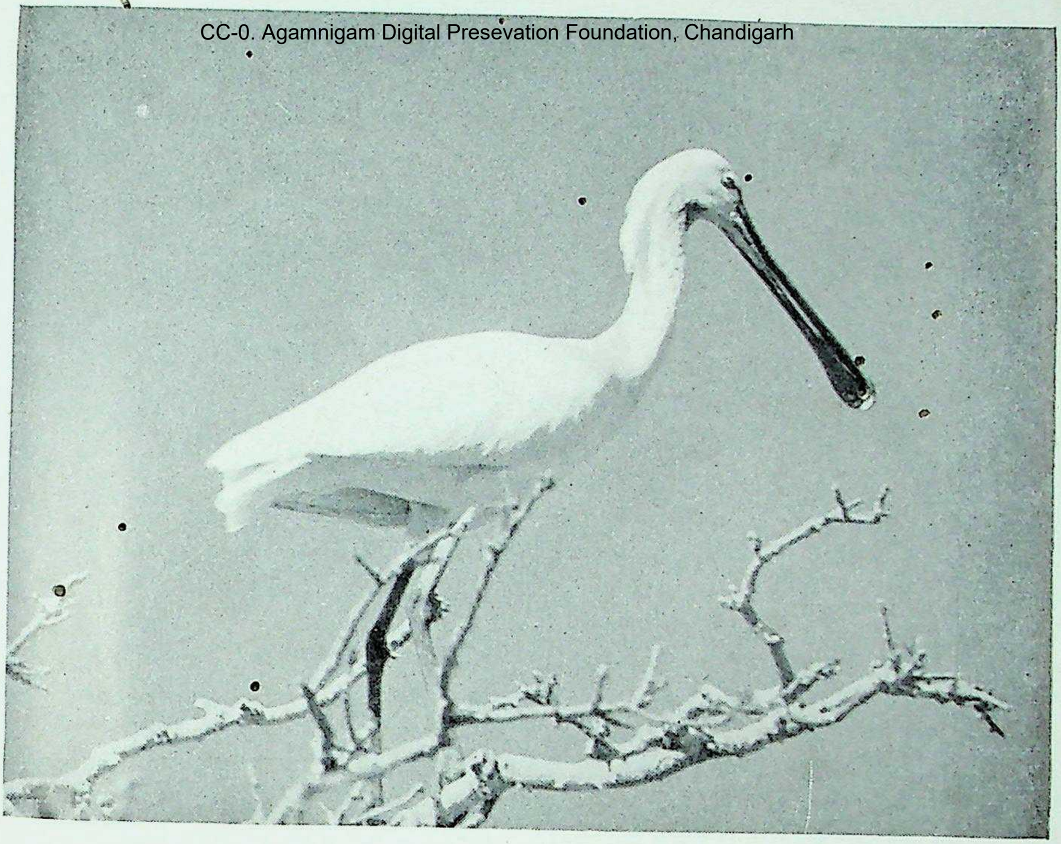

दाबिल

चित्र संख्या : ८७

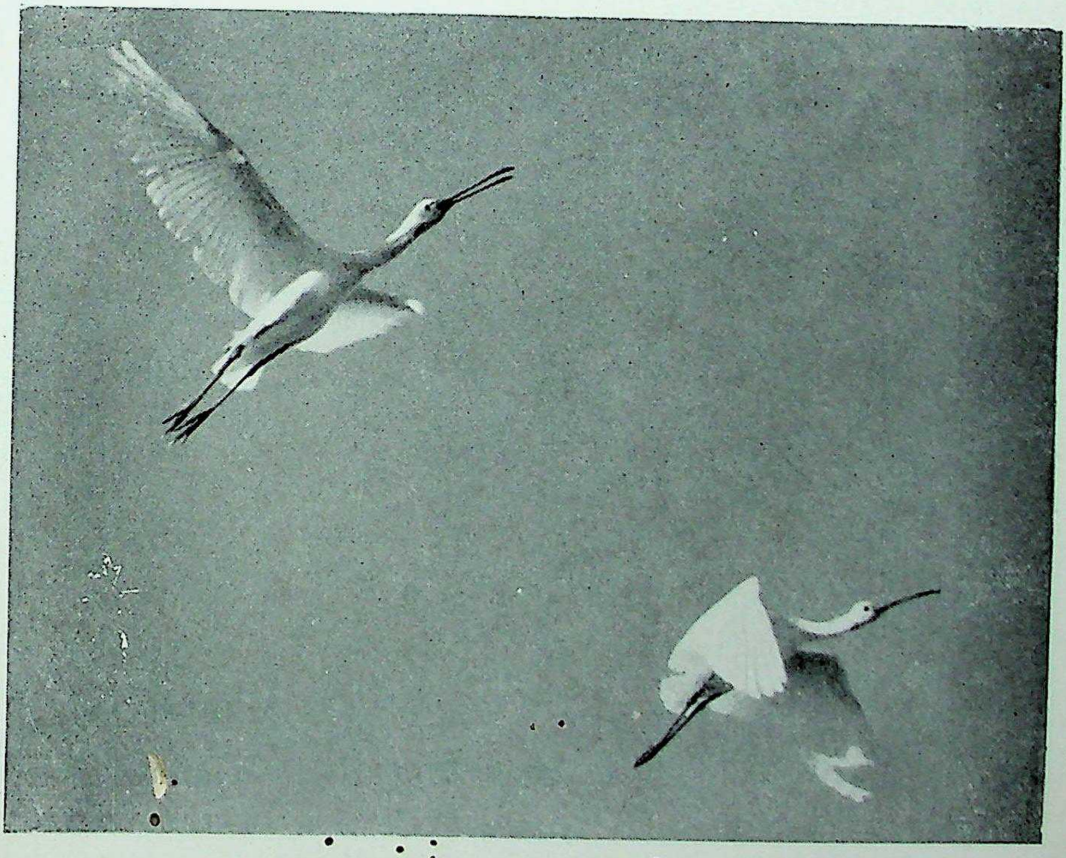

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Fou

नीली आंख वाला काकातुआ

चित्र संख्या : [illegible]६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम, लाल सेव, काले अंगूर—ये सभी उनके लिए तुच्छ हैं, अनाकर्षक हैं; उन्हें तो चाह है मछली की, और उसकी प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त होकर ये यत्नशील रहते हैं। काश! हम भगवद्प्राप्ति के लिए इनकी जैसी एकाग्रता और तन्मयता प्राप्त कर पाते! तब हमें यह कहने की आवश्यकता न पड़ती कि—

प्रभुजी, यह मन अधम बरो,
छाड़ि रावरो चरण सरोरुह, इत-उत भ्रमत फिरो।

अथवा—

कस न भयो मन थीर,
तजि हरि-चरण-छांह अति सीतल, इत-उत भ्रमत अधीर।

भगवान करे हमारे चरितनायक का यह बकव्रत—जिस की निम्नलिखित पंक्तियों में चर्चा है तथा जो बगले को स्वर एवं शरीर-सौन्दर्य से रहित होने पर भी गुणशाली बनाता है—हमारे लिए आदर्श हो!

न कोकिलानामिव मञ्जु कूजितं,
न लब्धलास्यानि गतानि हंसवत्,
न बर्हिणानामिव चित्रपक्षता
गुणस्तथाप्यस्ति बके बकव्रतम्।

—हे बक! न तो तू कोयल की भांति मधुरवाणी ही बोल सकता है, न हंस के समान तेरी सुन्दर चाल ही है और न मोरों जैसे तेरे रंग-बिरंगे पंख ही हैं। तो भी हे बगुले! बकव्रत ही तेरा सबसे बड़ा गुण है।

बगले को शांत भाव से बैठा देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि यह पक्षियों में सबसे सीधा-सादा है। पर समय आने पर इसका सारा सीधापन पलमात्र में काफूर हो जाता है; श्रीमान बगला भगत का तभी वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है, जब उनके सम्मुख कोई मत्स्यबाला आकर उपस्थित हो जाती है—

न भ्रूणां स्फुरणं न चंचुचलनं नो चूलिकाकम्पनम्
न ग्रीवाचलनं मनागपि न यत्पक्षद्वयोत्क्षपणम्,
नासाग्रेक्षणमेकपाददमनं कण्टैकनिष्ठं परम
यावत्तिष्ठति दीनमीनवदनस्तावद्बकस्तापसः।

—इस बगले की न तो भौंहें फड़कती हैं, न चोंच ही हिलती है, गर्दन भी बिल्कुल स्थिर है, दोनों पंख भी निश्चल हैं। एक पांव पर खड़ा होकर यह नासाग्र में ध्यान लगाये रहता है। पर यह सब कुछ तभी तक है जब तक कि उसके सामने बेचारी किसी गरीब मछली का अस्तित्व विद्यमान नहीं है।

इस गर्दन सिकोड़े, एक पांव पर खड़े, बूढ़े बगले को देखकर छोटी-छोटी अबोध मछलियों को ऐसा भान होता है कि डंडी पर कोई श्वेत कमल खिला हुआ है—

नालेनेव स्थित्वा पादेनैकेन कुञ्चितग्रीवम्,
जनयति कुमुदभ्रान्ति वृद्धबको बालमत्स्यानाम्।

पर जब वे आगे बढ़ती हैं तो उस बगले का, जो बड़ा सीधा-सादा-सा प्रतीत हो रहा था, असली स्वरूप प्रकट होता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थित्वा धैर्यादुपाम्भः समजठरशिराश्चक्रमूर्तिर्मुहूर्तम्,
धूर्तः संत्यक्ततीरः कतिचिदपि पदान्युच्चकैः कुंचितांघ्रिः
पश्चाद्ग्रीवां प्रसर्य्य त्वरितगतिरपां मध्यमाविश्य चंच्वा,
चचन्तीमूर्ध्वकंठः कथमपि शफरीं स्वारिताक्षो बकोऽस्ति ।

पहले तो वह बगला पानी के पास खड़ा रहता ह, फिर अपने शरीर को गोल-मटोल बनाकर, अपनी एक टांग को सिकोड़ कर, आहिस्ता-आहिस्ता किनारे पर आ पहुंचता है। और तब तेज चाल से पानी के बीचों-बीच पहुंच कर, गर्दन उठा, चमकती हुई मछली को आंखें फाड़-फाड़ कर देखता हुआ, भक्षण करने लगता है ।

यही हैं वे योगिराज जो जल के किनारे कुछ ही देर पहले ध्यानावस्थित नजर आ रहे थे !

नदी, जलाशय, झील, छोटे-छोटे जल भरे गड्ढों में ये अपनी करामात भले ही दिखा लें, विशाल जल-राशि समुद्र में इनकी एक नहीं चलती—

बकोट ब्रूमस्त्वां लघुनि सरसि क्वापि शफरै
स्तव न्याय्या वृत्तिर्न पुनरवगाढुं समुचितः ।
इतश्चेतश्चाभ्रंलिहलहरिहेलातरलितम्
क्षितिध्रग्रासैकग्रहिलतिमिपोतः पतिरपाम् ।

बगले का जाति-विस्तार बहुत बड़ा है तथा यह संसार के सभी हिस्सों—यूरोप, एशिया, अफ्रीका आदि में—सम रूप से पाया जाता है। इसकी छः मुख्य उपजातियां हैं जिन में तीन ऐसी हैं जिनका रंग स्लेटी है, शेष तीन का गहरा सफेद ।

उपर्युक्त छः उपजातियों में सबसे बड़ा बगला वह है जिसे आंजन बगला कहते हैं। यह आम तौर पर हर जगह पाया जाता है। कद में यह सबसे बड़ा प्रायः ४० इंच लम्बा होता है। इसका सर सफेद होता है; सर, चोटी और आँख के पास एक काली पट्टी होती है, गर्दन मटमैली-सफेद होती है। डैने स्लेटी, उनके सिरे काले तथा कन्धों पर सफेद धब्बे होते हैं। आंखें पीली होती हैं और चोंच में कई रंग होते हैं—जड़ नीली, मध्य पीला, सिरे काले रंग के होते हैं। पैर हरापन लिए हुए धूसर रंग के होते हैं। गर्मियों में पीठ के रंग में ललाई आ जाती है। इसके पंजों में दांत होते हैं, जिनके सहारे यह अपने शरीर और चोटी को सँवार लिया करता है ।

मार्च और अगस्त के बीच मादा अंडे देती है, जिनकी संख्या साधारणतः तीन होती है ।

दूसरे प्रकार का बगला वह है जिसे 'निशावक' (चित्र संख्या : ८४) कहते हैं। यह रात में ही विचरता है और कद में करीब २२-२३ इंच का होता है । इसके सर के ऊपरी हिस्से तथा पीठ पर कालापन रहता है । चोटी सफेद, गर्दन, पेट, दुम और डैने हल्के स्लेटी रंग के होते हैं। नेत्र रक्तवर्ण, चोंच काली, पर और पांव पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं । जुलाई-अगस्त के महीनों में मादा चार-पांच तक अंडे दिया करती है ।

सबसे छोटी 'बगली' है, जिसमें ढिठाई की मात्रा सबसे अधिक है । पास तक चले जाइए, पर यह न उड़ेगी; इसके सर और गर्दन का ऊपरी भाग गहरा भूरा व नीचे का सफेद होता है । पीठ स्लेटी, शरीर के बाकी हिस्से साधारणतः सफेद होते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आंख की पुतलियां चमकदार पीली, चोंच काली-पीली-नीली, अर्थात् आगे काली, फिर पीली और अन्त में नीली होती है। पैर गहरे हरे रंग के होते हैं। मई से सितम्बर तक इसका प्रसव-काल है। मादा छः-छः अंडे तक दे डालती है।

ये तो तीन स्लेटी बगले हुए। इसके बाद के तीन प्रकार के बगले वे हैं जो देखने श्वेत, दूध जैसे, होते हैं (चित्र संख्या : ८६)। परन्तु कद में अन्तर होता है। एक खूब बड़ा, दूसरा मझोला और तीसरा सब से छोटा होता है। ये सभी वर्षाकाल में अंडे देते हैं। वर्षा ऋतु में जब आकाश में काले-काले मेघ घिर आते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे अब बरसने ही वाले हैं, तो व्योमगामी इन श्वेत बगलों का दल इन मेघों की पृष्ठभूमि में बड़ा सुहावना लगता है; ऐसा प्रतीत होता है मानों ये मेघबाला के गले का हार हों। इन्हीं के सम्बन्ध में विरही यक्ष ने मेघ से कहा था :—

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।

—जलद ! तुम्हारे नेत्र-रंजन दर्शन से यह समझ कर कि अब उनका गर्भाधान-काल समुपस्थित है, बलाकाएं आकाश में श्रेणीबद्ध रूप में उड़-उड़ कर तुम्हारा अभिनन्दन करेंगी।

उपर्युक्त तीन प्रकार के बगलों में जो सबसे बड़ा है उसके चोटी नहीं होती। इस वर्ग की मादा की चोंच प्रसव-काल में पीली से काली हो जाती है। मझोले की पीली और छोटे कद वाले की हमेशा काली रहती है।

मझोले कद के बगले में—जिसे करछिया कहते हैं—एक विशेषता है जिसके कारण किसी जमाने में वे हजारों की संख्या में मार डाले जाते थे। इसके पर बड़े सुन्दर होते हैं। प्राचीन काल में पूर्वीय देशों के लोग इसके परों को साफे अथवा पगड़ी में लगाया करते थे। मणियों से सुसज्जित इसके परों की बनी कलंगी बादशाहों का सबसे मूल्यवान उपहार मानी जाती थी। मिस्र के सुलतान ने नील नदी के विख्यात युद्ध के बाद ऐसी ही एक पगड़ी नेल्सन को भेंट की थी। यही नहीं, यूरोप में औरतें भी बड़े शौक से इसके परों को धारण करने लगी थीं—फैशन में इसका शुमार होने लगा था तथा इसका व्यापार चमक उठा था। परों की खातिर ये हजारों की संख्या में प्रति वर्ष मारे जाने लगे, और एक समय ऐसा भी आया जब मिस्र में इस जाति के बगलों का लोप-सा हो गया।

छठी अर्थात् अन्तिम श्रेणी उन बगलों की है जिसे 'गाय-बगला' अथवा 'सुरखिया' कहते हैं। यह कद में सबसे छोटा होता है। जब अंडा देने का समय समीप आ जाता है तो मादा के शरीर पर नारंगी लिए हुए कुछ बादामी पर उग आते हैं और इसी लिए इसे सुरखिया भी कहते हैं। यह अधिकतर चरागाह में मवेशियों के साथ-साथ घूमा करता है, जब-तब उनकी पीठ पर सवार भी हो जाता है तथा उनके पांव की ठोकर से उभारे हुए कीड़े-मकोड़ों को चट करता रहता है। यही नहीं, गाय, भैंस आदि पशुओं के बदन पर के जूं आदि कीटों को भी अपना आहार बनाकर इन पशुओं को इनसे छुटकारा देता है। किसानों के लिए इस जाति का बगला लाभकारी है क्योंकि कृषि-कार्य में बाधक न जाने कितने कीड़े-मकोड़ों को यह खा जाता है।

ऊपर जिन छः प्रकार के बगलों की चर्चा की गई है उन सभी के स्वभाव तथा आदतें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्यतः एक-सी होती हैं। मछली सब को अत्यन्त प्रिय है, साथ-साथ मेंढक, जल-कीट आदि जीव भी इन्हें स्वादिष्ट लगते हैं। यों तो केकड़ा भी इन्हें प्रिय है, पर यदि वह जिन्दा रहा, तो कभी-कभी इनके गले के भीतरी भाग को कस कर जकड़ लेता है जिससे इनका प्राणान्त तक हो जाता है। फिर भी लोभवश ये उसे उदरस्थ करने की कोशिश से बाज नहीं आते।

बगले शिकार तो अलग-अलग किया करते हैं, परन्तु रात में एक ही वृक्ष पर निवास करते हैं—एक साथ, पचासों की संख्या में। जिस वृक्ष पर बगलों ने डेरा डाला, बस समझ लीजिये कि वह समाप्त हुआ। एक तो ये उसे बेतरह गन्दा कर डालते हैं; दूसरे, इनके शरीर से कुछ ऐसी विषैली गर्मी निकलती है जो वृक्ष को धीरे-धीरे सुखा डालती है।

ये वृक्ष पर घोंसले बनाकर एक साथ रहते हैं, एक साथ ही अंडे देते हैं। इसका एक कटु अनुभव मुझे हजारीबाग जेल में हुआ। गर्मी के दिन थे। जेल के जिस वार्ड में हम—मैं तथा मेरे साथी—रखे गये थे, उसमें आम के बहुत-से वृक्ष थे। एक बार सहसा पचासों बगलों ने आकर इन पर डेरा डाला। दिन भर तो वे गायब रहते थे, पर रात में इन पर आ बैठते थे। अंडा देने का समय आया। इन्होंने घोंसले बनाये, अंडे भी दिये। बच्चे पैदा हुए। यहां तक तो कुछ बुरा न था। पर धीरे-धीरे इन दरख्तों से असह्य दुर्गन्धि निकलने लगी तो हम घबड़ा गये। पर करें क्या, कैदी थे, चुपचाप सहते रहे। इतने में ही एक रात बड़े जोर की आंधी आयी और वृष्टि भी हुई। सुबह उठकर जो हम देखते हैं तो प्रायः एक सौ से भी ज्यादा नवजात बक-शिशु तमाम वार्ड में, कोठरियों में, रसोई घर में, हर जगह विचर रहे हैं। तूफान ने उन्हें घोंसलों से निकाल-निकाल कर नीचे गिरा दिया था। एक तहलका-सा मच गया। हम अपनी-अपनी कोठरियों से उन्हें निकालते, वे पुनः घुस आते थे। अंत में जेल-अधिकारियों को खबर लगी। उन्होंने बक-शिशुओं को पकड़-पकड़ कर बाहर भिजवाया और इस प्रकार पवनदेव की कृपा से हमें इन बगलों से सदा के लिए छुटकारा मिला।

दिन में जो जलाशयों के किनारे योगियों की-सी योगनिद्रा में लीन नजर आते हैं वे—श्री बगलाभगत—रात में अपने निवास-वृक्षों पर आपस में खूब झगड़ते भी हैं। रात भर शायद बैठने के स्थान के लिए घोर संघर्ष चलता रहता है, एक दूसरे पर प्रहार होता रहता है, पंखों की फड़फड़ाहट तथा उनकी कोंक-कोंक की बोली से सारा वृक्ष तथा उसके अड़ोस-पड़ोस की जगह अशांत बनी रहती है। चेहरे कभी-कभी धोखे में डालने वाले भी होते हैं; दिन में बगला इतने शान्त स्वभाव वाला दृष्टिगोचर होता है, रात में वही इस कदर झगड़ालू।

लगलग या महावक

लगलग या महावक एक ऐसा पक्षी है, जिसकी बेढंगी सूरत-शक्ल पर हम दिल खोल कर हँसते हैं। पर जिस तरह उल्लू की कद्रदान स्वयं लक्ष्मी हैं, उसी तरह लगलग के कद्रदान भी इस भव-भूतल पर विद्यमान हैं और वे हैं अलसेस (फ्रांस और जर्मनी के बीच

State Museum,
LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का एक प्रान्त) के निवासी, जिनका यह विश्वास है कि घर में अथवा अड़ोस-पड़ोस में यदि लगलग आ कर रहें तो मनुष्य को सन्तान तथा धन की प्राप्ति होती है। यही नहीं, वहां लगलगों को आर्कषित करने की तरह-तरह की चेष्टाएं भी की जाती हैं। अभी पिछले दिनों रिबोविले नामक एक शहर की नगरपालिका ने नगर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर ऊंचे-ऊंचे मचान बना कर उन पर हू-बहू वैसे ही घास-पात-लकड़ियों के घोंसले बनवाये हैं, जैसा कि लगलग स्वयं बनाया करते हैं, ताकि उन्हें नगर में आर्कषित किया जा सके। इनका मनोवांछित परिणाम भी हुआ है तथा वहुतेरे लगलग इनसे आकृष्ट हो कर शहर में आ बसे हैं। नगरपालिका ने इसके लिए एक खास समिति का निर्माण किया है जो हर प्रकार से लगलगों की सुविधाओं की व्यवस्था किया करेगी। यही नहीं, मोरक्को से अंडे मँगा-मँगा कर कृत्रिम ढंग से उनके सेने का प्रबन्ध भी इस समिति के द्वारा हुआ है और इनसे निकले हुए बच्चे आज शहर में नगरवासियों के प्यार के भाजन हो रहे हैं। धन्य है अलसेस-निवासियों की यह कद्रदानी !

जिस लगलग की यूरोप के एक हिस्से में आज इतनी पूछ हो रही है, वह आखिर है कौन-सा पक्षी ?

इस पुस्तक में अन्यत्र हमने कई ऐसे पक्षियों की चर्चा की है जो जल के किनारे रहा करते हैं, घाट के पंडे हैं, पर जल के भीतर वतखों की तरह न तो निवास करते हैं और न डुबकी ही लगाते हैं। तात्पर्य सारस, बगला, कुररी, कौडिल्ला आदि पक्षियों से है। ऐसे ही पक्षियों में एक लगलग भी है जिसे अंग्रेजी में स्टार्क, बंगला में 'हाड़गिला' कहते हैं तथा जिसके सम्बन्ध में 'बर्ड्स आफ द प्लेन्स' (१९०९) के लेखक ने लिखा था कि यह प्रकृति का एक छोटा-सा मजाक है। लम्बे पांव, सर और गर्दन परों से खाली, छोटी आंखें—शायद इसी रूप-रेखा के कारण उपर्युक्त लेखक ने इसे 'प्रकृति का एक छोटा-सा मजाक' कहा है। पर जिन्होंने उसे चक्राकार ऊपर उठते या नीचे की ओर आते देखा है, वे शायद इस कथन से सहमत न होंगे, क्योंकि उसकी उस समय की आकृति और ढंग आंखों को बड़ा सुहावना लगता है।

हिन्दी भाषा में इस जाति के पक्षी के लिए कोई एक उपयुक्त शब्द नहीं है। इसकी कई किस्में हैं। भिन्न-भिन्न किस्मों के लिए अलग-अलग नाम हैं, जैसे कि "घोंघिल" (घोंघा खाने के कारण), "जांघिल", "गैंबर", "लोहा", "लगलग" आदि। पर यदि इनको हम एक ही नाम "महावक" के भीतर ले जाएं तो अधिक अच्छा हो। लगलग इनमें सबसे प्रमुख है, अतः इस पक्षी-समूह को यदि हम लगलग के नाम से भी पुकारें, तो कोई हर्ज नहीं है। दरअसल लेख के शुरू में हमने लगलग शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया भी है।

लगलग, जो इस जाति के पक्षियों में प्रधान है, कद में प्रायः ३ फुट का होता है। इसके सर का ऊपरी हिस्सा काला रहता है, बाकी सभी गर्दन के नीचे तक सफेद। दुम के नीचे का हिस्सा भी सफेद ही होता है। शरीर का बाकी सारा भाग हरी चमक के साथ धुर काला होता है। आंख की पुतली तथा लम्बी टांगें लाल होती हैं, चोंच काली।

महावक की एक दूसरी जाति भी है, जिसका सारा बदन बर्फ जैसा सफेद होता है; केवल डैनों के कुछ पर गहरे काले होते हैं। गरज यह कि इस जाति के पक्षियों में काले और सफेद दोनों वर्णों का सुन्दर सम्मिश्रण है। स्वभाव से ये शर्मीले होते हैं। कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

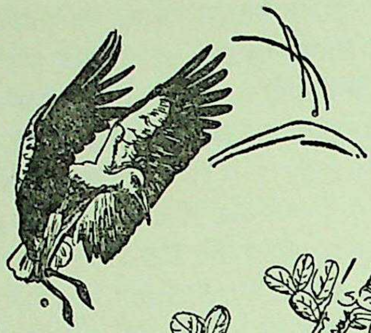

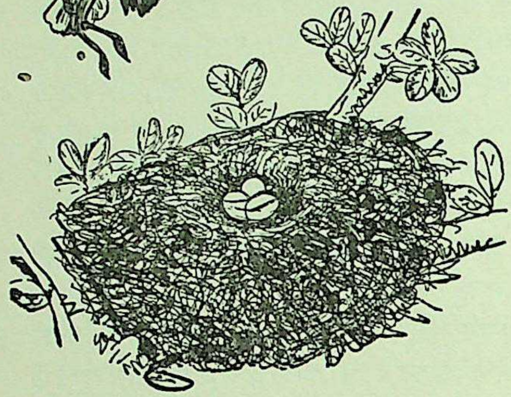

झुंड बांध कर नहीं रहते। छः-सात भी यदि एक स्थान पर होंगे, तो एक साथ या एक जगह पर नहीं, दूर-दूर।

इनका दाम्पत्य-प्रेम स्तुत्य है। कपोत की भांति नर और मादा, साथ-साथ रहते हैं। स्वभाव से ये चुप रहने वाले पक्षी हैं, पर प्रजनन-ऋतु के आते ही खूब शोर मचाते हैं। उन दिनों इनकी सारी लाज मानो विलीन-सी हो जाती है। इनकी बोली कर्कश और कर्णकटु होती है।

मछली, घोंघे आदि इनके आहार हैं, यहां तक कि मृत पशु-पक्षियों के हाड़-मांस भी ये बड़े चाव से खा जाते हैं। कलकत्ते में जिन दिनों सफाई की व्यवस्था अच्छी न थी, बहुतेरे स्टार्क सड़े-गले हाड़-मांस आदि पदार्थों का भक्षण करके नगर की स्वास्थ्य रक्षा में सहायक हुआ करते थे।

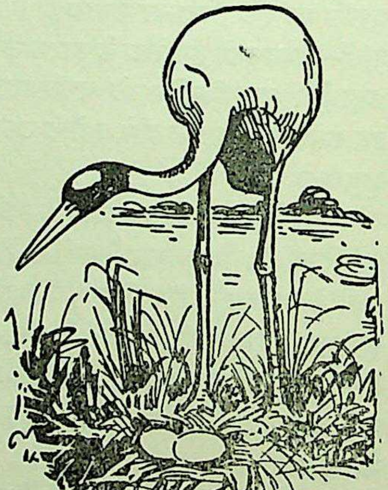

बड़े-बड़े नगरों में ये बहुधा खाने की खोज में लगे देखे जाते हैं। पता नहीं इस देश की किसी नगरपालिका ने इनकी इस मानव-सेवा की प्रकृति से लाभ उठाने की चेष्टा की है या नहीं।

लोक-सेवा की उक्त सद्भावना के कारण ही शायद पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के मुसलमान इस पक्षी को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। तुर्क उससे भाई-चारे का सम्बन्ध रखते हैं, मोरक्को तथा मिस्र के लोग उसकी मजहबी तरीके पर इज्जत करते हैं तथा भारतवर्ष में भी इसकी हत्या करना मना है। जाड़ों में तालाब के किनारे के किसी वृक्ष पर, सूखी टहनियों के बने बेडौल घोंसले में, आप इसके अंडे देख सकते हैं। इनकी संख्या तीन से चार तक होती है।

संक्षेप में महावक का यही परिचय है। यदि हम शरीर-सौन्दर्य पर न जाकर इसकी उपयोगिता पर जाएं, तो हम भी अलसेस निवासियों की तरह इसकी कद्र करेंगे और कहेंगे—

आवहु, आवहु, विहग ! बसहु गृहप्रांगण माहीं,
हौं गुणग्राहक, रूप-रंग कौ गाहक नाहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारस

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।

* * * *

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ।

—मेघदूत

सारस एक ऐसा पक्षी है जिसे एक बच्चा भी बड़ी आसानी से पहचान सकता है—ऊंट जैसा ऊंचा बदन, लम्बी गर्दन, लम्बी टांगें, कर्कश बोली । ये इसकी पहचान के (चित्र संख्या : ७७) चिह्न हैं । बड़ा ही निडर होता है । जब तक आप उसके बिल्कुल समीप न पहुंच जाएं, वह उड़ने का नहीं । हां, बिल्कुल करीब पहुंचने पर खीझा हुआ-सा कर्कश स्वर में कुछ बोलकर उड़ चलता है । इसके उड़ने का ढंग वायुयान का-सा है । पहले थोड़ी दूर तक दौड़ता है, फिर पंखों पर आ जाता है । आकाश में ज्यादा दूर तक नहीं जाता, थोड़ी ऊंचाई पर ही उड़ता है ।

लोग इसे पालते भी हैं । पालतू हो जाने पर यह साथ-साथ चलता है और रात में पहरेदार का काम करता है । किसी अजनबी के आने पर उस पर चंचु-प्रहार तक कर डालता है ।

एक पति अथवा एक पत्नीव्रती है यह । एक बार ही जोड़ा बांधता है, एक बार जोड़ा फूट जाने पर फिर नहीं बांधता । नर-मादा दोनों बहुधा अधर से अधर, चोंच से चोंच मिलाए खड़े रहते हैं । एक को यदि आप गोली का शिकार बना डालें तो दूसरा मरने के लिए तैयार हो जाता है, मुमकिन नहीं कि मृतक के पास से आप उसे बगैर मारे हटा सकें । वहीं खड़ा रहेगा और रोता रहेगा ।

सारस सर्वभक्षी है । तालाब के छिछले किनारों पर यह घूम-घूम कर मछलियां, घोंघे, कछुए तथा मेंढक खाता रहता है । पर जल के भीतर नहीं जाता । मादा पानी के बीच किसी टापू पर अंडे देती है । यह स्वभाव से अंतरिक्ष-विज्ञान का ज्ञाता है । बरसात कम होगी या ज्यादा, इसका उसे पूर्वाभास-सा मिल जाता है, और मादा उसी के अनुसार अंडे देने की जगह चुनती है । यदि अधिक वर्षा होने वाली हुई तो ऊंची, वरना नीची जमीन पर । गांव के लोग इसके प्रजनन-स्थान की ऊंचाई से ही भावी बरसात की कमी या अधिकता का अंदाजा लगा लेते हैं । इसके सारे शरीर का रंग स्लेटी होता है । डैने भूरे होते हैं, गर्दन के ऊपरी हिस्से में ज्यादा सफेदी होती है ।

सारस हमारे देश के प्रसिद्ध पक्षियों में है । भारत, चीन तथा बर्मा के अतिरिक्त यह शायद ही कहीं और पाया जाता हो । दाम्पत्य-प्रेम का आदर्श रखने वाले इस पक्षी पर स्वभावतः हमें अत्यन्त गर्व है ।

चीन निवासी विशेष रूप से इस पक्षी का आदर करते हैं; इसे सुख-समृद्धि का कारण मानते हैं । वहां एक खास जाति का सारस पाया जाता है, जिसकी जिन्दगी सौ साल की होती है । गत वर्ष हमारे प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के जन्म-दिवस पर चीन के प्रधान मन्त्री

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री चाऊ एन लाई ने इस जाति के कुछ सारस उन्हें भेंट के रूप में भेजे थे, जो आज राष्ट्रपति भवन दिल्ली के बाग की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

एक खास जाति का सारस है जिसके वंश का इस संसार से उत्तरोत्तर लोप होता जा रहा है । संसार भर में इस जाति के केवल तीस सारस बचे हुए हैं । देश-देश में, गांव और वनों में, इनकी लगातार खोज की गयी है । फिर भी इनकी संख्या ३० से अधिक नहीं पायी गई है। इनमें से दो, जो नर और मादा हैं, अमरीका में सरकार द्वारा पाले गए हैं।

सारस की एक उपजाति है "करकरा", (चित्र संख्या ७८) जो हमारे यहां केवल जाड़ों में आता है । इसका रंग भी स्लेटी ही होता है, केवल गर्दन के नीचे का भाग काला होता है । आंखों के पीछे कुछ मुलायम सफेद पर हुआ करते हैं । आसमान में हजारों की कतार में उड़ते हुए और तेज शब्दों में कुछ बोलते हुए यह शीत काल के आरम्भ में किसी दूर देश से हमारे यहां आते हैं और फिर गर्मियों के आते ही वहीं लौट जाते हैं । अधिकांशतः नदी-झील-तालाब के तटों पर आप इन्हें पाएंगे । जब-तब अड़ोस-पड़ोस के खेतों पर धावा बोल कर फसल को ये काफी नुकसान भी पहुंचाते हैं । बड़े सारस से इनका कद छोटा होता है और दोनों की प्रकृति में भी अन्तर है । जहां सारस वैयक्तिक प्रकृति का पक्षी है, ये गिरोह बांधकर रहने वाले पक्षी हैं । पता नहीं, एक वंश के होकर भी दोनों की प्रकृति में इतना अन्तर क्यों है ।

करकरा को पंजाब में 'कुंज' कहते हैं। ये पहाड़ के पक्षी हैं जो दाने की खोज में कुछ दिन के लिये समतल क्षेत्रों में आ जाया करते हैं । पंजाबी भाषा में इस सम्बन्ध की एक सुन्दर प्राचीन कविता है, जो इस प्रकार है—

कुंजां कोलों मोर पुछेंदी,
'तुस्सी नित परदेसी तैयारी;
या तुसाडा वतन कुचजड़ा
या तुस्सी पेट तगारी ?'
'ना साडा वतन कुचजड़ा
न अस्सी पेंट तगारी;
ते रब्ब डाढा कादिर,
जिसने साडी चोग खिलारी;
ते कोई वम ओ गोरिए !
साडी जिंदियां दे मेले ।'

—कुंजों से मोर ने पूछा, 'तुम हमेशा परदेस जाने की तैयारी में क्यों रहते हो ? क्या तुम्हारा देश निकम्मा है या पेट की खातिर तुम्हें परदेस जाना पड़ता है ?'

कुंजों ने कहा, 'परमात्मा बड़ी कुदरत वाला है । उसने हमारा आहार सारी पृथ्वी पर फैला रखा है । उसी की खातिर हमें तुमसे और बहुतों से मिलने का मौका मिल जाता है ।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र संख्या : ९०

बाज़ को हाथ में लिए गुरु गोविन्द सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

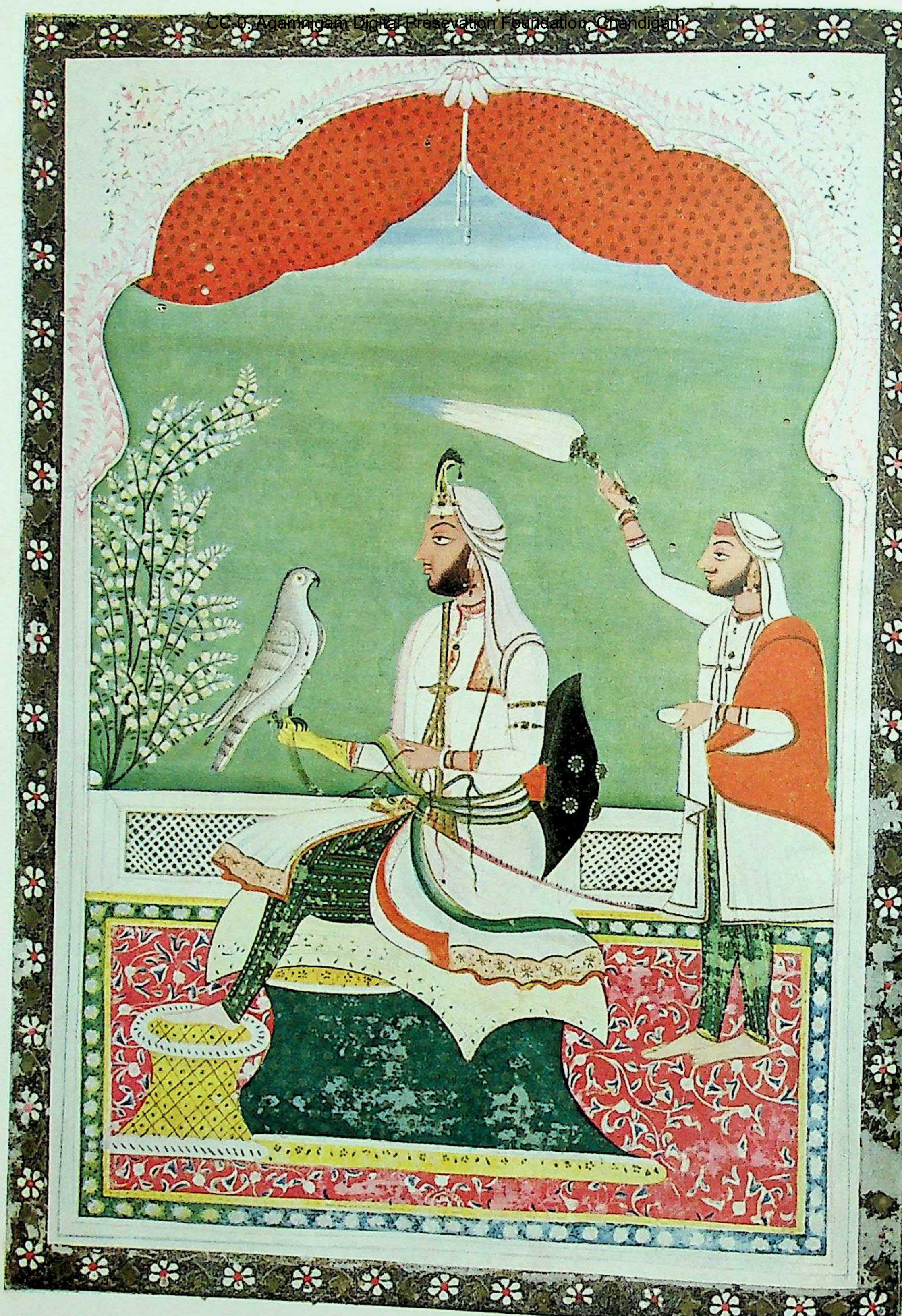

चित्र संख्या : ९१

बाज़ को हाथ पर लिए एक महाराजा
(प्राचीन चित्र)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दाविल और बुज्जा

जल के किनारे पर रहने वाले पक्षियों में "दाविल" और "बुज्जा" भी उल्लेखनीय ह।

दाविल (चित्र संख्या : ८७; ८८) दरअसल उसी बिरादरी का है, जिसके बगले और लगलग आदि हैं। यदि उसकी चोंच चिमटे की तरह न होकर सीधी होती, तो हम इसे एक प्रकार का बगला ही कहते। रंग भी इसका तुषार-सा होता है। चोंच और पांव काले होते हैं। यह गोल बांधकर रहने वाला पक्षी है। जब यह कतार में उड़ता है, तो दूर से एक श्वेत लकीर-सी नजर आती है।

घास-पात, छोटी मछलियां तथा पानी के कीड़े इसके आहार हैं। चोंच खोल कर अपनी गर्दन को यह पानी के भीतर डाल कर घुमाता रहता है, ताकि उसके भीतर छोटे-छोटे कीड़े अपने आप आ जाएं और यह उन्हें गप कर ले।

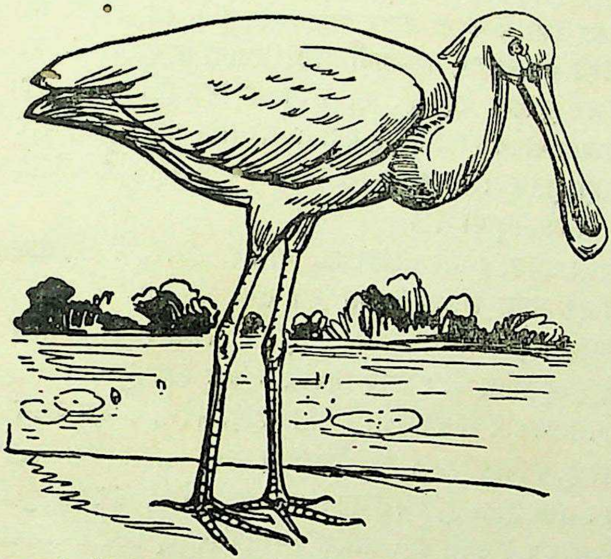

किनारे के किसी पेड़ की टहनियों पर मचान-सा घोंसला बना कर यह अगस्त से नवम्बर तक अंडे देता है। बुज्जा के दो भेद हैं—एक काला, दूसरा सफेद। काले को 'कड़ाकुल' भी कहते हैं और सफेद को 'मुंडा', हालांकि दोनों की बनावट तथा स्वभाव एक-सा ही है।

कड़ाकुल कद में प्रायः २६-२७ इंच का होता है तथा नर और मादा के रूप-रंग में कोई फर्क नहीं होता। इसके सर के ऊपर के कुछ पर लाल रंग के होते हैं, मानो मुर्गे के पर हों।

मुंडा कद में कड़ाकुल से कुछ बड़ा होता है। इसका सर और गर्दन काले रंग के तथा बगैर बाल के होते हैं। शरीर के बाकी सभी हिस्से सफेद होते हैं। दोनों की चोंच लम्बी और टेढ़ी होती है। रात में ये किनारे के किसी वृक्ष पर दल बांध कर रहते हैं, दिन में पानी के किनारे अथवा धान के खेतों में कीड़ों की तलाश में घूमते रहते हैं। मुंडा जून से अगस्त तक, कड़ाकुल मार्च और नवम्बर के बीच अंडे देते हैं। अंग्रेजी में इन्हें 'आइबिस' कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

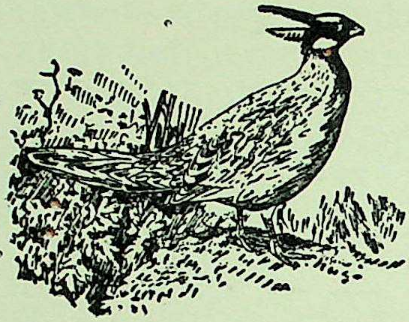

पहाड़ के पक्षी

भारतवर्ष के पहाड़ों पर समतल क्षेत्र में पाये जाने वाले प्रायः सभी पक्षी—कोयल तक—प्राप्य हैं, पर उनकी रूप-रेखा में काफी अन्तर पाया जाता है। कद में और रंग में भी। उदाहरण के लिए गौरैये को लीजिए। पहाड़ी गौरैये मैदानों के गौरैयों से, जो हमारे गृह-प्रांगण में दिन भर फुदकते रहते हैं, रंग में काफी भिन्न होते हैं। उनके गले और पीठ पर जो गहरा बादामीपन होता है वह मैदानी गौरैयों में नहीं होता, और न उनकी तरह ये मोटे-ताजे ही होते हैं। गरज यह कि मैदान के तथा पहाड़ के पक्षियों में भी प्रायः वही अन्तर है जो कि मनुष्यों में।

पहाड़ों पर कुछ ऐसे पक्षी अवश्य हैं जो साधारणतः नीचे के इलाकों में नहीं पाये जाते। इनमें मुख्य वे हैं जो एक जाति के होते हुए भी रूप तथा रंग भेद से 'चीर', (चित्र संख्या : ७९; ८०) 'कोकला', 'कालिज', 'मोनल' (चित्र संख्या : ८१) आदि नामों से जाने जाते हैं। जिस तरह तीतर, बटर आदि शिकार के छोटे पक्षी हैं, उसी तरह चीर, कोकला, कालिज, मोनल शिकार के बड़े पक्षी हैं जो पहाड़ी प्रदेशों के ऐसे जंगलों में, जहां ठंडक अधिक रहती है, निवास करते हैं। चित्तियों तथा धारियों से युक्त इनका शरीर बहुत कुछ तीतर जैसा होता है, पर अपने चमकदार रंगों, सर के तुर्रों तथा लम्बी सुन्दर पूंछों के कारण ये उनसे कहीं अधिक चित्ताकर्षक हैं। मांसभक्षियों को इनका मांस बहुत प्रिय है।

चीर का नर कद में काफी बड़ा होता है। २८ इंच की पूंछ, सर पर प्रायः ३ इंच का तुर्रा रखने वाले इस पक्षी का वजन एक सेर से लेकर दो सेर तक होता है। मादा नर से कुछ छोटी होती है।

नर का मस्तक तथा तुर्रे के पर कालापन लिए हुए बादामी रंग के होते हैं। शरीर के बाकी हिस्से पर भी कालेपन की झलक लिए हलका अथवा गाढ़ा बादामी रंग होता है। गले का निचला हिस्सा सफेदी लिए हुए होता है। डैनों में भी जहां-तहां सफेद रंग के स्थल नजर आते हैं, यद्यपि नाव बादामी रंग की ही होती है। पेट का मध्य भाग कालापन लिए हुए ललछौंह तथा चोंच हल्की पीली, पांव स्लेटी बादामी, पांव की अंगुलियां और तलवे हल्के पीले रंग के होते हैं। मादा के रंग में कुछ अन्तर रहता है।

नर और मादा का आमरण जोड़ा होता है। दोनों मिलकर बड़े चाव से अंडे सेते एवं बच्चों का लालन-पालन करते हैं। इनका अंडा देने का समय अप्रैल से जून

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक है । ५,००० फुट से लेकर ६,००० फुट की ऊंचाई वाले स्थानों में ये अंडे देते हैं । इनके घोंसले जमीन पर ही किसी गड्ढे में घास-फूस के बने होते हैं ।

नेपाल, कुमाऊं, गढ़वाल, टेहरी गढ़वाल, शिमला, बराहिर, चम्बा के इलाकों में ये बहुतायत से पाये जाते हैं। घने जंगलों की बजाय कुछ खुले जंगलों में रहना इन्हें ज्यादा पसंद है । ये सुबह-शाम भोजन की तलाश में निकलते हैं; बाकी समय अधिकतर झाड़ियों के अन्दर छिपे रहते हैं ।

नर और मादा सुबह-शाम मुर्गे की तरह जोर से बोल उठते हैं: बोली इनकी इतनी बुलन्द होती है कि करीब एक मील तक सुनाई देती है तथा पहाड़ की घाटी को गुंजा डालती है ।

पौधों की जड़, कीड़े, नाज के दाने तथा वृक्षों के छोटे-छोटे फल इनके आहार हैं ।

ये ग्राम-कुक्कुट की तरह उड़ते हैं तथा उड़ते और दौड़ते समय ये अपनी पूंछ के परों को फैला लेते हैं ।

नर के सर का तुर्रा गहरे बादामी रंग का, बगल के परों का गुच्छा एवं समूचा सिर, ठोढ़ी, गला तथा गर्दन के पीछे का हिस्सा गहरे चमकीले हरे रंग से मिला हुआ काला, गर्दन के दोनों ओर सफ़ेद धब्बे, बदन का ऊपरी हिस्सा, सर से दुम तक, सफेद-धूसर, हरएक पर काली लकीर, दुम का अंतिम हिस्सा ललछौंह, किनारे पर काली लकीरें, चोंच कत्थई—मोटे तौर पर कोकले की यही रूप-रेखा है। मादा के रंग में कुछ फर्क होता है—कत्थईपन ज्यादा है । लाली भी।

हरएक कोकले का रंग एक-सा नहीं होता । सब में कुछ-न-कुछ फर्क पाया जाता है । यह इस पक्षी की विशेषता है । पूंछ लम्बी होती है । नर का वजन सेर सवा सेर तथा मादा का पौन सेर के करीब होता है । देखने में यह अत्यन्त सुन्दर, चित्ताकर्षक पक्षी है ।

नैनीताल, अलमोड़ा, गढ़वाल, शिमला, जम्मू, मरी आदि के पहाड़ी इलाकों में यह बहुतायत से पाया जाता है। ६,००० फुट से लेकर ६,००० फुट की ऊंचाई तक यह अंडे देता है : कहीं-कहीं १२,००० फुट की ऊंचाई पर भी इसे अंडे देते देखा गया है। इसका लकड़ी के चंद टुकड़ों का बना हुआ घोंसला होता है जो यह झाड़ियों में या पहाड़ के किसी दर्रे में बनाया करता है ताकि मानव-दृष्टि से वह ओझल रहे ।

मई-जून इसके अंडा देने के महीने हैं। यह जोड़ा जीवन भर के लिए बांधता है और घोंसला भी हर साल एक ही स्थान पर बनाते पाया गया है। इसके अंडों की संख्या ६ तक होती है ।

इसकी आवाज मोर की तरह गहरी होती है । बन्दूक की अथवा किसी बड़े दरख्त के गिरने की आवाज सुन कर यह भी कूक उठता है । पर इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जानवरों की भांति यह खूब खर्राटे भी लेता है, गहरी नींद सोता है, और सुप्तावस्था में बहुधा शिकारियों के द्वारा इसे बन्दी बनना पड़ता है । शायद ही कोई और पक्षी इस तरह गहरी नींद में सोता हो । नाज के दाने, घास के बीज, वृक्ष के छोटे फल, फूल की कली, कीड़े-मकोड़े इसके आहार हैं ।

कश्मीर के कोकलों का रंग औरों की अपेक्षा ज्यादा गाढ़ा होता है। मादा के शरीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की लकीरें भी ज्यादा स्पष्ट होती हैं। य लद्दाख, गिलगित आदि के इलाकों में पाये जाते हैं।

नेपाल के कोकले और भी गाढ़े रंग के होते हैं, पर कद में औरों से छोटे। ये आसानी से पाले भी जाते हैं।

इस जाति के पक्षियों में कालिज, जिसकी अनेक किस्में हैं, सबसे ज्यादा वनमुर्ग से मिलते हैं। बड़ा कद, मजबूत, गोलाकार छोटे-छोटे पंख, सोलह परों की लम्बी पूंछ, जिनमें बीच का पर सबसे अधिक लम्बा, नर के दोनों पांव के हिस्से घने उभरे हुए, सर पर एक बड़ा-सा गंठीला तुर्रा, आंखों के पास गहरे रंग में रंगा हुआ परों से रहित एक स्थान—कालिज पक्षी की ये मुख्य पहचान है। पहाड़ तथा पर्वत-घाटी इसके निवास-स्थान हैं। इसकी कई उपजातियां हैं और मोटे-तौर पर समानता होते हुए भी इनके रूप-रंग में काफी भिन्नता है। स्वभाव सबका प्रायः एक-सा है। मुख्य किस्में ये हैं—

१. सफेद चोटीदार—इसके सर पर एक लम्बी-सी सफेद अथवा क्षीण कत्थई रंग की चोटी होती है, सर का बाकी हिस्सा चटकदार पीला-नीला मिला हुआ काला, पीठ का ऊपरी हिस्सा नीलापन लिए हुए काला, परों का किनारा सफेद अथवा क्षीण बादामी, जिन पर श्वेत सीधी लकीरें बनी होती हैं, दुम के पर ऊपर चमकदार काले, नीचे बादामी, डैनों तथा पूंछ के परों पर हरापन, पेट बादामी, चोंच सफेद, पांव सफेदी लिए हुए बादामी, होते हैं। शरीर का वजन एक सेर से कुछ ज्यादा होता है।

मादा के शरीर पर बादामीपन का अंश नर की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, जिस पर तीर की-सी सफेद लकीरें बनी होती हैं। चोंच, पांव आदि समान रंग के होते हैं। दोनों की आंखों के चारों ओर गाढ़े लाल रंग का एक गोलाकार स्थान होता है।

नेपाल, गढ़वाल आदि के पहाड़ों पर ये बहुतायत से पाये जाते हैं। मार्च-अप्रैल से लेकर जून के अंत तक इनका प्रसव-काल है: २,००० फुट से लेकर ४,००० फुट तक की ऊंचाई पर ये अंडे देते हैं, पर जब-तब ११,००० फुट तक पर भी ये अंडे देते देखे गये हैं। दरअसल पहाड़ की तलहटी से लेकर हिमाच्छादित शिखर तक ये पाये जाते हैं। अतएव यदि ये दस या ग्यारह हजार फुट की ऊंचाई पर भी अंडे देते देखे गये हैं तो इस में कोई आश्चर्य नहीं। इनके अंडों की संख्या ९ से १४ तक होती है। इस जाति के और पक्षियों की तरह इनके भी घोंसले बेढंगे हुआ करते हैं। पर उनकी तरह ये घने जंगलों के प्रेमी नहीं हैं; पहाड़ की खुली जगहों पर विचरना इन्हें अत्यधिक प्रिय है। झुंड बांध कर रहना भी इन्हें प्रिय नहीं; अधिकतर नर-मादा अपनी संतान के साथ विचरण करते हैं, यदि कोई और नर इनके बीच आ गया तो ये मुर्गे की तरह लड़ पड़ते हैं और बेतरह लड़ते हैं, कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि ये लड़ते-लड़ते अपनी जान ही दे डालेंगे।

उड़ने में औरों की अपेक्षा ये ज्यादा तेज होते हैं। प्रायः ऊंचे स्वर में कुछ बोलते हुए, दाना चुंगते हुए बन में विचरण करते हैं। मनुष्यों को देखकर वनमुर्ग की तरह तुरन्त भाग खड़े नहीं होते बल्कि कभी-कभी मानव-आवास के पास तक दाने की तलाश में आ पहुंचते हैं। नाज़ के दाने, छोटे पौधे की जड़ें, छोटे-छोटे कीड़े भी इनके आहार हैं।

२. नेपाली कालिज—सफेद चोटीदार के सिवाय, चमकदार नीलाभ काली चोटी वाले कालिज भी काफी प्रमुख हैं, जिन्हें नेपाल-कालिज के नाम से पुकारते हैं और जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेपाल के वनों में २,००० फुट से लेकर ६,००० फुट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं । नेपाल के समीपवर्ती स्थानों जलपाईगुड़ी, धनखेता आदि में भी पाये गये हैं । शायद "पर्यटन विविधान् लोकान्"—इधर-उधर घूमते-घामते इन जगहों में भी ये आ जाते हों, पर रहने वाले ये नेपाल के पहाड़ों के ही हैं ।

सिक्किम, भूटान आदि में पाये जाने वाले कालिज की पीठ बिल्कुल काले रंग की होती है । असम तथा दार्जिलिंग के चाय बागानों में भी सैर करते हुए ये बहुधा नज़र आते रहते हैं । यही नहीं, यदा-कदा यहां घोंसले बनाकर चाय के पौधों की झुरमुट में अंडे तक दे डालते हैं—पर ये सिक्किम और भूटान के ही वासी हैं । किन्तु ऊंचे पहाड़ इन्हें पसन्द नहीं । २,००० फुट से ५,००० फुट की ऊंचाई ही इन्हें अधिक प्रिय है ।

ये अधिकतर चुप रहने वाले पक्षी हैं, पर जब गुस्से में आते हैं तो "कूर-कूर" "बाक-बाक" बोलना शुरू कर देते हैं—कहते हैं, इनकी यह ध्वनि युद्ध का आह्वान ह ।

कभी-कभी जब ये मौज में आते हैं तो एक प्रकार की दूसरी आवाज़ भी करते हैं जो ढोल के स्वर से मिलती-जुलती है । ग्रामीणों का कहना है कि यह आने वाली वर्षा का पूर्व संकेत है, अर्थात् जब काली पीठवाला कालिज ढोल के स्वर में, आनन्दोल्लास के साथ बोलना आरम्भ करे, तो आप समझ जायें कि वर्षाकाल निकट है ।

३. काले पेट और काली पूंछ वाला एक तीसरे प्रकार का कालिज असम में पाया जाता है । बिहार के मानभूम जिले में भी यह मिलता है पर अधिकांशतः असम और मणिपुर, अराकान आदि के जंगलों में ही पाया जाता है । पता नहीं, मानभूम के जंगल में यह कब और कैसे आया । यही एक जाति है जिसे गर्म जगहें पसंद हैं । सुबह-शाम जंगली रास्तों के दोनों ओर अथवा खेत या सर-सरिताओं के कछार में आप इसे बहुधा दाना चुंगते हुए पायेंगे ।

मणिपुर के आस-पास एक और प्रकार का कालिज पाया जाता है जिसके सर का तुर्रा बिल्कुल स्याह तथा सर, गर्दन, पीठ और डैने राख के रंग के होते हैं । पूंछ काली होती है, परन्तु इस पर सफेद लम्बी धारियां बनी होती हैं । चार हजार फुट से नीचे यह शायद ही उतरता हो । साथ ही, ६,००० फुट से ऊपर का शीत भी इसे पसंद नहीं है । यह मध्यम-मार्ग का अनुयायी है ।

उपर्युक्त श्रेणी के चीर, कोकला तथा कालिज पक्षियों के अलावा इसी वंश का एक और पक्षी भी है जिसे कश्मीर में 'नील-मोर', 'जंगली मोर' के नाम से पुकारते हैं तथा कुलू में 'मुनाल', 'करारी' आदि नामों से । कुमाऊं में इसे 'दतिया',नेपाल में 'दफिया' कहते हैं । ये तीन प्रकार के होते हैं तथा औरों की अपेक्षा इनकी चोंच अधिक लम्बी एवं घूमी हुई होती है । पूंछ छोटी होती है जिसमें १८ पर होते हैं । चोटी हरे रंग की होती है । सर भी हरा होता है—मोर की भांति—तथा शरीर के अधिकांश स्थानों पर तांबा और हरे रंगों का सम्मिश्रण है । पूंछ का अंतिम भाग गहरा बादामी, चोंच भूरी, पांव हल्का पीला अथवा बादामीं मिला हुआ हरा होता है । दरअसल देखने में इसका रंग बहुत हद तक मोर जैसा लगता है । कश्मीर, गढ़वाल, नेपाल, चम्बा आदि क्षेत्रों में ये प्राप्य हैं—सिक्किम, भूटान, तिब्बत तो इनका मूल स्थान ही है । शिमला के आसपास ७,००० फुट की ऊंचाई तक भी ये पाये गये हैं । साधारणतः सात-आठ हजार फुट से नीचे ये नहीं उतरते हैं । १४-१५ हजार फुट की ऊंचाई तक ये अंडे देते हुए पाये गये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुलू तथा कांगड़ा के इलाकों में भी ये काफी संख्या में उपलब्ध हैं। न्यूज़ीलण्ड के 'स्वर्ग-पक्षी' की भांति ही इन्हें भी अपनी सुन्दरता के लिए भुगतना पड़ता है। इनके पर बड़े सुन्दर होते हैं तथा देश-देशान्तर में खूब बिकते हैं। अतएव पैसे के लोभ में लोग इन्हें जाल में फंसा-फंसा कर इनके परों को बेचते तथा काफी धन पैदा करते हैं। इसके फलस्वरूप इस जाति के पक्षी सभ्य समाज के क्रमशः दूर होते गये हैं—हिमालय के उन प्रदेशों में चले गये हैं जहां मनुष्य का पहुंचना आसान नहीं है। फिर भी कुछ तो आज भी शिमला, दार्जिलिंग, सुकेत, चम्बा आदि स्थानों के आसपास जब-तब मिल जाया करते हैं।

वनमुर्ग और उपर्युक्त पक्षियों में काफी सादृश्य है। यही नहीं, उसके साथ इनकी घनिष्ठ मैत्री भी है। बहुधा आप देखेंगे कि वनमुर्ग के साथ-साथ ही इस जाति के पक्षी भी वनों में विचरण कर रहे हैं। रूप-रंग में भी ये एक-दूसरे से काफी मिलते हैं, फिर भी इनमें भिन्नता है। चीर, कोकला, कालिज, मोनल, न तो वनमुर्ग की तरह तेज ही होते हैं और न तीक्ष्णबुद्धि ही। किसी खतरे के मौजूद होने पर आप देखेंगे कि वनमुर्ग एक क्षण में ही निर्णय कर लेगा कि उसे क्या करना है, जबकि कालिज आदि मिनटों तक इस सोच-विचार में पड़े रहेंगे कि हम क्या करें। ढिठाई में वनमुर्गों की अपेक्षा ये जरूर ही बढ़े-चढ़े हैं तथा मनुष्य को देखकर जिस प्रकार वनमुर्ग पल-मात्र में दौड़ कर आंख से ओझल हो जाते हैं, ये नहीं होते और न वनमुर्ग की भांति ये शोर ही मचाते हैं। सुबह-शाम बोलते हैं, कूकते हैं, पर उनकी तरह दिन भर बोल-बोल कर पर्वत-घाटियों की शान्ति को भंग नहीं करते।

जरूरत पड़ने पर ये काफी उड़ लेते हैं, पर मुर्ग की तरह पंखों की बनिस्बत पांव से काम लेना इन्हें अधिक प्रिय है। ये सर्व-भक्षी होते हैं। इन्हें पालतू बना कर रखना बड़ा कठिन है, बरसों पिंजड़े में रहेंगे, पर जंगली बने रहेंगे, सभ्य न होंगे। इनके लड़ने का ढंग भी विचित्र है। फर्ज कीजिए, दो नरों में आपस में तकरार हो गयी। वे एक दूसरे से लड़ने के लिए कमर कस कर तैयार हो जाएंगे। दोनों जोर-जोर से धरती पर पांव पटकेंगे, हुंकार भरेंगे, ताल ठोकेंगे, पर अंत में इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि लड़ना फिजूल है और धीरे से दुम दबा कर अन्यत्र चल देंगे या दाना चुगने लगेंगे।

वनमुर्ग

पर्वतीय चीर, कोकला, कालिज आदि पक्षियों से इसका घनिष्ट सादृश्य है (चित्र संख्या : ८२)। उनकी ही तरह इसके नर-मादा के परों में काफी अन्तर है; मादा की अपेक्षा नर कद में बड़ा होता है। ऐसे घने वन में, जिसके आस-पास जल आसानी से मिलता हो, ये पाये जाते हैं।

इस देश में पाये जाने वाले वनमुर्ग के सर पर एक मांसयुक्त तुर्रा होता है तथा गले के दोनों ओर लटकती हुई थैली के जैसी दो टोपियां होती हैं। पूंछ में १४ पर होते हैं, एक जाति के वनमुर्ग के १६, जिनमें नर के मध्य भाग के पर औरों से अधिक लम्बे होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। पंख गोलाकार तथा गठीले होते हैं । गर्दन तथा पीठ के पर काफी लम्बे तथा पांव मजबूत होते हैं। नर के पांव पर लम्बे तथा कंटीले उभड़े हुए स्थल होते हैं, जिनकी मदद से ये दुश्मन पर पूरी तरह आघात-प्रत्याघात करने में समर्थ हो पाते हैं ।

इस देश के प्रायः सभी हिस्सों में प्राप्त यह वनमुर्ग रक्तवर्ण होता है जो कि कश्मीर से लेकर असम तक के पहाड़ी प्रदेशों में उपलब्ध है । पूर्व बंगाल, पश्चिम बंगाल का पर्वतीय हिस्सा, छोटा नागपुर, मध्य प्रदेश, गोदावरी से उत्तर उड़ीसा का समस्त भाग, इन सभी स्थानों में भी इसने अपना घर बना रखा है । पर सिन्ध में यह बिल्कुल ही नहीं होता।

सर का तुर्रा तथा गले से लेकर पीठ तक के बाल चमकीले नारंगी-लालरंग के होते हैं ।

अन्य स्थलों के बालों में स्थान-भेद से लाल, हरे, नीले रंगों का सम्मिश्रण होता है। मादा के सर का ऊपरी हिस्सा कालापन लिये हुए बादामी रंग का होता है । दरअसल मादा के सारे बदन पर ललछौंह बादामीपन अधिक है ।

जोड़ा बांधने के समय तक वनमुर्ग का रंग तेज रहता है पर उसके बाद इसमें मलिनता आ जाती है ।

अप्रैल से लेकर जून तक इसके जोड़ा बांधने—अंडा देने—का समय है । किसी ऐसे स्थान में, जो मानव-दृष्टि से ओझल हो, झाड़ियों के बीच, दस-बीस टहनियां रखकर मादा अंडे देती है । इनकी संख्या ५ से ७ तक होती है । बीस दिन में अंडों से बच्चे बाहर निकल आते हैं ।

ऐसे तो ये ६,००० फुट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं, पर अधिकतर पहाड़ के किनारे अथवा घाटियों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये बड़े लड़ाकू होते हैं, अपने तीक्ष्ण पांवों की मदद से दुश्मन या प्रतिद्वन्द्वी की जान तक ले लेते हैं । दिल्ली तथा लखनऊ में मुस्लिम शासन के दिनों में मुर्गों की लड़ाई की बड़ी धूम थी । नवाबों, अमीर-उमरा तथा बादशाहों को इसे देखने का बड़ा शौक था । पता नहीं, उन दिनों में इन वनमुर्गों की पूछ राज-दरबार में थी या नहीं । शायद नहीं, क्योंकि इन्हें पालना कोई आसान काम नहीं है। बरसों इन्हें आप अपने पास रखें, इनकी आव-भगत करें, खिलायें-पिलायें, पर मौका पाते ही ये वन की ओर दौड़ भागेंगे; भूल कर भी आपकी ओर न देखेंगे । यह इनका जाति-गुण है ।

दो किस्म के जंगली मुर्गे इस देश में बहुतायत से पाये जाते हैं—एक वह जिसकी ऊपर चर्चा की गई है, दूसरा वह जिसके रंग में भूरापन अधिक है । शरीर पर हलके पीले अथवा सफेद छीटों की अधिकता भी। पैर पील अथवा ललछौंह, चंगुल स्याह, चोंच में कालापन । मादा के रंग में हल्के ढंग का बादामीपन अधिक है तथा सफेद चित्ते भी ।

भारत के दक्षिणी तथा पश्चिमी इलाकों में, हर जगह, इनका अस्तित्व है। पूर्वीय तट पर गोदावरी नदी तक, तथा मध्य प्रदेश के वन्य प्रदेशों में, एवं राजपूताने में आबू पर्वत तक में ये प्राप्य हैं, पर इससे आगे के इलाकों में नहीं । दक्षिण के नीलगिरि तथा सतपुड़ा की पहाड़ियों में भी आप इन्हें देख सकते हैं ।

रक्तवर्ण वनमुर्ग की भांति ये दल बांध कर नहीं रहते; एकान्त प्रिय हैं तथा अधिकतर नर-मादा ही एक संग रहते हैं, और नहीं । घने जंगलों में ये निवास करते

CC-0. Jangamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, पर सुबह-शाम भोजन की तलाश में झुरमुट से बाहर विचरते हुए भी नजर आते हैं। किसी खतरे की आशंका होते ही उड़ कर फौरन किसी दरख्त की डाल पर जा बैठते हैं। समय के बड़े पाबन्द हैं; आप हर रोज एक ही वक्त पर, और अधिकतर एक ही स्थान पर, इन्हें दाना चुंगते हुए पायेंगे।

लाल मुर्गे की तरह ये झगड़ालू अथवा लड़ाकू नहीं होते। एकान्तप्रियता के साथ-साथ इनमें शान्तिप्रियता भी काफी मात्रा में है। मादा शायद ही कभी अपनी जुबान खोलती हो, पर नर सुबह-शाम बोलते हैं; हाँ, औरों की तरह ये शोर नहीं मचाते और न इन्हें पालतू बना कर रखना ही उतना दुष्कर है जितना की लाल मुर्गों को।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

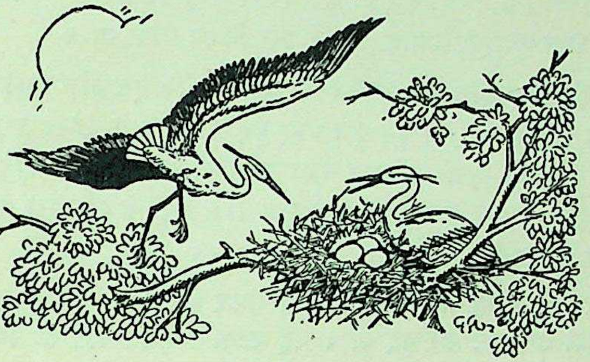

उपसंहार

पक्षियों की यह कहानी समाप्त हुई । उनके जीवन, उनके रोजमर्रा के कामों पर जब हम ध्यान देते हैं तो हमारे भीतर यह भावना आप-से-आप उत्पन्न होती है कि हाड़-मांस के बने हुए ये पक्षी हम से किसी तरह भिन्न नहीं हैं—इनके भी हृदय और मस्तिष्क में हम जैसे ही विचारों की तरंगें उद्वेलित होती रहती हैं । सरस भावों की, निठुर भावनाओं की भी । तब ऐसा लगता है कि ये पक्षी मानों हम से कह रहे हों—

हम प्राणी हैं हाड़-मांस के तुझ-जैसे ही,
विविध भावनाओं का उर यह क्रीड़ास्थल है,
स्नेहसिक्त है हृदय हमारा, न्याययुक्त है,
किन्तु साथ ही जलता इसमें स्वार्थानल है ।
बरस रही है दिव्य सरसता जहां-वहां ही,
निष्ठुरत्ता भी हाथ बढ़ाए खड़ी सबल है,
मानव ! हम से नहीं श्रेष्ठ तुम यह सच मानो,
प्राणों में चैतन्य हमारे मित्र, सबल है ।
हम प्राणी हैं हाड़-मांस के तुझ-जैसे ही,
विविध भावनाओं का उर यह क्रीड़ास्थल है ।

पक्षियों की भी अपनी भाषा है और इसके द्वारा निस्सन्देह वे भी अपने भावों को एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं तथा इसका सहारा ले कर वे अपने काम-धन्धे उसी प्रकार चलाते हैं जैसे कि आत्म-श्रेष्ठता की भावना से ओत-प्रोत हम मानव । काश ! हम इनकी भाषा को समझ पाते ।

इसके एक नहीं, हजारों उदाहरण हमारी आंखों के आगे हर रोज गुजरा करते हैं । नर-कपोत प्रेयसी मादा के चतुर्दिक नाचता है और अपनी भाषा में उससे प्रणय-भिक्षा मांगता है । फिर आप देखेंगे कि आपके बाग़ में फलों के पकते ही आस-पास के किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य वृक्ष पर बुलबुलों का एक हुजूम आ बैठा है तथा बुलबुलें ज़ोर-ज़ोर से कुछ बोल रही हैं—मानों बहस चल रही हो कि पके हुए फलों पर अभी टूटने का वक्त आया है या नहीं। कुछ देर में ये बुलबुलें गोल बांध कर उड़ेंगी तथा पके हुए फल के वृक्ष पर आ कर कुछ ही क्षणों में उनका सफाया कर देंगी। उन्हें चट कर जाएंगी। स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में बहस-मुबाहसे के बाद उन्होंने क्या निर्णय किया था।

पादरी उड नामक एक सज्जन का कहना है कि एक बार उनके एक पड़ोसी के बाग के एक चेरी के वृक्ष पर खूब फल आए हुए थे। जब वे अच्छी तरह पक गए तो उनके मित्र ने अपने माली को साथ लेकर फलों को दिखाया और कहा कि अब ये पूरी तरह पक गए हैं। इन्हें कल सुबह ही तोड़ डालो। पास के एक वृक्ष पर बैठी हुई कुछ चिड़ियां इसे सुन रही थीं।

दूसरे दिन सुबह जब माली टोकरी लेकर पहुंचा तो वृक्ष के सारे फल ग़ायब थे। चिड़ियां उन्हें चट कर गई थीं। यह घटना क्या इस बात का प्रमाण नहीं है, कि पक्षी हमारी चेष्टाओं को भी समझ लेते हैं ?

आपने अक्सर देखा होगा कि किसी खुले मैदान में कौओं की कचहरी बैठी हुई है तथा वे किसी महत्वपूर्ण विषय पर देर तक वाद-विवाद कर रहे हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मजलिस के बीचोबीच एक कौआ सर नीचा कर चुपचाप बैठा हुआ है, बाकी ज़ोर-ज़ोर से कुछ बोल रहे हैं, मानों उसके किसी कुसूर पर बहस-मुबाहसा कर रहे हों। अन्त में कुछ को छोड़ कर शेष कौए उड़ जाते हैं, बचे हुए उसे चोंचों से मार-मार कर प्राणहीन कर देते हैं, अर्थात् प्राणदण्ड के फैसले को कार्यान्वित करते हैं।

पक्षियों में पारस्परिक द्रोह, ईर्ष्या भी है, प्रेम और सहानुभूति भी। इसके सम्बन्ध में एक घटना सुनिए। कई साल हुए एक महिला ने एक कनेरी पाल रक्खा था। मकान के बरामदे में कनेरी का पिंजरा टंगा रहता था। एक दिन अकस्मात एक गौरैया उसके पिंजरे पर आ बैठी और देर तक दोनों चींचीं-चूंचूं कर-कर के आपस में कुछ बातें करते रहे। फिर गौरैया उड़ कर कहीं चली गई और थोड़ी देर में मुँह में एक दाना लेकर लौट आई और पिंजरे में उसे डाल कर लौट गई। महीनों तक यह सिलसिला चलता रहा। प्रतिदिन एक निश्चित समय पर वह दाना लाती और पिंजर-बद्ध कनेरी की चोंच में डाल जाया करती थी।

पक्षियों को पिंजरे में बन्द रखना, पिंजर-बद्ध करके उन्हें पालना, कहां तक उचित अथवा न्यायपूर्ण है, इस सम्बन्ध में सदियों से मतान्तर रहा है। मुझे स्वयं पक्षियों से बड़ा प्रेम रहा है। एक ज़माना था जब मैं दर्जनों पक्षी पिंजरों में रख-रख कर पाला करता था। बुलबुल और बटेरों को लड़ाता भी था। फिर भी जब कभी मैंने उनकी सूरत की ओर देखा तो ऐसा लगा मानों करुणा-भरी मूक वाणी से वे कह रहे हों :—

हम स्वतन्त्रता के जाए हैं, मुक्त हमें रहने दो,
जीवन की धारा में मानव, स्वेच्छा से बहने दो !

एक बार पिंजर-बद्ध होकर ये पक्षी जब अपने स्वच्छन्द जीवन से सम्बन्ध-विहीन हो जाते हैं, वन-जीवन से इनका सम्बन्ध-सूत्र टूट जाता है, तो फिर उसे स्थापित करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में ऐसा लगता है कि इन्हें बड़ी कठिनाई होती है । अक्सर देखा गया है कि बन्धनमुक्त पक्षी, पिंजरे से निकल कर उदास-सा वृक्ष की किसी टहनी अथवा डाल पर देर तक बैठा हुआ है, मानों कुछ सोच रहा हो । कारण ग़ालिब के शब्दों में सुनें :—

छुटे असीर तो बदला हुआ ज़माना था,
न वह गुल, न चमन, न वह आशियाना था !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षियों की नामतालिका

अंग्रेजी	कन्नड़	गुजराती	तमिल	तेलुगु	बंगला	मराठी	मलयालम	संस्कृत	हिन्दी
1. Koil	१. कोगिले	१. कोयल	१. कुयिल	१. कोयिल	१. कोकिल	१. कोकिला	१. कुयिल	१. कोकिल	१. कोयल
2. Hawk Cuckoo		२. बाज़			२. पापिया	२. वाहिरी ससाणा			२. पपीहा
3. Rock Chat		३. श्यामा			३. श्यामा			३. श्यामक (श्याम अश्वक)	३. शामा
4. Magpie Robin		४. लालचकली	४. कोइनडई या इटटी		४. दोएल	४. नीलकंठ		४. दध्यक् (दधिमक्)	४. दहियल
5. Dama					५. दामा				५. दामा
6. Lark	६. पुरले	६. लवरी	६. वानमपाडी	६. भरत पक्षी	६. भरत पाखी	६. चंडोल, भारद्वाज		६. कण्टक (तिलक-कण्टक)	६. चंडूल
7. King Crow		७. कालोकोशी	७. अंडंगकाकई		७. फिंगे			७. काक	७. भुजंगा
8. Bulbul	८. बुलबुल	८. बुलबुल	८. बुलबुल या चितिरई	८. बुलबुल	८. बुलबुल	८. बुलबुल		८. केशी गोवत्सक	८. बुलबुल
9. Common Iora		९. चातक	९. चातक पच्ची		९. फटिक जल या चातक	९. चातक		९. भारत शुकिका	९. फटिकजल या चातक
10. Crow	१०. कागे	१०. कागड़ो	१०. काकई	१०. काकि	१०. काक	१०. कावला	१०. कोवक	१०. काक	१०. कौवा
11. Pigeon	११. पारीवाल	११. कबूतर	११. माड घुरा	११. पावुरमु	११. कबुतर, पायरा	११. कबूतर	११. प्राव	११. कपोत	११. कबूतर
12. Green Pigeon	१२. हसुरु पारिवाल	१२. हरिल	१२. मणिप्पुरा	१२. आकुपच्चनि पिच्चुक	१२. हरियल			१२. हरितालक	१२. हारिल
13. Dove	१३. कपोत	१३. हीलो	१३. पुरा	१३. पावुरमु	१३. घुघु पाखी				१३. फाख्ता
14. Parrot	१४. गिलि	१४. पोपट	१४. किली	१४. चिलुक	१४. तोता पाखी	१४. पोपट	१४. तत्त	१४. शुक, कीर	१४. तोता
15. Myna	१५. मैना	१५. मैना	१५. मैना	१५. मैना	१५. मयना	१५. मैना	१५. मैना	१५. सारिका	१५. मैना
16. Malabar Whistling Thrush			१६. अकाकुरुवी		१६. कस्तूरा			१६. श्रीवाक कस्तूरिका	१६. कस्तूरा
17. Sunbird				१७. तेनेपिट्ट	१७. दुर्गा टुन-टुनी			१७. नीलारुण शींजिरिका	१७. शकरखोरा
18. Tailor Bird	१८. गीजग हक्कि			१८. दर्जीपिट्ट	१८. टुन-टुनी	१८. शिंपीण		१८. सूचिक	१८. फुदकी या दर्जिन
19. Weaver Bird	१९. चिप्पिग हक्कि		१९. थुकनकुरुवी	१९. साले पक्षी	१९. वाबुई	१९. डुडा पक्षी		१९. श्याव गल सु-गृह	१९. बया
20. Green Barbet					२०. बसन्ता	२०. कोकिलेसारखा एक पक्षी		२०. हरित पिप्पल	२०. बसंता
21. Crow Pheasant			२१. चंबोतू		२१. तवरा			२१. प्रख्यात-कुक्कुभ	२१. महोख
22. Woodpecker	२२. मरकुटिक	२२. लक्कड़खोड़	२२. मरम्कोत्ती	२२. बडुंगि पिट्ट	२२. काठ-ठोकरा	२२. सुतार पक्षी	२२. मरंकोत्ती	२२. काष्ठकूट	२२. कठफोड़ा और कठफोड़नी
23. Swallow and Swift	२३. स्वालो हक्कि	२३. अबाबील	२३. करचाम्वलियन	२३. वान कोयिल	२३. बाताशी	२३. पाकोनी		२३. भाण्डीक	२३. अबाबील और बतासी
24. Sparrow	२४. गुब्बच्चि	२४. कली	२४. शिटुक्कुरुवी	२४. पिच्चुक	२४. चड़ाई पाखी	२४. चिमणी	२४. अटक्का पक्षि	२४. चटक	२४. गौरैया
25. Babbler or Seven Sisters		२५. लेलू			२५. गुवरे शालिक			२५. दहोलिका	२५. सतबहनी
26. Amandava					२६. लाल मुनिया			२६. रक्त पुत्री	२६. लाल मुनियां
27. Rose eyed								२७. पाटल सारिका	२७. गुलाब चश्म
28. White Eye, Bush Chat			२८. वेली चिट्टू		२८. चशमा-पाखी			२८. क्षुप अश्वक	२८. बबूना, पिद्दा, पतेता
29. Paradise Flycatcher	२९. नोण हिडुक		२९. तेन चिट्टू	२९. दासरि पिट्ट	२९. स्वर्गेर पाखी			२९. शलभाश	२९. स्वर्ग का पक्षी (मछमरनी)
30. Oriole		३०. पंखा-नाचन			३०. बेने बउ			३०. (हरि वर्ष) कांचन	३०. पीलक
31. Hoopoe			३१. उकुम्कुरुवी	३१. कूकुडुगुव्व (वड्लपिट्ट)	३१. हुपो	३१. सुतार पक्षी		३१. ,, पुत्र प्रिय	३१. हुदहुद
32. Tree Pie					३२. हांड़ि चांचा			३२. कृशकूट	३२. मुटरी या महलाट
33. Kingfisher	३३. जालगार हक्कि	३३. मछीमार (कलकल्यो)	३३. मीनगोती	३३. लकुमुकिपिट्ट	३३. मा[illegible] रांगा	३३. पाणकावला	३३. पोनमान	३३. मीनरंक, मत्स्यारि	३३. किलकिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंग्रेजी	कन्नड़	गुजराती	तमिल	तेलुगु	बंगला	मराठी	मलयालम	संस्कृत	हिन्दी
34. Goshawk, Falcon, Shikara	३४. गिडुग	३४. बाज़-शकरो	३४. बैरी		३४. बाज पाखी	३४. ससाणा, बहिरीससाणा, शिकारी		३४. श्येन, संचान	३४. बाज, बहरी, शिकरा
35. Eagle	३५. हद्दू	३५. ग्रूड	३५. खलुकूं	३५. गरुड़ पक्षी		३५. गरुड	३५. कलूकन	३५. गरुड़, सुपर्ण	३५. गरुड़
36. Kite		३६. समड़ी	३६. पारुनदु	३६. ग्रड	३६. चिल	३६. धार	३६. परुन्द	३६. चिल्ल, शकुना,	३६. चील
37. Owl	३७. गूबे	३७. घूवड़	३७. आन्दई	३७. गुड्लगूब	३७. पेंचा	३७. गिधाड़	३७. मूंगा	३७. पेचक, उलूक	३७. उल्लू
38. Vulture	३८. रणहद्दू	३८. गीध	३८. राजाली	३८. रावंदू	३८. शकुनि	३८. घुवड		३८. गृध्र	३८. गीध
39. Hornbill	३९. कोंबु कोक्किन हक्कि			३९. इबेरित पक्षी	३९. धनेश पाखी				३९. धनेस
40. Nightjar	४०. इरुलु हक्कि		४०. चाकुरुवी		४०. ठुक ठुकिया	४०. रालपक्षी		४०. छिप्पिका, नप्तृका	४०. चिप्पक
41. Partridge			४१. काडै		४१. तित्तिर पाखी	४१. तीतर		४१. तित्तिर	४१. तीतर
42. Sandgrouse and Bush Quail		४२. टीटर	४२. कौदारी		४२. बटेर	४२. लावालावी		४२. क्रकल, कंकर	४२. भटतीतर, लवा
43. Bustard				४३. ओक जाति कोंग	४३. सोहन पाखी	४३. सालढोक		४३. महासारंग	४३. सोहन चिड़िया
44. Chukar	४४. चक्रवाक	४४. चकोर	४४. सकोरपच्ची	४४. चकोर पक्षी	४४. चकोर	४४. चकोर	४४. उप्पन	४४. चकोर, चक्रवाक	४४. चकोर
45. Peacock	४५. नविलु	४५. मोर	४५. मइल	४५. नेमलि	४५. मयूर	४५. मोर	४५. मैल	४५. मयूर, शिखी	४५. मोर
46. Winter Birds	४६. शीतकालद हक्किगलु	४६. शीतकाल पक्षी	४६. कुडिरकाल परवैगल	४६. शीतकालषु पक्षुलु	४६. शीतकालरे पाखी	४६. हिंवालया तील पक्षी	४६. शीतकाल पक्षी	४६. शीतकाल पक्षी	४६. शीतकाल के पक्षी
1. Shrike	१. कलिंग पक्षि				१. अंजना	१. तीव, लटोरा		१. लट्वक	१. लहतोरा
2. Tit			२. तविटूचिट्ट	२. तीतुवु	२. छोटो भरत			२. भस्म वल्गुली	२. रामगंगरा
3. Minivet					३. सयानी			३. विस्फुलिंग	३. सहेली, राजालाल
4. Redstart					४. थिरथिरा			४. कपेक्षुक	४. थिरथिरा
5. Snipe	५. उल्लंगि हक्कि		५. उल्लनि	५. उल्लामुपिट्ट	५. कादा खोंचा	५. पाणलावा पक्षी		५. पंककीर	५. चहा
6. Sand Piper		६. तुतारी			६. जलचर पाखी				६. चुपका
7. Quail	७. पुरलि हक्कि	७. बतेर	७. काडै		७. बटेर	७. लावापक्षी		७. वर्तिका	७. बटेर
8. Bageri					८. बागेरी				८. बगेड़ी
9. Common Teal			९. किलवई		९. बाली हांस			९. रौहिणीक हंसक	९. चेती
10. Shoveller	१०. बातु					१०. एक प्रकार चें बदल		१०. खात हंसक	१०. तिदारी
11. Pochard								११. अरुण मज्जिका	११. बुड़ार
12. Pinkheaded Duck	१२. केंपु तलेय बातु	१२. लालसा	१२. चिंदार		१२. लाल सारस	१२. बदल		१२. पाटलोत्तमांग हंसक	१२. लालसर
					१३. क्रौंच				१३. करछिया
14. Barheaded Goose					१४. हंस	१४. हंस		१४. कादम्ब हंस	१४. सवन
15. Pintail					१५. चखा				१५. सीखापर
16. Ruddy Sheldrake or Brahminy Duck					१६. चक्रवाक	१६. जंगली बदल		१६. लोहित चक्रवाक	१६. सुरखाब
17. Gull			१७. कलकपरुदु		१७. गांचिल		१७. कडलकाका	१७. गंगा चिल्ली	१७. गल (घोमरा)
18. Flamingo			१८. नीरनारै					१८. बलाक	१८. हंसावर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंग्रेजी	कन्नड़	गुजराती	तमिल	तेलुगू	बंगला	मराठी	मलयालम	संस्कृत	हिन्दी
47. Wagtail	४७. दासरि हक्कि	४७. खंजन	४७. वालाटिकुरुवी		४७. खंजन			४७. खंजन	४७. खंजन
					४८. नील कंठ				४८. नीलखंड
49. Tern, Lapwing		४९. कुरडी	४९. माटकालचिट्ट		४९. तित्तिर पाखी	४९. टिटकी		४९. कुररी, टिट्टिभक	४९. कुररी, टिटिहरी
50. Sea Birds	५०. समुद्र पक्षी		५०. समुद्र परवैगल	५० समुद्र पक्षुलु	५०. जलचर पाखी	५०. जलकुक्कुट	५०. जलपक्षी	५०. जलचर पक्षी	५०. जलकुक्कुट
1. Waterhen	१. नीरु कोलि		१. नीरकोली				१. कुलाकोली		१. बंसमुरगी
2. Coot					२. जल मुरगी	२. पाणकोंबड़ी		२. कारण्ड कुक्कुट	२. टीका टिकरी
3. Purple									३. जलबोदरी खीमा
4. Whistling Teal			४. कानांकोली		४. सराल	४. पाणकोबड़ा		४. शराल	४. सिलही
5. Comb Duck			५. कोंडईतारा		५. नकटा हांस	५. बदक		५. नन्दीमुखी हंसक	५. नकटा
6. Darver					६. पान कौरी				६. बानवर
7. Water Pigeon	७. जल कपोत	७. जलकबूतर		७. नीटि पावुरमु	७. जल पिपि		७. नीर प्राव	७. जल कपोत	७. जल कपोत
8. Pheasant-tailed Jacana					८. पिहि	८. एक जातीया पक्षी			८. पिही
9. Pelican	९. दोड्ड नीरु कोलि		९. पिलीकैन	९. गूडकोंग	९. गगनवेड	९. पाणकोली		९. श्वेत महाप्लव	९. हवासिल
51. Egret and Heron	५१. वक	५१. बगलो	५१. नारै		५१. बक	५१. बगला		५१. बलाका	५१. बगला
52. Stork		५२. लूगलग	५२. शंकालनारै		५२. सारस			५२. लुण्टाक	५२. महावक, लगलग
53. Crane	५३. कोक्करे	५३. सारस	५३. कोकू		५३. शरेश	५३. सारस पक्षी, करकोचा	५३. कोक्क	५३. सारस	५३. सारस
54. Spoonbill and Ibis			५४. आखघ मुखन		५४. मराल			५४. शराटी	५४. दाविल, बुज्जा
55. Hill Birds		५५. पहाड़ पक्षी	५५. मलै परवैगल	५५. पर्वत पक्षुलु	५५. पार्वत्य पाखी	५५. पहाडांलील पक्षी	५५. पर्वत पक्षी	५५. पार्वत्य पक्षी	५५. पहाड़ के पक्षी
1. Cheer Pheasant					१. चीर	१. कुकण पक्षी, तित्तिर		१. सरल जीवक, काहल	१. चीर
2. Kokla		२. कोकेरली	२. कोकीलम		२. काकलास			२. पालाश जीवक	२. कोकला
3. Kolij					३. कालिज				३. कालिज
4. Monal					४. भाकाल			४. मयूर कुक्कुट	४. मोनल
5. Jungle Fowl		५. जंगली कुकड़	५. काट्कोकी		५. वन मोरग	५. वन कुक्कुट	५. काटुकोलि	५. वन कुक्कुट	५. वन कुक्कुट
56. Flower Pecker			५६. तेनचिट्ट		५६. फूल चूही				५६. फुलचुही
57. Bee Eater								५७. दिव्यक	५७. पतेना
58. Ibis (White)				५८. कंकण पक्षी	५८. बांसापाति				५८. बुज्जा
59. Ibis (Black)					५९. कालो मराल				५९. बुज्जा
60. Blue-eyed Cuckatoo		६०. काका कौआ	६०. तत्तै		६०. काकातुआ	६०. काकाटुआ			६०. काकातुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh